समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी(हिन्दी)उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

शोधकर्ता

परिशपोगु थामस बाबु

एम.ए.,एम.फिल.,बी.एड.

शोध निर्देशिका

प्रो.नूरजहाँ बेगम

एम.ए.(हिन्दी)एम.ए.(संस्कृत)पीएच.डी.,डी.लिट्.

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद -500046

विभागाध्यक्षा

प्रो.शशिमुदीराज

पीएच.डी.,डी.लिट्.

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

हिन्दी-विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-46

2009

Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD – 500 046.

This is to Certify that **PARISAPOGU THAMAS BABU** have carried out the research embodied in the present thesis entitled **"समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन"** (SAMAKALEEN HINDI MAHILA NAATYA LEKHAN) for the full period prescribed under Ph.D, ordinances of the University of Hyderabad.

I declare to the best of my knowledge that no part of this thesis was earlier submitted for the award of research degree of any University.

Signature of the Candidate
P.Thamas Babu
Reg.No:03HHPH13

Date…………..

Signature of the Supervisor
Prof. Noorjahan Begum
Deptt. of Hindi

Date…………..

Signature of the Head
Deptt. of Hindi
University of Hyderabad

Date…………..

Signature of the Dean
School of Humanities
University of Hyderabad

Date…………..

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय | पृष्ठ संख्या

समकालीनता : स्वरूप, विश्लेषण और हिन्दी महिला नाटककार 1-52

1. समकालीनता : अर्थ
2. समकालीनता : परिभाषा
3. समकालीनता : समय सीमा निर्धारण
4. समकालीनता और समसामयिकता
5. समकालीनता और तात्कालिकता
6. समकालीनता और आधुनिकता
    6.1 युगबोध
    6.2 आधुनिकीकरण
    6.3 आधुनिक बोध
    6.4 आधुनिकता बोध
    6.5 आधुनिकता और आधुनिकता बोध
7. समकालीनता की विषयगत प्रवृत्तियाँ
    7.1 अस्तित्व की छटपटाहट और युवापीढ़ी की अनास्था
    7.2 वर्तमान व्यवस्था पर सीधा आक्रमण
    7.3 आकस्मिक विसंगतियों की तात्कालिक टकराहट
    7.4 आक्रोष, असंतोष और संपूर्ण निषेध की मुद्रा
    7.5 खुले यौन संबंधों को मान्यता
    7.6 सहज यथार्थ बोध और प्रतिबद्ध जागरूकता
    7.7 वैचारिकता का महत्व
8. हिन्दी नाटककारों में महिला नाटककारों का स्थान
    8.1 आलोच्य पूर्वकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार
    8.2 आलोच्य कालीन या समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार
    8.3 समकालीन हिन्दी महिला नाटककार

द्वितीय अध्याय

समकालीन हिन्दी महिला नाटककार : व्यक्ति एवं परिवेश 53-96

1.व्यक्ति एवं परिवेश
    1.1.व्यक्ति
    1.2.परिवेश
2.व्यक्ति एवं परिवेश का अतः संबंध
3.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों का परिवेश और उनका रचना संसार
4. कुसुम कुमार : व्यक्ति एवं परिवेश
4.1.कुसुम कुमार का साहित्य परिचय

4.1.1.कविता संग्रह
4.1.2.उपन्यास
4.1.3.नाटक
4.1.4.एकांकी
4.1.5.सिद्धांत विवेचन
4.1.6.अनुवाद
4.2.कुसुम कुमार के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
4.2.1.सुनो शेफाली
4.2.2.रावण लीला
4.2.3.पवन चतुर्वेदी की डायरी
5.मन्नू भण्डारी : व्यक्ति एवं परिवेश
5.1.मन्नू भण्डारी का साहित्य परिचय
5.1.1.कहानी संग्रह
5.1.2.उपन्यास
5.1.3.नाटक
5.2.मन्नू भण्डारी के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
5.2.1.बिना दीवारों के घर
5.2.2.महाभोज
6.मृदुला गर्ग : व्यक्ति एवं परिवेश
6.1.मृदुला गर्ग का साहित्य परिचय
6.1.1.कथा साहित्य
6.1.2.उपन्यास
6.1.3.नाटक
6.1.4.लेख संग्रह
6.1.5.संस्मरण
6.1.6.अनुवाद
6.1.7.मृदुला जी की पुरस्कृत रचनाएँ
6.1.8.मृदुला गर्ग जी के साहित्य का अन्य भाषाओं में अनुवाद
6.2.मृदुला गर्ग के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
6.2.1.एक और अजनबी
6.2.2.जादू का कालीन
7.मृदुला बिहारी : व्यक्ति एवं परिवेश
7.1.मृदुला बिहारी का साहित्य परिचय
7.1.1.उपन्यास
7.1.2.नाटक
7.2. .मृदुला बिहारी के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
7.2.1.भँवर

पृष्ठ संख्या

7.2.2.तीसरे रास्ते का राही
7.2.3.वे पाँच शब्द
7.2.4.देहरी
7.2.5.अंधेरे से आगे
8.मृणाल पाण्डे : व्यक्ति एवं परिवेश
8.1.मृणाल पाण्डे का साहित्य परिचय
8.1.1.उपन्यास
8.1.2.कहानी संग्रह
8.1.3.नाटक
8.1.4.अन्य सृजन
8.2.मृणाल पाण्डे के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
8.2.1.जो राम रचि राखा
8.2.2.आदमी मछुआरा नहीं था
8.2.2.चोर निकल के भागा
9. मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्ति एवं परिवेश
9.1.मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य परिचय
9.1.1.उपन्यास
9.1.2.कहानी
9.1.3.आत्मकथा
9.1.4.नाटक
9.1.5.अन्य सृजन
9.2.मैत्रेयी पुष्पा के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
9.2.1.मंदाक्रान्ता

तृतीय अध्याय
समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और तात्त्विक विश्लेषण **97-154**
1.नाट्य वस्तु
2.पात्र और चरित्र चित्रण
3. नाटक तथा रसानुभूति
4.संवाद योजना
4.1स्वगत कथन
4.2.संक्षिप्त संवाद
4.3.दीर्घ या लम्बे संवाद
4.4.वर्णनात्मक एवं भावात्मक संवाद
5.देशकाल-वातावरण
6.उद्धेश्य

चतुर्थ अध्याय | पृष्ठ संख्या

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और सामाजिक चेतना **155-208**

1. समाज और उसका स्वरूप
    1.1. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी
        1.1.1. राजनीतिक संदर्भ
        1.1.2. आर्थिक संदर्भ
        1.1.3. धार्मिक और सांस्कृतिक संदर्भ
        1.1.4. साहित्य और मानव जीवन
2. सामाजिक चेतना का अर्थ, परिभाषा, एवं स्वरूप
3. सामाजिक चेतना और साहित्य
4. समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना
    4.1. सुनो शेफाली
    4.2. रावणलीला
    4.3. पवन चतुर्वेदी की डायरी
    4.4. बिना दीवारों के घर
    4.5. एक और अजनबी
    4.6. जादू का कालीन
    4.7. भँवर
    4.8. तीसरे रास्ते का राही
    4.9. वे पाँच शब्द
    4.10. देहरी
    4.11. अँधेरे से आगे
    4.12. जो राम रचि राखा
    4.13. आदमी मछुआरा नहीं था
    4.14. चोर निकल के भागा
    4.15. मंदाक्रान्ता

पंचम अध्याय

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और रंगमंच **209-258**

1.रंगमंच : अर्थ
2.रंगमंच : परिभाषा
3.पाश्चात्य दृष्टि से रंगमंच का स्वरूप
4.भारतीय दृष्टि से रंगमंच का स्वरूप
5.नाटक और रंगमंच का पारस्परिक संम्बन्ध
6.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में अभिनय और अभिनेयता की परिकल्पना
7.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में ध्वनि एवं संगीत योजना
    7.1.ध्वनि योजना

पृष्ठ संख्या

7.2.संगीत योजना
8.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में रंगदीपन का स्वरूप
8.1.प्रकाश योजना
8.2.दृश्य योजना
9.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में वेशभूषा और रूप सज्जा
9.1.वेशभूषा
9.2.रूप सज्जा
10.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में मंच योजना
11.नाट्य भाषा

उपसंहार **259-264**

संदर्भ एवं सहायक ग्रन्थ सूची **265-272**

***

प्राक्कथन

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य का इतिहास एक लम्बी अवधि को लिए हुए है। वर्षों से लिखे हुए साहित्य इतिहास ने अनेक विधाओं जैसे - कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवन, रिपोर्ताज इत्यादि को जन्म दिया है। इन सभी विधाओं में से मेरी पसंद नाटक साहित्य की ओर रही है। जब पीएच.डी. में पँजीकरण हेतु विषय-चयन की बात सामने आई तो अपने मन की पसंद को मैंने अपनी शोध निर्देशिका प्रो. नूरजहाँ बेगम जी के समक्ष रखा। उन्होंने मुझे महिला नाटकों का अध्ययन करने के लिए सुझाव दिया। अतः मैंने अपनी शोध निर्देशिका प्रो. नूरजहाँ बेगम जी से विचार एवं विमर्श कर 'समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन' शोध विषय का चयन किया।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध अध्ययन की सुविधा के लिए पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। तथा अंत में उपसंहार और सहायक ग्रन्थ सूची संकलन की गयी है।

प्रथम अध्याय **समकालीनता : स्वरूप, विश्लेषण और हिन्दी महिला नाटककार** के अंतर्गत 'समकालीन' का शाब्दिक अर्थ और उसकी परिभाषा के साथ साथ उसके स्वरूप के बारे में भी विचार किया गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि समकालीन शब्द के अँग्रेज़ी भाषा प्रतिशब्द Contemporary के लिए 'समकालीन' और 'समसामयिक' दोनों पर्यायों का प्रयोग होता है। अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना ही समकालीनता है। डॉ. यश गुलाटी समकालीनता को मुख्यतः समसामयिक बोध से जोड़ते हैं। उनके अनुसार समकालीनता की वास्तविक कसौटी बोध, प्रवृत्ति अथवा रचना शिल्प की समान-धर्मिता है। अतः समकालीनता का संबंध काल विशेष से होने के साथ-साथ व्यक्ति विशेष के कालयापन तथा साहित्य, समाज अथवा परिवेश के परिवर्तनशील प्रवृत्ति से भी है।

इस अध्याय में समसामयिकता, तात्कालिकता, आधुनिकता, आधुनिक बोध के साम्य और वैषम्य का विश्लेषण करते हुए समकालीनता की सार्थकता को प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में समकालीन लेखन को प्रस्तुत करते हुए उसकी अंतर्वस्तु के प्रमुख आधार और रचना के संवेदनात्मक उद्धेश्य को प्रस्तुत किया गया है।

इसी अध्याय में द्वितीय उपशीर्षक के अंतर्गत- *हिन्दी नाटककारों में महिला नाटककारों का स्थान* विद्यमान *है*। इस में हिन्दी साहित्य क्षेत्र में नाटक विधा का आरंभ कब और कैसे हुआ, अन्य गद्य विधाओं के सामने नाटक विधा का महत्वपूर्ण रूप किस प्रकार विद्यमान है, हिन्दी साहित्य के प्रथम तीन युगों (आदि, भक्ति, रीती) में नाटक साहित्य का स्थान किस प्रकार का था, चौदहवीं शती से लेकर उन्नीसवीं शती मध्य तक कुछ रचनाएँ उपलब्ध थीं उसका स्वरूप और सार्थकता क्या थी, ये सब इस अध्याय के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी साहित्य क्षेत्र में गद्यसाहित्य की भाँति नाटक रचना के क्षेत्र में भी महिला लेखिकाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। समकालीन महिला नाटककारों में कुसुम कुमार, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, मृदुला बिहारी, मृणाल पाण्डेय आदि उल्लेखनीय हैं। हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाएँ जीवन के जटिल, व्यापक बहु आयामी और विविध-स्तरीय यथार्थ को नाटक के माध्यम से व्यक्त करके अपनी उत्कृष्ट सर्जनात्मक क्षमता का प्रमाण दे कर अपनी भूमिका किस प्रकार निभा रही हैं इसको इस शीर्षक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय है - **"समकालीन हिन्दी महिला नाटककार : व्यक्ति एवं परिवेश"**। इस अध्याय में समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के जीवन और साहित्य परिचय पर जोर दिया गया है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों में -

कुसम कुमार, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, मृदुला बिहारी, मृणाल पाण्डे और मेत्रेयी पुष्पा प्रमुख हैं। महिला नाटककारों के जीवन परिचय में जन्म तथा शिक्षा, माता-पिता, वैवाहिक जीवन और पारिवारिक दायित्व को प्रस्तुत करते हुए उनके अपने साहित्य सृजन पर दृष्टिपात किया गया है। उनके संपूर्ण साहित्य पर व्याख्या करते हुए उनके नाटकों का भी संक्षिप्त परिचय इस अध्याय के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

व्यक्ति और परिवेश में अटूट संबंध होता है। परिवेश एक तरह की शक्ति या दबाव होता है। सृजन उसी से अनुभूति पाता है, उसी को अभिव्यक्ति दे कर अपने परिवेश से पायी वस्तु को संगठित एवं रोचक बनाकर उसी को लौटाता है। सृजक के जीवन के दोनों पहलुओं अर्थात व्यक्ति एवं कृति आपस में उतने हिल-मिल जाते हैं कि उनके बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना कष्टसाध्य हो जाता है। आदमी के व्यक्तित्व का विकास उसके जन्मजात गुण, उसका सामाजिक संपर्क, पारिवारिक परिस्थिति, शैक्षिक उपलब्धि आदि पर निर्भर रहता है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के लिए यह सब अनुकूल थे।

तृतीय अध्याय है - **समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन : तात्विक विश्लेषण**। प्रत्येक कला अपने आप में पूर्ण होते हुए भी रचनाकार की सुविधा के लिए कुछ सर्वमान्य आधारों एवं नियमों पर आधारित होती है। उन्हीं में नवीनता का सम्मिश्रण करते हुए रचनाकार रचना करता है। नाट्यकला के अन्तर्गत यहाँ एक ओर संस्कृत आचार्यों ने नाट्य-कला के शास्त्रीय सिद्धांतों का विशद एवं व्यापक विवेचन किया है दूसरी ओर समय की माँग के अनुसार हमारे हिन्दी नाटककारों ने पश्चात्य नाट्य सिद्धांतों के संपर्क से भी लाभ उठाया है। इस अध्याय के माध्यम से नाट्य शास्त्र संबंधी सिद्धांतों तथा पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों को आधार बनाकर समकालीन हिन्दी महिला नाटकों का तात्विक विश्लेषण एवं विवेचन किया गया है। इस अध्याय को नाटक तत्वों के आधार पर विभाजित करके विवेचन किया गया है - जैसे वस्तु, नेता, रस आदि के (कथानक चरित्र चित्रण, संवाद योजना देशकाल वातावरण, उद्धेश्य) माध्यम से विषय की सफलता को बनाने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है - **समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और सामाजिक चेतना।** समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों नें चेतना संबंधी विवेचन पर जोर देते हुए अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना समाजगत होने के कारण समाज के साथ और उसके अभिनांग जैसे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक चेतना को भी इस अध्याय के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय है - **समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और रंगमंच।** समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों के मंचीय रूप का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया गया है। अभिनेयता के लिए आवश्यक तत्वों के आधार पर समकालीन हिन्दी महिला नाटकों का विवेचन करने का प्रयास किया गया है जैसे - मंचाभिकल्पना, अभिनय और अभिनेयता की परिकल्पना, ध्वनि एवं संगीत योजना, दृश्य एवं प्रकाश योजना, वेशभूषा और रूप सज्जा तथा नाट्य भाषा आदि। इसकी रंगमंचीय सफलता का मूल कारण इसकी रंग-धर्मिता, अभिनयात्मक वृत्ति, स्पष्ट चरित्र परिकल्पना, भाषा की जीवंतता और अपने समय में जीवित दर्शक के सीधे संबोधन में विद्यमान है।

पाँच अध्यायों के निष्कर्ष को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अंत में सहायक ग्रंथ सूची संलग्न की गयी है।

मैं शोध-प्रबंध में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहायता, सुझाव व मार्ग दर्शन करने वाले सभी के प्रति आभारा व्यक्त करना चाहता हूँ। सर्वप्रथम शोध-निर्देशिका प्रो. नूरजहाँ बेगम जी के प्रति श्रद्धानवत हूँ जिन्होंने विषय-चयन से लेकर विषय की पूर्णता तक अपने अमूल्य सुझाव समय-समय पर देकर उपकृत किया है। उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन और उदारता के प्रतिदान में मेरा धन्यवाद भी तुच्छ पड़ जाता है।

मैं विशेष रूप से धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ कि प्रो. सय्यद ई सहनैन (कुलपति) जी का और उनके सह कर्मचारियों का जिनके सहयोग से ही मुझे राजीव गाँधी राष्ट्रीय अध्येतावृत्ति बढ़ाई हुई अवधि में भी प्राप्त हुई जिसकी सहायता से यह शोध प्रबंध सफल हो सका।

इस शोध प्रबंध की सफलता में परोक्ष रूप से यू.जी.सा. का सहयोग, आर्थिक सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहा प्रत्येक रूप से प्रो. एस. के. थोरठ (चैरमन आफ यू.जू.सी) और उनके सह कर्मचारियों को तहत धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

प्रत्येक रूप से धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ प्रो. अनंत कृष्णण जी (Dean of Students Welfare), प्रो.सर्राजू जी (Chief Warden), तुकाराम जी (Coordinator, Students Services), गंगाधर जी (Section officer, Personal Section) और बसवय्या जी (Senior Assistant Bills &Accounts) का जिन्होंने परोक्ष रूप से इस शोध प्रबंध के सफल होने में सहायक रहे हैं।

मैं आभारी हूँ हिन्दी-विभाग हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद के अध्यक्ष एवं अन्य प्राध्यापकों और विभाग के अन्य कर्मचारियों का जिनके प्रोत्साहन से मैं लाभान्वित हुआ।

मैं आभारी हूँ पुस्तकालय के मुख्य अधिकारी एवं कर्मचारियों, छात्रावास के मुख्य अधिकारी एवं कर्मचारियों, विद्यार्थी विभाग के मुख्य अधिकारी एवं कर्मचारियों, विद्यार्थी सेवा विभाग के मुख्य अधिकारी एवं कर्मचारियों आदि का जिन्होंने शोध-प्रबन्ध पूर्ण करने में मुझे प्रोत्साहन एवं सहयोग दिया।

इस कार्य में मेरी पत्नी और परिवार के अन्य सदस्यों का स्नेहपूर्ण व्यवहार ही मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहा है। इनका आभार व्यक्त करके मैं इनके ऋण से उऋण नहीं होना चाहता।

मेरे प्रिय मित्र जयराजू, शिवाजी, रामकृष्णा, राजशेखर, उदय, शेखर, चन्दु लक्ष्मण, विनायक, जी.प्रसाद और सुरेश के प्रति आभारी हूँ जिनके स्नेहमय प्रोत्साहन के बिना यह शोध प्रबंध साकार न होता।

इस शोध प्रबंध में यदि मेरी सीमित बुद्धि के कारण कहीं कोई कमियाँ रह गयी हैं तो क्षमा प्रर्थी हूँ।

दिनांक :   (परिशपोगु थामस बाबु)

स्थान : हैदराबाद विश्वविद्यालय

<u>अध्याय –एक</u>

समकालीनता : स्वरूप, विश्लेषण और हिन्दी महिला नाटककार

प्रथम अध्याय

समकालीनता : स्वरूप, विश्लेषण और हिन्दी महिला नाटककार

काल-दर्शन की दृष्टि से 'समकालीनता' शब्द विचारणीय है। यह एक जटिल गुत्थी है कि समय सत्ता प्रवाह से किस खण्ड को काटकर समकालीनता के दायरे में निबद्ध किया जाये और किस का परिहार किया जाये। इस संबंध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। अतः सर्वप्रथम समकालीनता शब्द का अर्थ एवं परिभाषा और अभिप्राय विचारणीय है –

1 .समकालीनता - अर्थ

'समकालीन' शब्द 'कालीन' विशेषण में 'सम' उपसर्ग जोड़ने से बना है। 'कालीन' का अर्थ है 'काल' में या 'समय' में। 'सम' उपसर्ग का प्रयोग प्रायः 'एक ही' या 'एक साथ' के अर्थ में होता है। अतः 'समकालीन' शब्द समय की धारणा से संबद्ध एक विशेषण है जो सामान्यतया एक ही समय में रहने या होनेवाले रचनाकारों का बोध कराता है। नालंदा अद्यतन कोश के अनुसार 'समकालीन' शब्द 'सम' उपसर्ग को 'कालीन' काल की अवधारणा से जुड़ा हुआ एक विशेषण में लगाकर बनता है जिसका अर्थ है – जो एक ही समय में हुआ हो।[1] महाराष्ट्र शब्द कोश में

---

[1] पुरुषोत्तम नारायण अग्रवाल (सं0) नालंदा अद्यतन कोश, पृष्ठ – 933

'समकालीन' को *एकाचकालचे* अर्थात् एक कालीन कहा गया है।[1] मानक हिन्दी कोश में इस शब्द के अनेक अर्थ प्रस्तुत किए गए हैं –

(क) जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे हों। एक ही समय में रहने वाले। जैसे महाराणा प्रताप अकबर के समकालीन थे।

(ख) जो उत्पत्ति, स्थिति आदि के विचार से एक ही समय में हुए हों।

'आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश' में 'समकालीन' का अर्थ - एककालिक एककालीन तथा समकालीन बताया गया है।"[2] 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार – समकालीन का अर्थ है जो दो या कई एक ही समय में हों।[3] 'हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश में भी 'समकालीन' का अर्थ – एक ही समय होने वाला बताया गया है।[4] इसी प्रकार 'बृहत् हिन्दी कोश' में इस शब्द का अर्थ - एक समय में रहने वाले' दिया गया है।"[5]

आधुनिक हिन्दी साहित्यकार तथा आलोचक समकालीन, समसामयिक आदि शब्दों का प्रयोग अँग्रेजी भाषा के काण्टेम्पोरेरी, सिमलटेन्यस, कोईवल आदि किसी-न-किसी शब्द के पर्याय के रूप मे प्रयुक्त करते हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि 'समकालीन के अर्थ' स्वरूप आदि का निश्चय करने से पूर्व 'समकालीन' शब्द के अँग्रेजी प्रतिशब्द पर विचार कर लिया जाए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अँग्रेजी भाषा के 'काण्टेम्पोरेरी' के लिए 'समकालीन' और 'समसामयिक' दोनों पर्यायों का प्रयोग होता है। उदा – व्यवहारिक हिन्दी-अँग्रेजी कोश में समकालीन शब्द के लिए 'काण्टेम्पोरेरी', 'काण्टेम्पोरेनयम' आदि शब्दों का

[1] अर्थ महाराष्ट्र शब्द कोश, विभाव सातवाँ, पृष्ठ - 3025
[2] रामस्वरूप शास्त्री (सं) आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश, पृष्ठ - 565
[3] संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृष्ठ - 976
[4] हिन्दी राष्ट्र भाषा कोश, पृष्ठ – 1415
[5] बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ - 1367

प्रयोग हुआ है।[1] "मानक अँग्रेजी-हिन्दी कोश' में भी 'काण्टेम्पोरेरी' को 'समकालीन' का अँग्रेजी पर्याय ठहराया गया है।[2] "डॉ. सूर्यकान्त 'समसामयिक', 'समकालीन' आदि शब्दों के लिए 'काण्टेम्पोरेरी' शब्द को ही प्रयुक्त करते हैं।[3] कुछ अन्य विद्वान् भी मानते है कि हिन्दी में 'समकालीन' शब्द अँग्रेजी के 'काण्टेपोरेरी' शब्द के पर्याय के रूप में ही प्रयुक्त होता है। आर. सी. पाठक ने 'कोईवल', 'लिविंग[4] और "डॉ. पी. एन टंडन तथा फादर कामिल बुल्के ने काण्टेपोरेरी शब्द को उचित ठहराया है।[5] 'आकाशवाणी शब्द कोश', 'मानविकी शब्दावली', 'पारिभाषिक शब्द संग्रह' सर मोनियर विलियम्स तथा वी. एस आप्टे का मत भी यही है।[6]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी 'समकालीन' शब्द के लिए अँग्रेजी का 'काण्टेम्परेरी' शब्द का प्रयोग उचित एवं संगत है, क्योंकि 'काण्टेम्परेरी' का अर्थ यदि एक ही समय में रहने या होने से है तो 'समकालीन' शब्द में भी एक ही समय में रहने या होने वाले अर्थ की गूँज है। यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि पश्चिम में 'काण्टेम्परेरी' (Contemporary) शब्द विवाद का विषय बने रहे हैं। सत्रहवीं शताब्दी तक वहाँ 'काण्टेम्परेरी' 'समकालीन' शब्द ही प्रयुक्त होता रहा। लेकिन बेंटल ने इस शब्द की अपेक्षा 'कोटेम्परेरी' शब्द का प्रयोग अधिक उचित समझा। इस प्रकार 1725 से 'कोटेम्परेरी' 'समकालीन' शब्द ही प्रयोग में आने लगा।

---

[1] समकालीन - Contemporary, Contemporaneous. महेन्द्र चतुर्वेदी. भोलानाथ तिवारी (सं) :व्यवकारिक हिन्दी अँग्रेजी कोश, पृष्ठ – 657

[2] Contemporary समकालीन. समसामयिक. एककालीन, मसानकाल - मानक अँग्रेजी-हिन्दी कोश, पृष्ठ - 288

[3] Dr. Surya kanta : Contemporary समकालीन. समसामयिक : A New English-Hindi Dictionary, P, 190

[4] R.C. Pathak : Bhargava's Standard Illustrated Dictionary of the Hindi Language, p. 989.

[5] Dr. P. N. Tandon : Glossary of Literary Terms, P.42

[6] (क) आकाशवाणी शब्द कोश, पृष्ठ - 74
(ख) मानविकी शब्दावली, पृष्ठ - 43
(ग) पारिभाषिक शब्द-संग्रह, पृष्ठ - 310
(घ) Sir Monier Williams : A Dictionary of English and Sanskrit, p. 130
(ङ) V.S. Ampte : The Standard English-Sanskrit Dictionary, p.77

2 समकालीनता - परिभाषा

अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना ही समकालीनता है। यह एक कालावधि क्रम है। प्रत्येक कालावधि की समस्याएँ अलग-अलग होती हैं या बदलती रहती हैं किन्तु आधुनिकता के साथ ऐसी बात नहीं है। आधुनिकता का यथार्थ बोध और समस्याएँ एक कालावधि की समस्याएँ नहीं होती बल्कि विस्तृत समय को प्रभावित करती हैं। सन् 1960 के बाद हिन्दी साहित्य क्षेत्र में जो तरह तरह के आन्दोलन उभरे हैं, ये सभी आधुनिकता से प्रभावित तो कहे जा सकते हैं लेकिन सामयिक नहीं कहे जा सकते। आज की परिस्थितियाँ नित्य ही परिवर्तित होती जा रही हैं। आज नैतिक मानदण्ड बदल चुके हैं। अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में भी परिवर्तन आया है। ऐसी स्थिति में समकालीन रचनाकार पिछले आंन्दोलनों से प्रेरणा नहीं ले पाता, किन्तु वर्तमान परिवेश के यथार्थ से वह मुँह भी मोड़ सकता। समकालीन रचनाकार सबसे अधिक बल देता है परिवेश के सार्थक बदलाव पर। प्रगतिशील रचनाकार में भी प्रभावित रही। इसलिए समकालीन रचनाकार उससे कोई प्रेरणा न ले सका।

समकालीन शब्द अंग्रेजी के काण्टेम्परेरी के पर्याय के रूप में हिन्दी में प्रचलित है जिसका कोशीय अर्थ एक ही समय का, अपने समय का, या समवयस्क होता है।

डॉ. रवींन्द्र भ्रमर ने समकालीनता के तीन अर्थ बताए हैं —"कालविशेष से सम्बद्ध, व्यक्ति विशेष के काल-यापन से सम्बद्ध। साहित्य समाज अथवा प्रवृत्ति विशेष से सम्बद्ध संश्लिष्ट कालखण्ड।"[1] विभिन्न कोशों की साक्षी के बावजूद एक विशिष्ट कालखण्ड में रचनाशील या समान वय वाले सभी रचनाकारों का समकालीन ठहराना भ्रमक होगा। इस अर्थ में किए जा रहे प्रयोगों पर व्यंग्य करते हुए निर्मल वर्मा ने कहा है कि — "आज समकालीन शब्द काफी विकृत हो चुका है। इसका प्रयोग उन सब

[1] डॉ. रवीन्द्र भ्रमर : समकालिन हिन्दी कविता - पृष्ठ - 19

लेखकों के लिए हो रहा है जो जीवित हैं और लिख रहे हैं।"[1] डॉ. यश गुलाटी समकालीनता को मुख्यतः समसामयिक बोध से जोड़ते हैं। उनके अनुसार समकालीनता की वास्तविक कसौटी बोध, प्रवृत्ति अथवा रचना शिल्प की समान-धर्मिता है। इसमें भी विशेष आग्रह बोध के प्रति है, वह समसामयिक आज का, हाल का होना चाहिए।"[2] डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के अनुसार – "समकाल शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खंड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है। इसे उलझकर कहें तो कहेंगे कि मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर या उसे अंकित-चित्रित करके ही हम समकालीनता की अवधारणा को समझ सकते हैं। शर्त यही है कि लेखक आज के मनुष्य (देशकाल-स्थिति) के अंकन में, वस्तुगत रहे, यानि उसके चित्रण की विधि कोई भी हो लेकिन उससे जो मानव बिम्ब उभरता हो, वह वास्तविक जीवन के निकट हो।"[3]

अर्थात समकालीन अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।"[4] स्वचेतना, सचेतना और संवेदनशीलता इसकी अनिवार्य शर्तें होती हैं। जड़ व्यक्ति अपने काल, समय और पवृत्तियों की परवाह नहीं करता। वह एक गतिशील मूर्छा में जीता है, किन्तु सचेतन समकालीन व्यक्ति का कालबोध, देशबोध व्यक्ति और समूहबोध संग्रथित (इंटीग्रेटेड) बोध होता है। वह काल के किसी बिन्दु को निरपेक्ष और अलग-अलग नहीं मानता। वर्तमान में वह भूत और भविष्य को समझता है। यह समझ ही व्यक्ति को समकालीन बनाती है और उसे काल की निरन्तरता का प्रवाह और परिणतियों की सम्भावनाओं का ज्ञान कराती है।"[5]

---

[1] जगदीश नारायण श्रीवास्तव : समकालीन कविता पर एक बहस, पृष्ठ - 20 पर उद्धृत
[2] डॉ. यश गुलाटी : समकालीन कविता, भूमिका - पृष्ठ - 7
[3] डॉ. विश्व म्भर नाथ उपाध्याय : समकालीन हिन्दी कविता की भूमिका - पृष्ठ - 2
[4] डॉ. विश्व म्भर नाथ उपाध्याय : समकालीन सिद्धांत और साहित्य - पृष्ठ - 16
[5] डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : समकालीन सिद्धांत और साहित्य - पृष्ठ - 16

अतः समकालीनता का संबंध कालविशेष से होने के साथ-साथ व्यक्ति विशेष के कालयापन तथा साहित्य, समाज अथवा परिवेश के परिवर्तनशील प्रवृत्ति से भी है।

अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करते हुए समकालीन रचनाकार का इस निष्कर्ष पर पहुँच जाना असंभावित नहीं कि मनुष्य के संकट और दुःख मात्र बाहरी कारणों से नहीं उपजते, भीतरी कारणों से भी पैदा होते हैं। एक लंबी कालावधि से राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था हमारी चेतना को इस सीमा तक अभिभूत कर चुकी है कि उसके प्रति हमारा प्रतिरोधात्मक रवैया निःशेष हो चुका है। इसलिए स्थितियों और उनकी उत्तरदायी शक्तियों की वास्तविकता का बोध समकालीन बोध की आवश्यक शर्त है। स्वाभाविक रूप से यह बोध परिवर्तन संकल्प के रूप में ढलता रहता है। लेकिन डॉ. उपाध्याय द्वारा समकालीनता को शोषक वर्गों और उनकी शक्तियैं, समूहों की ध्वंस, युयुत्सा, सक्रिय संघर्ष आक्रमकता और गुरल्लापन से जोड़ना अपने राजनीतिक विचारों को समकालीनता पर आरोपित करने तथा उसका स्वरूप विकृत करने का प्रयत्न ही मालूम पड़ता है।

निस्संदेह समकालीन रचना कालंकित होती है। किन्तु एक विशिष्ट काल खंड से जुड़ी होने पर भी इसका अर्थ किसी काल खंड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण या बयान भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना उनके मूल स्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है।"[1] अतएव स्पष्ट है कि समकालीनता केवल परिदृश्य कथन नहीं है यह परिदृश्य किन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से छनता हुआ बनता है, इसे देखना-परखना भी जरूरी है। जरूरी यह भी है कि समसामयिक स्थितियों से जुड़े हुए आत्मीय तथा सामाजिक संदर्भों को पहचानते हुए समकालीन वास्तविकता के सघन जटिल और गहरे स्तरों में पैठा जाए उनसे निष्पन्न सामाजिक और अस्तित्वगत चेतना बोध कराया जाए।"[2]

---

[1] नरेन्द्र मोहन : समकालीन कहानी की पहचान - प्रस्तावना - पृष्ठ - 7
[2] नरेन्द्र मोहन : समकालीन कहानी की पहचान - प्रस्तावना - पृष्ठ - 7

इसके अलावा यह भी स्पष्ट है कि समकालीन रचनाकार अपने युग की वास्तविकता को यथावत् स्वीकार नहीं कर लेता। वह आलोचनात्मक दृष्टि से इसकी जाँच-पड़ताल ही नहीं करता बल्कि जैसा कि स्टीफन स्पैंडर मानते हैं वह उनके प्रति कई बार क्रान्तिकारी रवैया भी अपनाता है। समकालीन रचनाकार का बोध एकाँगी और इसहरा नहीं होता। अपने स्वचेतना और संवेदनशीलता के बल पर वह काल सीमाओं का अतिक्रमण करता है। वह जड़ और संवेदनाशील व्यक्ति नहीं हो सकता। स्वचेतना, सचेतना या संवेदनशीलता समकालीनता की अनिवार्य शर्तें है। जड़ व्यक्ति, अपने काल, अपने समय के व्यक्ति और प्रवृत्तियों की परवाह नहीं करता। वह एक गतिहीन मूर्च्छा में जीता रहता है।"[1] यही कारण है कि समकालीनता अपने समय से सम्बद्धता के बावजूद सर्वशतः अपने अतीत से विच्छिन्न नहीं हो सकती। वास्तव में उसकी ऐतिहासिक प्रक्रिया में बीत चुकी समकालीनता के भी बहुत से अंश आगामी युग में अपनी प्रासंगिकता खोजते हैं और उस युग की समसामयिकता का अंग बनकर उसकी समकालीनता में स्वीकृति पा लेते हैं।"[2]

समकालीन पूरे युग का सामाजिक, ऐतिहासिक बोध न होकर स्थिति विशेष का ही बोधक है। जिसे आधुनिकता के संदर्भ में एक सीमित दायरे में देखा जाता है।"[3] जबकि समकालीनता आधुनिकता से प्राप्त एक संस्कार है जो की प्रक्रिया से जन्मता है और उसे एक बोध के रूप में प्रतिपादित भी करता है।"[4] यह संस्कार समकालीनता को एक दृष्टि देता है। ऐसी दृष्टि जो आधुनिकता से अलग किन्तु विरोधी नहीं प्रत्युत् सर्वथा समानान्तर। समकालीनता इस दृष्टि से किसी काल की स्थिति विशेष की वह दायित्वपूर्ण चेतना है जो अपने परिवेश के विविध पहलुओं को निश्चयात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है।

---

[1] डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : समकालीन सिद्धांत और साहित्य - पृष्ठ – 13
[2] मधुमति; सितंबर, 1978 (आधुनिकता और समकालीनता की प्रक्रिया : काल चेतना के संदर्भ) - डॉ. हरिमोहन - पृष्ठ - 70
[3] डॉ. त्रिभुवन सिंह : आधुनिक साहित्य निबिध - पृष्ठ - 477
[4] समकालीन हिन्दी नाटक - कथ्य चेतना - डॉ. चंद्रशेखर -पृष्ठ - 3

प्रत्येक वर्तमान चिंतन समकालीनता से ही यथार्थता ग्रहण करता है। परिवेश की परिवर्तनशीलता के कारण समकालीनता का स्वरूप, देशकाल की विविधता में विभिन्न प्रकार का हो सकता है। स्थिति विशेष के प्रति जागरूकता समकालीनता के दायित्व निर्वाह से भी अभिव्यंजित होती है। देशकाल का दायित्व, मानवीय दायित्व को प्रतिबिम्बित करता है। हो सकता है कि उसमें कोई बड़ी बात न हो, कोई बड़ा स्वप्न या कोई बड़ा अभिमान न हो। इसके बावजूद इससे एक ईमानदारी हो, जो उस स्थिति विशेष की अनुभूति को अर्थ दे सके। इस अर्थ के माध्यम से वह उन क्षणों की सार्थकता पा सके जो वर्तमान के यथार्थ से ऊपर उठकर उसकी चेतना को आंदोलित करने में समर्थ हो सका।"[1] समकालीन बोध परम्परित मूल्य चेतना को मानता है। नये मूल्यों की तलाश में वह जिस प्रकार का अनुभव प्राप्त करता है, जिन समस्याओं से उसे गुजरना पड़ता है इन सबके मूल में जो कुछ उसे सही और सार्थक प्रतीत होता है उसे प्रतिमानों के रूप में घोषित करता है।"[2] धूमिल के शब्दों में – "कविता में मूल्यों की चर्चा बनियों की फर्मे में काम करने वाले साहित्यकों पर ही छोड़ना उचित होगा क्योंकि मूल्यों और मूल्यहीनता की बात अपने आप में न तो मौलिक रह गयी है और न ही आधुनिक ही।......मूल्य शब्द अपने आप में एक धोखा है।"[3] इस संदर्भ में समकालीन कवि यह मानता है कि जहाँ मूल्य-चर्चा का आधार मर्यादा, शालीनता, अनुशासन के साथ विवेक को महत्व देता है वहीं मूल्यहीनता विकृतियों तथा संशय, संत्रास, व्यंग्य, ऊब, निराशा, अनास्था आदि स्थितियों की ओर संकेत करती है।

स्वतंत्रतापूर्व का भारतीय समकालीन चिंतन पूर्णतः राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए था। स्वतंत्रता के बाद असमानता और राजनीतिक अस्थिरता का जो दौर आया उससे समकालीन बौद्धिक चिंतन में काफी तीखापन आ गया। स्वतंत्र भारत में एक आम

---

[1] नयी कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकान्त वर्मा - पृष्ठ - 49

[2] समकालीन कविता के तीन पड़ाव : डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - पृष्ठ - 49

[3] समकालीन कविता के तीन पड़ाव : डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - पृष्ठ - 49

आदमी घुटन, गरीबी, बेरोजगारी और विवशता में जीने के लिए मजबूर था। सरकार की जोयनाएँ फाइलों की संख्या बढाती रहीं। आम नागरिक अपनी उसी स्थिति में रहा जिस स्थिति में स्वतंत्रतापूर्व था। इन योजनाओं से उसे विशेष लाभ नहीं हो सका। इसके विपरीत जनप्रतिनिधि, जो आम जनता के कल्याण की शपथ लेकर संसद में गए थे, वे सभी कुर्सी केलिए लड़ते रहे और सिद्धंतहीन, दलगत राजनीति करते रहे। भारतीय संसद समकालीन रचनाकार की नजर में मरी हुई साबित हुई। सन् 1960 के बाद तो यह स्तिति इतनी विषम हो गयी कि वह उसके प्रति पूर्णतः विद्रोही हो गया। देश का समकालीन साधारण जन पशुस्तर से कुछ इंच ही ऊपर जीने को विवश होता रहा और करोड़ों लोग दरअसल पशुस्तर पर भी नहीं जी पाते क्योंकि उन्हें न तो भोजन उपलब्ध होता है और न निवास।"[1]

समाज की ऐसी विषम स्थिति में पूँजी का केन्द्रीकरण होता गया और भारतीय जीवन दो वर्गों, अति अमीर और अति गरीब, में बांटा गया। इन दोनों के बीच एक वर्ग और विकसित हुआ जो मध्यवर्ग था। यह न तो गरीब था और न ही अमीर। बस किसी तरह से अपने स्तर को बनाये हुए जीता रहा। अधिकांश समकालीन चिंतक और रचनाकार इसी वर्ग के हैं जो परिवेश की विसंगतियों के प्रत्यक्ष भोक्ता रहे हैं। संघर्ष बेकारी और विवशता में इनका चिंतन क्रमशः आक्रामक और तीखा होता गया है। इसमें समकालीनता की पहचान और स्पष्ट होती है। वास्तव में समकालीनता की यह स्पष्ट पहचान है कि वह शोषकों, अत्याचारियों और बर्बरों के खूनी आतंक तथा चक्र के खिलाफ प्रतिबद्ध रूप में जनसंघर्षों और मुक्ति अभियानों को अपना संपूर्ण समर्थन दे।"[2] अर्थात् अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं से उलझे और उसे एक नयी दिशा देने का प्रयास करे। समकालीन चिंतन का प्रतिबद्ध होना अनिवार्य है, क्योंकि जब तक रचनाकार प्रतिबद्ध नहीं होगा तब तक वह परिवेश का यथार्थ

---

[1] समकालीन हिन्दी कविता की भूमिका : डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - पृष्ठ - 1

[2] समकालीन लेखन की मंजिल, - राजशेखर - अवकाश (मा) 31 मार्च 1987 - पृष्ठ - 39

मूल्यांकन नहीं कर पायेगा और न ही आम आदमी से ही सहज ढंग से जिड़ पायेगा। रचनाकार का सबसे पहले अपने को व्यापक मानव नियति के प्रति प्रतिबद्ध अनुभव करना है।"[1] यह अनुभव ही उन तमाम विषम स्थितियों के विरोध में समकालीन रचनाकार को खड़ा करता है जो मानवता के विरुद्ध हैं।

समकालीनता में द्वन्द्वात्मकता भी अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। वास्तव में समकालीनता केवल प्रवाह नहीं, उसका स्वरूप यदि द्वन्द्वात्मक नहीं, तो फिर कुछ भी नहीं।"[2] यह द्वन्द्वात्मक स्थिति ही उसे अविराम रूप से कालचक्र से सम्बद्ध रखती है। इस प्रकार वह एक और व्यतीत को समर्पित होती रहती है तो दूसरी ओर अनागत में अपनी संभावनाएँ खोजती रहती है। एक ओर तिल-तिल क्षरित होना और दूसरी ओर तिल-तिल जुड़ते जाना, यह अपने आप में एक द्वन्द्वात्मक स्थिति है जो कि समकालीनता की प्राणचेतना से जुड़ी हुई है और जिसके अभाव में समकालीनता मात्र एक समसामयिक काल प्रवाह बन जाती है। अतः यह एक उसकी अनिवार्य अपेक्षा है जो उसे रचनात्मक ऊर्ज प्रदान करती है। इसी बिन्दु पर से समकालीनता की दोहरी भूमिका उदित होती है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि समकालीनता हमें जीवन के सभी क्षेत्रों में सक्रिय होने की तत्परता देती है। तत्परता जीवन की ऊपरी और बाह्य समस्याओं और प्रश्नों से ही सम्बद्ध नहीं करती, यह जीवन के गहनतम अन्तरालों में व्याप्त समस्याओं से भी जोड़ती हैं।

3.समकालीनता - समय सीमा निर्धारण

काल खण्ड की दृष्टि से समकालीनता शब्द विचाचणीय है। यह एक जटिल गुत्थी है कि समय के सत्ता प्रवाह में से किस खण्ड को काटकर समकालीनता के दायरे में निबद्ध किया जाये और किस काल-खण्ड का परिहार किया जाये। इस

---

[1] नयी कविता का परिप्रेक्ष्य - डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव - पृष्ठ – 11

[2] डॉ. धनंजय वर्मा (सं.) समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि (समकालीन कहानी : एक रचनाशील संघर्ष - सुरेन्द्र चौधरी) पृष्ठ - 148

सम्बन्ध में विद्वान् एक मत नहीं है। इस संदर्भ में राममूर्ति त्रिपाठी ने अपने *'समकालीन हिन्दी साहित्य की रचना-प्रक्रिया तथा अन्यान्य संदर्भ'* शीर्षक में लिखा है कि आज के संदर्भ में कालावधि क्यों मानें? एक वर्ग कहता है कि छायावादोत्तर साहित्य समकालीन (अब भी) है, जबकि दूसरा वर्ग कहता है कि साठोत्तर साहित्य समकालीन है। एक सरफ़ से कविता के नए प्रतिमान में कहा गया है कि समकालीन हिन्दी आलोचना के अन्तर्गत व्याप्त मूल्यान्ध वातावरण का विश्लेषण करते हुए उन काव्यमूल्यों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है जो आज की स्थिति में वह प्रासंगिक है। स्मरणीय है कि इस का प्रथम संस्करण 1968 का है। दूसरी ओर डॉ. विश्वम्भरानाथ उपाध्याय को उदृत करते हुए *'समकालीन कविता में धूमिल'* में डॉ. मंजुल उपाध्याय का पक्ष है समकालीन कविता शब्द साठोत्तर की कविता के लिए प्रयुक्त होने लगा है।

उपर्युक्त विवेचन से गद्यबद्ध साहित्य विधाओं को दृष्टिगत करें तो छायावादोत्तर को समकालीन कह सकते हैं, कविता के क्षेत्र में निरन्तर निरुपवाद की दृष्टि से साठोत्तर को समकालीन में लिया जा सकता हैं।

1960 की विभाजक रेखा को समकालीन मानते हुए डॉ. वचनदेव कुमार ने अनुवाक् शोध-पत्रिका में कविता, उपन्यास एवं नाटक आदि विधाओं का विवेचन एवं मूल्यांकन को महत्व दिया है। साठोत्तरी नाट्य-साहित्य को नज़र में रखकर जयदेव तनेजा ने अपनी पुस्तक *'समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच'* लिखी है। अतः साठोत्तरी का पर्याय यहाँ समकालीनता को माना जा सकता है।

समकालीनता और आधुनिकता पर्याय न होते हुए भी दोनों अन्योन्याश्रित हैं। समकालीनता आधुनिकता का जहाँ अंतिम और वर्तमान रूप है वहीं समकालीन साहित्य का तात्पर्य प्रायः 1960 के बाद के साहित्य को ले लिया जा सकता है।

4.समकालीनता - समसामयिकता

कई बार 'समकालीनता' शब्द के स्थान पर 'समसामयिकता' शब्द का प्रयोग दिखायी देता है। वास्तव में ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। आंग्ल भाषा में इन दोनों शब्दों के लिए एक ही शब्द 'काण्टेम्परेरी' (Contemporary) प्रयुक्त होता है। उसके अतिरिक्त 'समय' और 'काल' दो समानार्थी शब्द हैं। इसलिए स्पष्टतः 'समकालीनता' और 'समसामयिकता' से समान अर्थ का ही बोध होता है। इन्हें भिन्नार्थक शब्द नहीं समझा जाना चाहिए।

5.समकालीनता - तात्कालिकता

कई बार 'समकालीनता' और 'तात्कालिकता' का प्रयोग एक ही अर्थ में कर लिया जाता है किन्तु ऐसा करना भ्रामक है। वास्तव में दोनों में अन्तर है। समकालीनता तात्कालिकता नहीं है। जगदीश नारायण श्रीवास्तव ने समकालीनता और तात्कालिकता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि किसी भी तात्कालिक घटना के कारण यकायक रचना का कोई नया प्रस्थान-बिन्दु नहीं बना करता। रचनाकार की अनुभूतिक पकड़ और वैचारिक दृष्टि बहुत पीछे से जीवन परिस्थिति की जड़ों और संभावित काल को टटोलते हुए अपनी वर्तमानता का निर्धारण कर पाती है तथा उसे रचना की बुनावट में कसती रहती है। यह भी सच है कि तात्कालिकता के समस्त संघटन तत्व समकालीन नहीं होते पर तात्कालिकता ही समकालीनता की अन्तर्दशाओं को रूप देती हैं। ये अन्तर्दशाएँ युग विशेष की रचना प्रवृत्ति का निर्माण करती हैं और इस प्रकार समकालीनता का काल-संदर्भ में विस्तार होता है, जबकि प्रत्येक तात्कालिक केवल पीछे छूटती जाती है। उदाहरण के लिए आजादी के बाद भारत के शहीद तथा सच्चे क्रान्तिकारियों के प्रति सत्ता का उपेक्षा भाव, राष्ट्रमण्डल की सदस्यता, मिश्रित उद्योग नीति, गुलाम भारत के संविधान पर आधारित भारतीय गणतंत्र का संविधान, देश पर 1962 का चीनी आक्रमण, सूखा, बाढ़ और अकाल की

विभीषिका, भ्रष्टाचार, मजदूर हड़तालें आदि वे तात्कालिक सन्दर्भ हैं, जिन्हें हमारा सारा समकालीन सन्दर्भ समेटता है। ये सारे सन्दर्भ एक व्यापक और समग्र समकालीनता की पृष्ठभूमि हैं।"[1] इस प्रकार समकालीनता देश-काल के बोध के साथ सक्रियता की भी पुष्टि करती है। यह बात तात्कालिकता के साथ नहीं है। जिस भी समय-परिवेश में हम हैं, उसकी सीमाएँ और विस्तार को हम तात्कालीन यथार्थ द्वारा अनुभव नहीं कर सकते हैं। इसमें केवल समकालीन यथार्थ ही हमारी सहायता कर सकता है। तात्कालिकता का अर्थ किसी तात्कालिक काल-खण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का निरूपण है। जबकि समकालीनता इन स्थितियों और समस्याओं को ऐतिहासिक अर्थ में समझती है, उनके मूल स्त्रोत तक पहूँचती है और फैसला ले सकने का विवेक अर्जित करती है। स्थितियों और समस्याओं के चित्रण, निरूपण और बयान से कोई रचना तात्कालिक तो बन सकती है, लेकिन समकालीनता नहीं। वास्तव में समकालीन जीवन में घटित होने वाले परिवर्तनों का सघन और संश्लिष्ट रूप में रचनात्मक प्रमाण दिए बिना कोई रचना समकालीन नहीं बन सकती।"[2]

इसके अतिरिक्त समकालीन अपनी कालांकितता के बावजूद एक धरातल पर अतीत और भविष्य से भी जुड़ी हुई होती है, इसी वजह से उसका बोध अपने समय की परिधि से निबद्ध नहीं होता। यहाँ तात्कालिकता को किसी एक सूत्र में बाँधकर या किसी एक धरातल तक सीमित रखकर उसकी पहचान की जा सकती है, वहाँ समकालीनता में ऐसा करना संभव नहीं है।

6.समकालीनता - आधुनिकता

'समकालीनता' और 'आधुनिकता' में अन्तर स्पष्ट करने से पहले युग-बोध, आधुनिक बोध, आधुनिकता बोध आदि के अभिप्रायों एवं पारस्परिक सम्बन्धों की छान-

---

[1] जगदीश नारायण श्रीवास्तव : समकालीन कविता पर एक बहस - पृष्ठ - 17-18

[2] डॉ. नरेद्र मोहन : समकालीन कहानी की पहचान, प्रस्तावना - पृष्ठ – 7-8

बीन करना आवश्यक है। वैसे भी आधुनिकता तक पहुँचने की ये आवश्यक सीढ़ियाँ हैं।

'आधुनिकता' आंग्ल भाषा के 'मॉडर्निटि' (Modernity) शब्द का हिन्दी पर्याय माना जा सकता है। शब्दकोश में आधुनिक शब्द का अर्थ मिलते हैं - अर्वाचीन, वर्तमान समय का, नवीन, साम्प्रतिक इत्यादि।"[1] रामशंकर शुक्ल रसाल ने अपने शब्दकोश में आधुनिक को मॉडर्न का पर्याय ही माना है।"[2] कतिपय विद्वान् आधुनिकता को आहार-व्यवहार एवं वेशभूषा की विशिष्ट तथा नवीनतम पद्धतियों से जोड़कर देखना चाहते हैं। डॉ. कुमार विमल के शब्दों में – "विचार ही नहीं, सामाजिक रहन-सहन की दृष्टि से भी आधुनिकता का अर्थ है - पश्चिमी रंग में रंगना।"[3] कुमार विकल का रहन-सहन में पश्चिमी अनुकरण का यह अर्थ केवल जन-सामान्य तक ही प्रचलित है। अतः साहित्यिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में यह अर्थ समीचीन प्रतीत नहीं होता। वेशभूषा और रहन-सहन में पाश्चात्यानुकरण आधुनिकता का पर्याय न होकर विचार तथा व्यवहार में वैज्ञानिक तथा बौद्धिक दृष्टि का प्रयोग ही व्यक्ति को आधुनिक बनाता है। रवीन्द्र भ्रमर का मानना है – "आधुनिकता की धारणा को व्यक्ति और व्यवहारगत अनुभूति से भी जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। लेखन के सन्दर्भ में विचार और अनुभूति नयेपन ताज़गी और उनकी बेलाग अभिप्राय का नाम ही आधुनिकता है।"[4] एक अन्य समालोचक डॉ. हुकुमचन्द राजपाल के अनुसार विचारकों ने यह गुत्थी जटिल कर दी है कि आधुनिकता क्या है? उनका कथन है – "अधिकांश कवि आधुनिकता को वर्तमान के सन्दर्भ में एक भविष्योन्मुखी दृष्टि के रूप में स्वीकारते हैं। नवीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपने आप का संस्कार करना ही आधुनिकता है। आधुनिकता के वास्तविक अर्थ के विषय में पाश्चात्य एवं भारतीय

---

[1] श्री नवल जी (संपादक) - नालन्दा विशाल शब्द सागर - पृष्ठ - 127

[2] भाषा शब्द कोश, चतिर्थ संस्करण – 1980

[3] आधुनिक हिन्दी साहित्य, पटना, पृष्ठ – 213

[4] समकालीन हिन्दी कविता - पृष्ठि – 112

दृष्टि से निष्कर्ष स्वरूप कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि प्रायः इसकी व्यवहार में आधुनिकता समसामयिकता के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट नहीं किया जाता। एक मत यह है कि आधुनिकता का सीधा अर्थ समसामयिकता है, परन्तु दूसरा मत दोनों में भेद करता है और आधुनिकता को अधिक आन्तरिक और स्वरूपगत भाव मानता है।"[1] उन्होंने इसे एक गतिशील जीवन-दृष्टि के रूप में स्वीकारा है – "आधुनिकता देश-काल के सापेक्ष होते हुए भी उसके बन्धन में नहीं बाँधी जा सकती। ऐसा केवल इसलिए कहा जाता है, क्योंकि परिस्थितियों एवं समय के अनुसार यह शाश्वत क्रम है।"[2] डॉ. आदित्य प्रचण्डिया आधुनिकता के तीन आधार-बिन्दु मानते हैं - (1) देश-काल के साथ जीवन्त एवं सचेतन सम्बन्ध (2) विवेक से परिपूर्ण वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि (3) प्रगतिशील परम्परा का प्रदर्शन।"[3]

"आधुनिकता का प्रश्न साहित्य के सन्दर्भ में" नामक आलोचनात्मक निबन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता का स्वरूप निर्धारित करते हुए इसे काल, युग और विचारपरक तीन अर्थों में रखा है। उनके अनुसार समकालीन साहित्य में इसका विचारपरक अर्थ इस प्रकार आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप आधुनिक युग के प्रतिनिधि जिस जीवन-दर्शन का विकास हुआ है, उसके अन्तर्मुख चिन्तकों ने - अस्तित्ववाद और बहिर्मुख विचारकों ने निराशावादी वैज्ञानिक मानववाद कहा है। सामान्य रूप से इस जीवन-दर्शन को ही आधुनिकता के सूत्रबद्ध लक्षण के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।"[4] वस्तुतः यह बात डॉ. नगेन्द्र ने आधुनिक साहित्य में अस्तित्ववादी दर्शन के फलस्वरूप आने वाली अनास्था, कुण्ठा और सन्त्रास को लक्ष्य करके कही है। कुछ नये साहित्यकार आधुनिकता को इस अर्थ में ग्रहण भी करते रहे हैं।

---

[1] डॉ. हुकुम चन्द राजपाल - आधुनिक काव्य में नवीन जीवन - पृष्ठ – 88
[2] डॉ. हुकुम चन्द राजपाल - आधुनिक काव्य में नवीन जीवन - पृष्ठ – 88
[3] डॉ. आदित्य प्रचण्डिया - आधुनिक हिन्दी कविता : परम्परा और परिवेश - पृष्ठ - 13
[4] आलोचना, विशेषांक, भाग-2, जुलाई, 1965, पृष्ठ -1

6.1 .युग बोध

युग-बोध से समान्यतः युग की मान्यताओं, स्थितियों एवं सन्दर्भों का बोध होता है। प्रत्येक युग का अपना एक विशिष्ट अथवा सामान्य बोध होता है। युगबोध की महत्ता उसके विकसित या परिवर्तित होने में है। इसलिए आदि-युग का बोध भक्ति-युग के बोध से पृथक् है तथा भक्ति-युग से रीतियुग एवं आधुनिक युग का बोध सर्वथा भिन्न है। कारण यह है कि प्रत्येक युग की अपनी परिस्थितियाँ होती हैं, कई प्रकार की विवशताएँ हुआ करती हैं। इस बात पर बल देना अनावश्यक ही है कि युग-परिवर्तन अथवा विकास मूल्यों एवं लोगों की मान्यताओं के कारण होता है। इसलिए जब कोई मूल्य बहुत से समान-धर्मी व्यक्तियों को प्रभावित करता है तब वह बोध वृत्ति धारण करता है। इसी से युग विशेष के बोध निर्माण स्वयं हो जाता है। प्रत्येक देश एवं समाज का अपना बोध होता है और युग के परिवर्तन के साथ उसका बोध भी बदलता अथवा विकसित होता रहता है।

6.2 .आधुनिकीकरण

सामानतः आधुनिकीकरण का शाब्दिक अर्थ नवीनीकरण स्वीकार किया जाता है। जीवन की जटिलता और समय से टकराहट के क्रम में ही आधुनिकीकरण होता है। आधुनिकीकरण निस्संदेह मशीन से मनुष्य के जीवन को सुखतर बनाने की विधि से उत्पन्न एक प्रकार की जीवन विधी का प्रारूप है। दूसरे शब्दों में कहे तो आधुनिकीकरण एक प्रकार का रूपान्तरण करता है। यह यंत्र के प्रभाव, उसके द्वारा परिचालित जीवन चर्या एवं उसकी तात्कालिकता से उत्पन्न अनेक तनाव जैसी परिसीमा का निर्माण करते हैं। उसी रूप में वह मनुष्य की व्यवहार दिशाओं का नियमन करती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आधुनिकीकरण ही रूपान्तरित होकर आधुनिकता बन जाता है। गंगा प्रसाद विमल का कथन है कि विज्ञान ने आधुनिकता को आधुनिकीकरण के जरिए व्यंजित किया है। एक पुराने गणितीय विचार को फिर से अनुसंधान के जरिए प्रमाण द्वारा प्रमाणित कर सार्वभौम

बनाया है। और एक पुरानी को निरन्तर आधुनिकीकृत किया है।"[1] औद्योगिक केन्द्र नगर विद्युतीकरण, संचार साधनों के व्यापक उपयोग शिक्षा और अधिकाधिक विज्ञानाश्रित बनाता है। सामाजिक स्थितियों में आधुनिकीकरण की उपस्थिति ने सामाजिकों की जीवन पद्धति में परिवर्तन प्रस्तुत किया है। उनकी क्रिया, व्यवहार, उनकी आदतों और अनुभव के विषयों में अन्तर आया है। यही सत्य एक सामूहिक अनुभव के रूप में साहित्य कलाओं में प्रतिबिंबत होता है। साहित्य की विधाओं का शास्त्रीय विधान भी परिवर्तित हुआ है और इस क्रम में स्वयं साहित्यिक विधाएँ बदलती हैं। मानव जीवन की पुरानी धारणाओं-विश्वासों पर प्रश्न चिह्न लगाकर आधुनिकीकरण ने आदमी के आगे एक धर्म-निरपेक्ष विकल्प रखा है। साहित्य रचनाओं ने इस बिन्दु को व्यापक रूप से अपनी अभिव्यक्तियों में स्थान दिया है।

6.3.आधुनिक बोध

आधुनिक बोध में 'आधुनिक' और 'बोध' दोनों व्याख्या सापेक्ष हैं। 'बोध' शब्द इन्द्रियानुभूति के माध्यम से किसी वस्तु की स्थिति का परिज्ञान कराता है जिसमें समय-सापेक्षता अधिक रहती है। 'आधुनिक' शब्द कालवाची है किन्तु आजकल 'आधुनिक' शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। आधुनिक बोध के अभाव में साहित्य के अन्तर्गत समकालीन ऐतिहासिक बोध को पूरी संवेदना के साथ जगह नहीं मिल सकती। आधुनिक बोध से कटा हुआ व्यक्ति किसी और युग की भावनाओं में जीने वाला समझ जाएगा या कम-से-कम उसमें ऐतिहासिक चेतना का अभाव समझा जाएगा।"[2]

डॉ. नगेन्द्र ने इसे एक अन्य ढंग से स्पष्ट किया है - उनके अनुसार आधुनिक शब्द का सामान्यतः तीन अर्थों में प्रयोग होता हैं - (क) समय सापेक्ष (ख) नए का

---

[1] गंगा प्रसाद विमल : आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में - पृष्ठ – 1

[2] डॉ. म.ह. राजूरकर : अनियत अंकन, पृष्ठ – 125

वाचक (ग) विशिष्ट दृष्टिकोण या जीवन-दर्शन का वाचक।"[1] एक अन्य स्थान पर डॉ. नगेन्द्र लिखते है कि ऐतिहासिक क्रम में सदैव अपने से नएपन के पर्याय के रूप में आधुनिक एक संज्ञा है। आधुनिक उस क्रिया की संज्ञा है जो उसे पूर्ववर्ती से अलगाती है। यह क्रिया अथवा गतिविधि की चेतना एक इतिहास के चेतना है। यह एक लम्बे आत्मान्वेषण के पश्चात् जन्मे यातनादायी इतिहास के पश्चात् निर्मित होती है। पूर्ववर्ती से अलगाव की भूमिका उसी आधुनिकता को निभानी पड़ती है जो आधुनिक के बोध का वहन करती है।"[2]

6.4.आधुनिकता बोध

'आधुनिकता' शब्द के साथ 'बोध' का प्रयोग आज व्यापक सन्दर्भ में हो रहा है। आधुनिकता बोध का अर्थ व्यापक और गत्यात्मक ही माना जाना चाहिए। इसके लक्षणों को बताते हुए डॉ. नगेन्द्र कहते है कि परम्परा का संशोधन, जीवन के वैविध्य की स्पृहा, अपने पर्यावरण के माध्यम से आत्मसिद्धि विकास की आकाँक्षा आदि ही आधुनिकता-बोध के लक्षण हैं।"[3]

6.5.आधुनिकता और आधुनिकता बोध

आज के युग में आधुनिकता विवादास्पद है। इसके लेकर कई तरह के मतमतांतर पैदा हुए हैं। कई विद्वानों मनते हैं कि जिस आन्दोलन को आधुनिकता के नाम से पुकारा जाता है, उससे मिलते-जुलते भावों की तरह भरत में तीन बार उठी है। पहले तो बुद्ध के आविर्भाव के साथ, फिर कबीर, नानक और वैमना के युग में और भारत में आँग्रेजी के आगमन के बाद। उन्नीसवीं सदी भारत के नव जागरण का काल है। उस समय भारत के श्रेष्ठजन आधुनिकता की ओर बड़े वेग से बढ़े थे। किन्तु उस काल में दो बातों के कारण आधुनिकता सन्देह की वस्तु बन गयी। दूसरे,

---

[1] गंगा प्रसाद विमल : आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में पृष्ठ 20 पर उद्धृत

[2] डॉ. नगेन्द्र : आस्था के चरण, पृष्ठ – 217

[3] डॉ. नगेन्द्र : नयी समीक्षा : नए सन्दर्भ, पृष्ठ - 67

जो लोग अँग्रेजी पढ़कर आधुनिक बने उनके व्यवहार में उदारता और संयम की बजाए उच्छृंखलता ज्यादा थी। अतएव नवजागरण के नेता आधुनिकता को स्वीकार करते हुए भी परम्परा के सर्वोत्तम गुणों की रक्षा पर जोर देते रहे।

वास्तव में उन्नीसवीं सदी में दीख पड़ने वाली आधुनिकता की लहर भारत में पश्चिम से ही आई थी। अतएव आधुनिकता के बारे में विभिन्न भारतीय विद्वानों के कथनों पर विचार करने से पूर्व पश्चिम में माडर्निज्म के अर्थ-विकास पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में सर्वप्रथम आधुनिकता को धार्मिक दृष्टि के आधार पर व्याख्यायित किया जाता रहा है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका"[1] में आधुनिकता अथवा आधुनिकवाद माडर्निज्म की विस्तृत व्याख्या की गई है। पर्सी गार्डनर एवं वर्नर स्टोर जैसे विद्वान आधुनिकता को ईसाई-सत्य के आधुनिक ज्ञान की अभिव्यक्ति मानते है। स्पस्ट है कि जहाँ पहले आधुनिकता को ईसाई धर्म से जोड़ा जाता था वहाँ बाद में उसे ईसाई धर्म के प्रति आदर-भाव का सूचक ठहराया गया।"[2]

भारतीय विद्वानों ने भी काफी विस्तार से आधुनिकता पर विचार किया है। दिनकर का मान्यता है कि जिसे हम आधुनिकता कहते हैं, वह एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अन्ध-विश्वास से निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहूँचने की प्रक्रिया है।"[3] यहाँ दिनकर ने आधुनिकता का अर्थ मनुष्य की ऊँचाई उसकी जाति या गोत्र से नहीं; उसके कर्म से लिया है। आधुनिक वह है, जो मनुष्य-मनुष्य को समान समझता है। डॉ. धनंजय इसे व्यक्ति की दृष्टि से जोड़ते हुए कहते है कि आधुनिकता, धारणा और प्रत्यय से अधिक व्यक्ति की वृत्ति और बोध या दृष्टि से ही सीधे सम्बन्ध है।"[4]

---

[1] See, Encyclopedia of Britannica, Vol, 14

[2] Modernism is not a Religion; it is deference of religion and of the Christian Religion. - Encyclopedia of Britannica, Vol, 14

[3] रामधारी सिंह दिनकर : साहित्यमुखी, पृष्ठ – 173

[4] डॉ. धनंजय वर्मा : आस्वाद के धरातल, पृष्ठ - 17

डॉ. धनंजय ने आधुनिकता को आदगणा वृत्ति कहा है किन्तु धारणा और वृत्ति में अन्तर है। धारणा में निश्चित मानक प्रस्तुत किए जाते है और इन मानकों का स्वीकार और अस्वीकार आधुनिकता में प्रतिफलित होता है। वृत्ति में नैरंतरीय का बोध निहित है। परन्तु वृत्ति का अस्तित्व कला में संभव नहीं होता। उसका मूर्तिकरण परिवेश में ही संभव है। डॉ. रमेशकुन्तल मेघ मानते हैं कि एक समग्र आधुनिकता तो सामाजिक व्यवस्था का दर्पण, संस्कृति का मूल्य चत्र, विभिन्न समूहों की चिन्तम पद्धति तथा विभिन्न मनुष्यों की वृत्तियों का अमूर्त पैटर्न है।"[1] यहाँ डॉ. मेघ ने आधुनिकता का सम्बन्ध संस्कृति, इतिहास और विचार से जोड़ा है। उनके अनुसार हमारी व्यवस्था, संस्कृति, चिन्तन पद्धति, विचार विधि, वृत्ति सब एकान्वित होकर एक- दूसरे को परिवर्तित करते जाते है और इस परिवर्तित होने की क्रम में जो अमूर्त पैटर्न बनाता है वही आधुनिकता है। उन्होंने आधुनिकता का विचार व्यक्ति के सन्दर्भ में न करके देश के सन्दर्भ में किया है। इस परिभाषा में आधुनिकता पर उन तमाम बातों को लाद दिया है, जिनमें समाज-व्यवस्था, चिन्तन, विचार विधियाँ, संस्कृति आदि सभी का समावेश होता है। डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा का मत है कि प्राचीन युगों की आधुनिकताएँ परिवर्तित युगीन परिवेशों के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक और सास्कृतिक विकास के क्रमिक सोपानों के रूप में हुआ करती थी।"[2] गिरिराज कुमार माथुर मानते है कि आधुनिकता परिवर्तित भाव-बोध की वह स्थिति है जिसका प्रादुर्भाव यांत्रिक तथा वैज्ञानिक विकास क्रम के वर्तमान बिन्दु पर आकर हुआ है।"[3]

लेकिन यह भी स्पष्ट है कि मात्र विज्ञान आधुनिकता नहीं है। आधुनिकता के साथ एक वचार समूह संलग्न है। यद्यपि विज्ञान आधुनिकता नहीं है, तथापि विज्ञान आधुनिकता का अवसर अवश्य सिद्ध होती है।"[4] यह सही है कि समूहगत एवं

---

[1] डॉ. रमेशकुन्तल मेघ : आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृष्ठ - 331-332
[2] डॉ. हरिश्चन्द्रवर्मा : नई कविता के नाट्य-काव्य, पृष्ठ - 7
[3] गिरिजाकुमार माथुर : नई कविता : सीमाएँ और संभावनाँ, पृष्ठ - 105
[4] हरिशंकर उघ्र : 'ज्ञानोदय' में 'भारतीय परम्परा और आधुनिकता' पर छपा लेख, पृष्ठ - 75

वस्तुगत स्थितियों के परिवर्तन से व्यक्ति की मानसिकता बदल जाती है। किन्तु यह भी मानना होगा कि मात्र समूहगत परिवर्तन के कारण वैचारकि परिवर्तन सम्भव नहीं होता। आज कई ऐसे देश हैं, जहाँ वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद लोगों की मानसकिता एवं संज्ञा दृष्टि आधुनिकता नहीं हैं। विपिन कुमार अग्रवाल आधुनिकता को एक पहलू की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि –"आधुनिकता का एक पहलू यह है जो बीते हुए से शेयर करता है, और दूसरा वह जो उसकी अपनी देन है, उसका अपना विशेष गुण है।"[1] इस तरह परम्परा आधुनिकता में सहायक होती है, किन्तु यह परम्परा जड़ नहीं होती उसमें निरन्तर परिवर्तन होने की क्षमता रहती है।

डॉ. जगदीश गुप्त इसे विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से जोड़ते हुए लिखते हैं कि आधुनिकता अपने सही अर्थ में उस विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से उपजती है, जो व्यक्ति को वास्तविक युग-बोध प्रदान करने के साथ-साथ अधिक दायित्वशील, सक्रिय और मानवीय बनाता है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी आधुनिकता को परिस्थिति के अनुरूप स्व-संस्कार से सम्बद्ध करते हुए कहते है कि - "नवीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपने-आप का संस्कार करना ही आधुनिकता है।"[2] यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि कुछ विद्वान आधुनिकता को विशिष्ट काल से जोड़ना अनुचित मानते हैं। डॉ. बच्चन ने आधुनिकता को परिस्थिति-सापेक्ष मानते हुए कहा है कि – "आधुनिकता तो हमारी उस परिस्थिति की उपज है जिस परिस्थिति में वह आकर्षित करती है। परिस्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ ही आधुनिकता के विचार भी बदल जाती है, स्वतंत्र रूप से इसे परिभाषित करना संभव नहीं है।"[3] वास्तव में उपर्युक्त परिभाषाएँ हमें किसी निष्कर्ष पर नहीं पहूँचाती। ये आलोकित कम करती हैं और भटकाती अधिक हैं।

---

[1] विपनकुमार अग्रवाल : आधुनिकता के पहलू - पृष्ठ - 17

[2] डॉ. रानस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी नवलेखन, पृष्ठ – 13

[3] डॉ. बच्चन : स्वातन्त्र्य हिन्दी साहित्योत्तर, पृष्ठ - 65

वास्तव में यह कहना अधिक सही है कि आधुनिकता एक प्रक्रिया है और यह प्रथमतः और अन्ततः जीवन की जीवन्त, गतिशील और समग्र प्रक्रिय ही बनी रहती है।

लक्ष्मीकान्त वर्मा ने समकालीनता एवं आधुनिकता के स्पष्ट अन्तर को इन शब्दों में रेखांकित किया है – "आधुनिकता युग-विशेष का गुण है, समसामयिकता स्थिति विशेष का आयाम है। आधुनिकता एक ऐतिहासिक विश्लेषण है, जो देश-काल के बोध के साथ-साथ सक्रियता कई पुष्ट करती है। आधुनिकता काल-बोध, युग बोध की द्योतक है। विचार में आधुनिक होते हुए भी समसामयिक नहीं हो सकते, क्योंकि समसामयिकता का परिवेश इतनी वुस्तृत नहीं होता।"[1] स्पष्ट लक्ष्मीकान्त वर्मा ने आधुनिकता को सत् परिवर्तनशील विचारधारा के रूप में स्वीकार किया है और समकालीनता को स्थिति-विशेष मान लिया है। उनकी यह भी स्वीकृति है कि आधुनिकता मूलतः गुणात्मक बोध है। नितान्त समसामयिकता का बोध, क्षण के यथार्थ के प्रति दायित्व, आत्म निश्चय का दायित्व, व्यक्ति की पारस्परिक आत्म-निष्ठा के प्रति आस्था विवेक की संगति और निश्चय का दायित्व, व्यक्ति के सह संम्बन्ध को विकसित करने में ही आधुनिकता परिलक्षित होगी।"[2] इस प्रकार आधुनिकता एक विशाद फलक की पृष्ठभूमि में परिलक्षित होने लगती है। डॉ. बच्चन सिंह आधुनिकता को परिस्थिति-सापेक्ष मानते है – "आधुनिकता तो हमारी उस परिस्थिति की उपज है, जिस परिस्थिति में वह हमें आकर्षित करती है। परिस्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ आधुनिकता के विचार भी बदल जाते हैं। इसलिए आधुनिकता की परिभाषा तो एक काल प्रसंग में की जा सकती है। स्वतंन्त्र रूप से परिभाषित नहीं है।"[3] डॉ. राजपाल भी उक्त विचार का ही समर्थन करते प्रतीत हेते है – "मूलतः आधुनिकता की स्वतन्त्र परिभाषा देना उसकी वास्तविकता को न समझना होगा। प्रत्येक युग और

[1] नयी कविता के प्रतिमान - पृष्ठि - 264-265
[2] नये प्रतिमान : पुराने निष्कर्ष - पृष्ठ -60
[3] स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य - पृष्ठ – 35

परिस्थिति में आधुनिकता होती है। उसे किसी दूसरे युग और परिस्थिति के सन्दर्भ में देखने के लिए इस दृष्टि को भी सामने रखने पर ही आधुनिकता की वास्तविकता को समझने में सुविधा होगी।"[1] लेकिन नरेन्द्र देव वर्मा के विचार इससे पृथक् है। उन्होंने आधुनिकता को शाश्वत एवं निरन्तर तत्व के रूप में स्वीकृति दी है। वस्तुतः आधुनिकता प्रत्येक परिवर्तन के साथ बदल जाने वाला देश कालगत विचार नहीं है। परिवर्तनशील मूल्य नहीं है। वह एक शाश्वत और चिन्तन तत्व है यह एक ऐसा अपरिवर्तनीय काव्य-मूल्य है, जिसमें देश-काल के अन्तराल में हेने वाले व्यतिरेक कोई अन्तर उपस्थित नहीं करते। आधुनिकता अनुभूति का ही अभिधेय है।"[2] वस्तुतः आधुनिकता एक शाश्वत मूल्य भले ही हो, किन्तु प्रयोगात्मक रूप में उसे शाश्वत नहीं कहा जा सकत। कोई भी मूल्य जब प्रोयोग में आता है तो वह शाश्वत न रहकर सापेक्ष हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जब हिन्दी के चतुर्थ काल को 'आधुनिक-काल' की संज्ञा दी तो उसका कारण उस काल में होने वाले नव जागरण की साहित्य अभिव्यक्ति था, लेकिन वहीं जब नये साहित्यकार ने 'आधुनिक' और 'आधुनिकता' शब्द का प्रयोग किया तो उसका अर्थ अस्तित्ववादी दर्शन के साहित्यिक प्रयोग से था। उदाहरण केलिए शुक्ल जी के समय में अतीत के प्रति मोह आधुनिकता माना जाता था, किन्तु नये साहित्यकार ने अतीत के प्रति मोह-भंग को ही आधुनिकता का एक लक्षण माना।

समकालीनता का बोध 'इस समय' का बोध है, अपने वर्तमान का समकालीनता बोध, उस क्षण का बोध, जिसमें हम जी रहे हैं। अतएव समकालीनता वर्तमान बोध और वर्तमान बोध उस आधुनिकता का ही एक अंग है, जिसका प्रारंभ कुछ पूर्व हो चुका है। इस प्रकार आधुनिक और समकालीन में आधुनिक अधिक व्यापक है, क्योंकि समकालीनता जल्दी बदलती है। आधुनिकता का बोध इस प्रश्न में

[1] आधुनिक काव्य में नवीन जीवन -मूल्य - पृष्ठ - 11
[2] आधुनिकता - बात त्तवबोध की, ज्ञानोदय, जनवरी 1967, पृष्ठ - 10

निहित है कि मनुष्य की सामूहिक रूप में गति और गंतव्य के साथ उसका सम्बन्ध गत्यात्मक है या यथास्थितिशील। अतएव यथास्थितिशीलता के अनेक तत्व भी रहते है और गत्यात्मक तत्व भी। इस कारण आधुनिकता हमें देश-काल का बोध ही देती है जबकि समकालीनता देश-काल के बोध के साथ सक्रियता की भी पुष्टि करती है। जिस देशकाल में हम हैं उसकी सीमाएँ और विस्तार को हम समकालीनता के यथार्थ द्वारा अनुभव करते हैं। जीवन के इन्हीं सन्दर्भ में, आधुनिकता के परिवेश और समकालीनता आयाम में, हमें अपनी दृष्टि और अपने दायित्व का बोध होता है। किन्तु विचार में आधुनिकता होते हुए भी हम समकालीन नहीं हो सकते, क्योंकि समकालीनता का परिवेश इतना विस्तृत नहीं होता। वह तो स्थिति विशेष प्रतिबिम्बित करने का माप मात्र है। इस विशेष स्थिति के प्रति अपना दायित्व न निभा सकने के बावजूद भी हम आधुनिक हो सकते हैं। आधुनिकता का विस्तृत परिवेश समकालीनता के आयाम की अपेक्षा नहीं रखता। किन्तु आधुनिक भाव-बोध के बाहुल्य का साक्षात्कार और उसका अनुभव बिना समकालीनता के, वास्तविक क्रियाशीलता के, संभव नहीं है। समकालीनता जिस वर्तमान से उपजती है और जिस सन्दर्भ की अनिवार्यता प्रस्तुत करती है, उसमें यथार्थ का सतत आग्रह प्रतिक्षण अधिक प्रबल होता है और इस आग्रह में वह मानवीय संवेदना गुंथी होती है कि मनुष्य अपनी लघुता को और अपने लघु परिवेश को सार्थक अर्थ देना अधिक आवश्यक समझता है, उसमें मिथ्या स्वप्न और आदर्श इसीलिए अप्रासंगिक हो जाते है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि समकालीनता शब्द में जहाँ हम काल-खण्ड को व्यक्ति अथवा लेखक के जीवन-काल, उसकी रचना, धर्मिता से जोड़ते हुए एक निश्चित सीमा में आबद्ध करते हुए स्थिर कर देते हैं वहीं ‘आधुनिक’ शब्द अपेक्षाकृत गत्यात्मक है। आधुनिकता की परिभाषा प्रतिपल परिवर्तनशील है। ‘कल’ के सन्दर्भ में जो वस्तु अथवा विषय आधुनिक माना जाता रहा था, आज पुरातन की संज्ञा धारण कर सकता है। अतएव आधुनिकता की सीमा में अपेक्षाकृत लघुतम अथवा

प्रतिपल परिवर्तित ‘आज’ का समय-खण्ड ही सम्मिलित हो सकता है। समकालीनता ‘स्थिति-विशेष’ की भी परिचायिक है, वहीं आधुनिकता प्रतिपल परिवर्तनशील विचार-बोध की अभिव्यक्ति है। ‘समकालीनता’ काल का मापदण्ड है और ‘आधुनिकता’ किसी काल में व्याप्त लक्षण विशेष या विस्तृत विशेष का मापक है।

7.समकालीनता की विषयगत प्रवृत्तियाँ

समकालीन लेखन के बारे में यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि उसकी अन्तर्वस्तु का प्रमुख आधार समकालीन जीवन की जटिलता ही है, किन्तु जीवन-दृष्टि की भिन्नता के कारण इसी अन्तर्वस्तु पर आधारित रचना के संवेदनात्मक उद्धेश्य और पाठक-समुदाय पर पड़नेवाले प्रभाव में पर्याप्त भिन्नता मिलती है। अनेक यथातथ्यवादी रचनाकारों की रचना का उपजीव्य और उद्धेश्य इस जटिलता को ही सम्पेषित करने तक सीमित है। जबकि समकालीन जीवन की जटिलता को लेखन का विषय बनाने से पूर्व इस जटिलता के बुनियादी कारणों की पड़ताल ज़रूरी है, उस आधार को समझना आवश्यक है जिसने जीवन की अब तक की प्रचलित सारी मान्यताओं, धारणाओं, आदर्शों और आस्थाओं को उलटकर रख दिया है। समकालीन जनवादी लेखन में जीवन की यह वास्तविकता खुलकर सामने आई है।

समकालीन लेखन के नाम पर एक तरफ़ जहाँ जीवन की जटिल समस्याओं से घिरे हुए, नैतिक मूल्यों के ह्रास पर अफसोस जाहिर करते हुए, इस जटिलता के पार कुछ भी देख पाने में असमर्थ, असहाय ऐसे अनेक कवि-लेखक हैं जो मौजूदा व्यवस्था के नियन्त्रण और शासन से बिक्षुबेध निरन्तर विरोध आलाप रहे हैं, लेकिन उनका यह सारा आत्मपरक आलाप-प्रलाप अकारथ जा रहा है। यही नहीं, कलात्मकता के अतिरिक्त आग्रहों के कारण उनकी रचना उस पाठक-वर्ग तक संप्रेषित होने से भी वंचित रह जाती है, जिससे वे अपने प्रति एक मानवीय सहानुभूति की अपेक्षा रखते हैं। इसके विपरीत समकालीन जीवन की इस जटिलता और समकालीन संवेदना की

बुनियाद को एक सही वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि के माध्यम से जाँचने परखने और अभिव्यक्त करने वाले कुछ ऐसे समर्थ रचनाकार भी हैं जो वस्तुगत यथार्थ की वैज्ञानिक समझ से निर्मित अपनी रचना के जरिए बदलाव की भूमिका तैयार करने में संलग्न हैं। निश्चय ही उनकी रचनाओं में अपेक्षाकृत एक सुथरापन मिलता है, और जो न केवल पाठक को प्रभावित करती है, वरन् उसका मानसिक और सांस्कृतिक परिष्कार भी करती है। चूँकि इन समकालीन रचनाकरों का सम्पूर्ण लेखन उस बृहत्तर शोषित-पीड़ित वर्ग को संबोधित होता है, उनकी दृष्टि में प्रेषणीयता का प्रश्न सर्वाधिक महत्व रखता है।

समकालीन लेखन को लेकर सन् 1960 के बाद दो दशकों से हिन्दी जगत् में काफी विवाद रहा है। गोष्ठियों, मंचों और लेखओं के माध्यम से अक्सर समकालीन रचना का अभिप्राय, सीमा, प्रतिनिधि रचनाकार, विशिष्टताएँ, कथ्य व अक्सर शिल्प आदि की चर्चाएँ होती रही हैं। पर, अभ तक स्पष्ट रूप से कुछ भी निर्णय नहीं लिया जा सका है। कुछ लोग समकालीन लेखन को निरा बकवास मानवते हैं तो कुछ लोग जीवन से जुड़ी हुई। इसके आलोचकों में डॉ. नामवर सिंह, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, आदि ने समकालीन रचना को सैद्धांतिक विवेचन-विश्लेषण अपने-अपने प्रतिमानों, सिद्धांतों एवं दृष्टियों के आधार पर किया है। समग्र रूप से सभी की एक सहमति नहीं हो पायी है।

वस्तुतः समकालीन लेखन जो अभी प्रक्रिया में है इसलिए इसकी निश्चित प्रवृत्तियों आदि का विश्लेषण थोड़ी जोखिम भरा कार्य है। इसमें उस समय खतरा और भी बढ़ जाता है जबकि वह इतिहास न बन चुका हो और वर्तमान में जी रहा हो। ऐसी स्थिति में सामयिक परिस्थितियाँ, उसे, किस विशिष्ट संदर्भ से जोड़ देंगी, कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इस स्थिति में आज समकालीन लेखन पर दोहरा दबाव है। एक ओर तो वह देश की आंतरिक स्थितियों से पूर्णतः आक्रांत और अस्थिर है तो दूसरी ओर विश्व स्तर पर हो रहे वैचारिक और प्रयोगात्मक स्थितियों से भी

पूरी प्रभावित है। समकालीन लेखन में अनेक काव्यांदोलन उभरकर सामने आये हैं और अपना-अपना औचित्य सिद्ध करने के लिए संघर्ष रहे हैं। उनमें अपने अस्तित्व संघर्ष की गति तीव्र रही है। जिसमें आत्म-प्रतिष्ठा से लेकर परिवेश से सर्वाधिक जिड़ने की बात स्वीकार की गई है। ऐसी विषम स्थिति में शोध कार्य के दौराने जो भी साक्ष्य मिल पाए हैं उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि समकालीन साहित्य का आधार यथार्थ है। जीवि की विसंगतियों को इसने विशेष महत्व दिया है। साहित्य में असौन्दर्य को महत्व दिया है। सपाटबयानी में जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करना समकालीन लेखन का महत्वपूर्ण कार्य है। समकालीन लेखन में मनुष्य की प्रतिमा स्थिर, जड़ निष्क्रिय और दार्शनिक नहीं है। उसमें चित्रित आदमी की शक्ल है जिसे हम पहचान सकते हैं।

समकालीन साहित्य के पक्षधर रचनाकार अपनी रचनाओं में और वक्तव्यों में मूल्य दृष्टि के प्रति विरोधी स्वर को महत्व देते हैं। मानव मूल्यों की चर्चा उनके लिए बेमानी है। परंपरा, इतिहास, दर्शन तथा संस्कृति उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखते। उनका स्वर तीखा, कटु व विद्रोही है, वे स्वयं को कथ्य और टेकनीक में नवीन प्रयोग करने में अधिक सक्षम समझते हैं। आज उन्हें जीवन और समाज में आदर्श नैतिकता, पवित्रता और सौन्दर्य का पारम्परिक रूप ग्रहण नहीं है। वस्तुतः समकालीन साहित्य अनास्था, अविस्वास, कुंठा, विसंगति, विडम्बना, विभ्रम तथा संशय आदि को किसी भी रूप में त्यज्य न मानकर रचना का प्रेरक मानती है तथा उसकी दृष्टि में यौन चित्रण और नग्नता-अश्लीलता का कोई अर्थ नहीं है। हम इन सब को समकालीन या समकालीनता की विषयगत प्रवृत्तियाँ स्वीकार कर सकते हैं। ये नकार, अंधकार से जीवन एवं लेखन आरंभ करते हैं, उसमें विवेक के आधार पर परंपरा, इतिहास, राजनीति तथा समाज को समझते हैं और फिर इन्हें अनुभव की कसौटी पर कसकर लेखन में वर्णित करते हैं। इस तरह से समकालीन लेखन या समकालीनता की कुछ मुख्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं -

7.1. अस्तित्व की छटपटाहट और युवा पीढ़ी की अनास्था

जीवन और जगत् के विषय में मनुष्य ने जू से तात्विक चिंतन आरंभ किया, तभी से वह अस्तित्व के प्रति सचेत रहा है। किन्तु इसे दार्शनिक चिंतन के रूप में मान्यता डेनिश दार्शनिक सोरनकीर्के गार्ड के चिंतन से मिली। इसके बाद इस चिंतन को आगे बढ़ाने में नीत्शे, दोस्तोएकस्की, कार्लयास्पर्श, हर्सल, मार्शल, हैडेगर, कामू काफ्का तथा सार्त्र ने सक्रिय भूमिका निभायी। समकालीन विश्व में युद्धों की विभीषिका, यांत्रिक जीवन की जड़ता, भौतिक संपन्नता की असमान पराकाष्ठा और जीवन के खोखलेपन एवं आडम्बरवादिता के फलस्वरूप उत्पन्न हुए मानवीय अस्तित्व संकट की गंभीरता के कारण अस्तित्ववाद की भावना का जन्म हुआ। मूल रूप से यह मानवीय अस्मिता का दर्शन है जिसमें मानव के संघर्ष, आस्था और जिजीविषा पर विचार किया गया है।

हिन्दी की समकालीन लेखन ने अस्तित्ववादी चिंतन को पूर्णरूपेण आत्मसात किया है। समकालीन लेखन में अकेलापन, आत्महत्या, संड़ाध, अजनबीपन आदि का जो बोध जागा है वह इसी का परिणाम है। हिन्दी की अधिकांश रचनाकार का हाल रोकांते जैसा है। ऊब, ऊबकाई, अकेलापन, बुरे-बुरे सपने, त्रास, आत्महत्या की चाह, संड़ाध का बोध, भीड़ में अजनबीपन का एहसास होने की समस्या से परेशानी आदि लक्षण इसमें भी मिलते है। अस्तित्ववादी जीवनदर्शन के प्रभाव से समकालीन हिन्दी साहित्य लेखन में क्षणवाद, निराशावाद, लघुमानव की प्रतिष्ठा, आकांक्षाशून्यता आदि प्रवृत्तियाँ आयी।

समकालीन लेखन यह मानकर चलता है कि मानव अस्तित्व ख़तरे में है जिसे परिवेश में घुटन, वेदना, कुंठा, भय, संत्रास, नैराश्य की स्थिति उत्पन्न हो गई है। समकालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अनास्था, कुंठा अविश्वास आदि का प्रभाव अधिक पड़ा है।

समकालीन लेखन में मनुष्य अस्तित्व संकट और जिजीविषा को पूरे अभिव्यक्ति मिली है। आज का मनुष्य जिन घुटनभरी स्थितियों के बीच अस्तित्व की रक्षा के लिए

संघर्षरत है उन्हें इन रचनाकारों ने सच्चाई के साथ उकेरा है। भय और अनास्था की स्थिति में जीता हुआ उससे बचने का उपाय सोचता रहा है। ऐसे रचनाकार समकालीन साहित्य लेखन में ज़्यादा मिलते हैं।

7.2.वर्तमान व्यवस्था पर सीधा आक्रमण

समकालीन साहित्य लेखन में वर्तमान व्यवस्था के प्रति बैखलाहट की अभिव्यक्ति सहज ही हुई है। एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जिस सम्मानित ढंग से आज का रचनाकार रहना चाहता था, उस ढंग से वह नहीं रह पाया। राजनीति के सौदे बाजों के मिथ्य और बहकाने वाले कारनामों से समाज की स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती गयी। ऐसी स्थिति में पूरी व्यवस्था तंत्र के प्रति ही उसमें व्यापक असंतोष का भाव जागृत हुआ। उसके विरोध में समकालीन रचनाकार ने तेज़ाबी भाषा का प्रयोग किया और विरोध ज़ाहिर किया। विरोध के कारण रचना के स्वर में पर्याप्त आक्रोश आया।

इस व्यवस्था के ख़िलाफ़ विद्रोह में समकालीन रचनाकार इतनी गंभीरता से जुट गया कि युगीन संत्रास से उभरी वेदना में कवि देश को चलाने वाले व्यवस्थापकों को पागल, विदूषक, नपुंसक इत्यादि संज्ञाओं से विभूषित करते हुए शोषित समाज को उकसाने का प्रयास किया है। जिसे आज मार्क्सवादी आलोचक जनवादी मूल्यों के दृष्टिकोण से भी देखते हैं लेकिन रचनाकार का विद्रोह सहज ही प्रकट होता रहा है।

7.3.आकस्मिक विसंगतियों की तात्कालिक टकराहट

आज़ादी के कुछ वर्षों के बाद से ही देश में राजनीति अस्थिरता का जो दौर आया उसे यहाँ का वातावरण दूषित होने लगा और भारतीय जन-मानस, लोकतांत्रिक स्वतंत्रता में भी अपने को परतंत्र महसूस करने लगा। ऐसी स्थिति में भारतीय जन-मानस भड़क उठा जिसके परिणामस्वरुप सन् 1962 के तीसरे आम चुनाव में काँग्रेस को भारी क्षति उठानी पड़ी। ऐसे में काँग्रेस सत्ताधारी अपनी वास्तविकता को छिपाने

के लिए दिखावटी तथा विशेषण पूर्ण नारे लगाकर सच्चाई को ढकने की साज़िश करने लगे किन्तु वास्तविकता यह थी कि पूर्णतः मोहभंग हो चुका था। इसी वर्ष 20 अक्टूबर 1962 को नेहरु की नीतियों को चुनौती देते हुए चीन ने राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय आदर्शों की कमर तोड़ दी। जिससे समूचे देश में अनिश्चयात्मकता, अनास्था तथा वेदना का जन्म हुआ और नेहरु की लोकप्रियता पर तुषारापात हुआ। 1966 में श्रीमती इंदिरा गांधी सत्ता में निर्विरोध आयीं किन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या, बेरोज़गारी महँगाई, अकाल और नेताओं के खोखले नारेबाज़ियों से जन-जीवन में असंतोष बढ़ता ही गया। एक के बाद एक विसंगतियों जन-मानस के सामने आती रहीं। इन आकस्मिक विसंगतियों की टकराहट से समकालीन रचनाकार उलढता रहा तथा विसंगति और विडंबना के द्वारा युग के छिपे हुए बहु आयामी व्यक्तित्व की पर्त-दर-पर्त उघाड़ता चला गया। युग की विसंगतियों में अमीर और ग़रीब की बढ़ती हुई खाई और ग़रीबों के द्वारा धनिकों के मनोंरंज की भावना देखने को मिलती है।

आर्थिक वैषम्य समाज में व्याप्त अधिकांश बुराइयों और विसंगतियों की जड़ है। इसी के चलते सामाजिक अन्याय, अत्याचार और शोषण होता है। समकालीन लेखन ने इस पर गहराई से विचार किया है। स्वाधीन भारत का एक बौद्धिक वर्ग जो लोकतंत्र की दिशाहीन नीति का शिकार होकर वेतन न मिलने के कारण हताश होकर मर जाता है, उसका यमराज को दिया गया बयान इस युग की सबसे घिनौनी त्रासद पूर्ण विसंगति को व्यक्त करता है।

आज के परिवेश में विसंगतियों का इतना आधिक्य है कि मनुष्य अब उसके प्रति निष्क्रिय-सा हो चला है। सारी स्थितियों को देखते हुए भी वह उदासीन है। विसंगति बोध समकालीन लेखन में एक सर्वमान्य प्रवृत्ति के रूप में गहराई के साथ उभरा है। विसंगतियों के यथार्थ को उभार कर इस युग की रचना ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता।

7.4.आक्रोश, असंतोष और सम्पूर्ण निषेध की मुद्रा

समकालीन लेखन की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रहीं है स्थापित मूल्यों, मान्यताओं आदि के प्रति नकार और अस्वीकार का तेवर। या परम्परित जीवन दृष्टि के प्रति तो है रचनाकार हर युग में नये सिरे से अपने व्यक्तित्व की तलाश करता है, पर यह तलाश केवल उसके व्यक्तित्व की नहीं होती क्योंकि यह तलाश उसे एक विशेष संदर्भ से परिभाषित करती है जो उस पूरे युग का संदर्भ होता है। इस दृष्टि से समकालीन लेखन में व्यक्तित्व की खोज रचना की खोज से अलग नहीं हो सकती। रचना की खोज से अलग व्यक्तित्व की खोज में ही इन लेखक ने अपने अनुभव के अलग-अलग कठघरे तैयार किये हैं जिसमें निषेध और अस्वीकार ही उनके चिंतन का आधार है। व्यवस्था के जिस विकल्पहीनता की स्थिति में इन रचनाकारों में स्वाभाविक रूप से निषेध की भावना पनपी है। विगत युग के लेखक इस माने में सौभाग्यशाली थे कि उनके सामने एक स्थायी विकल्प सदैव उपस्थित रहता था। कभी ईश्वर, कभी धर्म कभी मानवीय आदर्श के रूप में। पर समकालीन लेखक की सबसे बड़ी ट्रेजेड़ी यह है कि वह अपनी रचनात्मक-यात्रा उस बिन्दु से शुरू ही करता है जहाँ सारे विकल्प समाप्त हो गये से लगते हैं। इसलिए हर बार उसे अनुभव के स्तर पर एक नये विकल्प की खोज़ करनी पड़ती है। हलांकि वह अच्छी तरह जानता है कि जो वास्तविकता उसके सम्मुख है, उसका कोई विकल्प हो ही नहीं सकता।

समकालीन अव्यवस्था की परंपरा ने लेखक के मन में आक्रोश, असंतोष और निषेध की भावना भर दी है। यह निषेध, वर्तमान और भविष्य दोनों के प्रति समान रूप से है जिसमें रचनाकार अभद्र और अश्लील शब्दों के प्रयोग में भी नहीं हिचक है। नये जीवन मूल्यों के अन्वेषण के लिए समकालीन रचनाकार सड़ियल परंपराओं को पूर्णतः नकारता है। अतः उसका संघर्ष सत्ता को बार-बार चुनौती देते रहने से आक्रामक हो गया है। सातवें दशक की हिन्दी साहित्य लेखन में यह स्वर अपने सच्चे दायित्व बोध के साथ उभरा है।

इस आक्रोश पूर्ण नकार को गुरिल्ला चेतना के नाम से अभिहित किया गया है। जो वैयक्तिक न होकर सामूहिक है और व्यवस्था की असंगतियों के कारण उत्पन्न हुई है। जो वर्तमान व्यवस्था से घृणा करती हुई जनसंगठन कर न्यायोचित नये भवन का निर्माण करना चाहती है। यह एक निषेधात्मक शक्ति नहीं है। धनात्मक शक्ति है जो मानव प्रेम की भावना पर आधारित है। समकालीन लेखन के अधिकांश लेखकों में यह चेतना उभरी है जिसमें विद्रोह का स्वर अधिक मुखर है।

समकालीन लेखन में संपूर्णता के प्रति जो नकार और स्वीकार का तेवर उभरा है, वह समूचे एक दशक (सातवें दशक) की मूल प्रवृत्ति को उद्घाटित करता है।

7.5.खुले यौन संबंधों को मान्यता

समकालीन लेखन में जो प्रवृत्ति सर्वाधिक उभरी है वह यौन निर्बलता है। विकृत यौन प्रवृत्तियों का जितना खुला चित्रण सातवें दशक में हुआ है उतना हिन्दी कविता में और कहीं नहीं हुआ। यह यौन बोध एक कुठा के रूप में व्यक्त हुआ है जिस पर फ्रायड के मनोविल्शेषणवादी दर्शन का प्रभव है। फ्रायड मानता है कि कवि मनस तृप्ति हेतु काव्य सृजन करता है। सुखी मनुष्य मनःसृष्टि नहीं करते केवल अतृप्ति करते हैं। यह अतृप्ति प्रकारान्त से रागात्मक होती है। कलाकार मूलतः एक ऐसा व्यक्ति होता है जो प्रवृत्तिक तृप्ति की मांग से सहमत न होता यथार्थ से मुंह मोड़ लेता है और फिर कल्पना जगत में वह अपनी काम और महत्वकांक्षाओं को खुलकर क्रीड़ा करने देता हैं। मूलतः रचना या सृजन में यौन बोध अतृप्त इच्छाओं का परिणाम होता है जिस समकालीन लेखन के कुछ महत्वपूर्ण रचनाकारों ने राग चेतना (यौन चेतना) के रूप में स्वीकार किया है। फ्रायड के अतिरिक्त अमेरिका बीयनीक कवि गिंसर्ग तथा बंगाल की भूखी पीढ़ी का भी प्रभाव हिन्दी के इन रचनाकारों पर है। इसके कारण यौन बोध को एक फैशन के रूप में स्वीकार कर, यौन वर्जनाओं से रचना को मुक्त कर दिया है। स्त्री और पुरुष के संबंधों को सीधे-सादे, बिना लाग-

लपटे के निर्भीकतापूर्वक कर्णन किया। इसमें ही इन रचनाकारों ने विद्रोह का रास्ता चुना है। जगदीश चतुर्वेदी ने यौन क्रान्ति और साहित्यिक विद्रोह में साहित्य को काम भावना से परिचालित मानते हुए कहा है कि यौन स्वातंत्र्य और यौन क्रान्ति आधिकारिक पहलू है। क्रान्ति जीवन के किसी उद्देश्य को पाने के लिए होती है और व्यक्ति स्वातंत्रता अच्छी बातों के बावजूद कहीं फासिज्म में परिणित हो सकती है। यौन क्रान्ति स्त्री दासता का उन्मालन करती है। वेश्य, बीमार, शहर, सड़े, गोस्तों वाली औरत से संभोग और इससे जुड़े संसद के सदस्यों का निषेध आदि बातों को समकालीन कवियों ने चालू मुहावरों के माध्यम से मनमाने ढ़ंग से प्रयोग किया।

सातवें दशक के अंत में शासन तंत्र की अनीति का पर्दाफाश करने के लिए यौन भावना को ही आधार बनाया गया और यौन अंगों से संबंधों शब्दों का प्रयोग करके स्थापित मूल्यों के प्रति अवज्ञा का भाव दर्शाया गया। यह काव्योदलों में एक फैशन बनता गया जो बीभत्स और युयुत्सित वर्णन में लुप्त हो गया।

7.6.सहज यथार्थ बोध और प्रतिबद्ध जागरूकता

समकालीन लेखन में वैचारिक धरातल पर प्रत्यक्ष यथार्थ बोध का भाव है। जिसमें परिवेश की निरन्तर बढ़ती हुई सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं की भयावहता का सीधा साक्षात्कार है। आज का कवि या रचनाकार अपने दायित्व के प्रति पूर्णतः जागरूक हैं। जीवन और साहित्य देनों के प्रति सजग है। इसलिए राजनीति पक्षधरता को अपना अहं मुद्दा बनाता है और उसके प्रति प्रतिबद्ध हो जाता है। राजनीति ने निश्चित रूप से ही परिवेश में भ्रष्टाचार को पनपने और पसरने में योग दिया है जिसके कारण अनेक विंसंगतियाँ पैदा हुई हैं। इसलिए यथार्थ बोध की जागरूकता के बाद रचनाकार में स्वयं ही संघर्ष धर्म जागृत हुआ है। मूलतः संघर्ष से जुड़ी रचनाकार ही प्रत्यक्ष यथार्थ का बोध करा सकता है। वहाँ विचार और क्रिया के केन्द्र पर अपनी तमाम विसंगतियों, अंतर्विरोधों, अंतर्संघर्षों, दुर्भलताओं और सूक्ष्मताओं

के लिए मनुष्य मौजूद रहता है। ऐसी स्थिति में रचनाकार या लेखक की जागरूक प्रतिबद्धता उसे राजनीति से जोड़ते हुए भी किसी पार्टी से संबंधित नहीं होने देती।

इस तरह यथार्थ बोध जागरूक प्रतिबद्धता के साथ समकालीन हिन्दी लेखन में एक प्रवृत्ति के रूप में विद्यमान है जो सातवें दशक में अपनी एक पहचान बनाता है।

7.7.वैचारिकता का महत्व

सातवें दशक की रचना में अस्वीकार और विरोध का जो घिनौना और कुत्सित ज्वर उमड़ता रहा उससे परिवेश में रिक्तता भरती रही। विद्रोह, क्रान्ति और विरोध के लिए जो अश्लील और जुगुप्सित संदर्भों को आधार बनाकर इन रचनाकारों ने रचना की, उससे युग-सापेक्ष मानव-जीवन मूल्यों का निर्माण नहीं हो सका। अतः सातवें दशक के अंतिम समय में रचना की इस बलात्कारिक चेतना पर समसामयिक संयम और अनुशासन का पर्दा डालने के लिए रचनाकारों ने उसे वैचारिक धरातल प्रदान करने का अद्‌भुत साहस किया। समकालीन हिन्दी साहित्य में आठवें दशक तक आते-आते वैचारिकता का इतना अधिक महत्व बढ़ गया कि विचार एक प्रवृत्ति भी गई। वैसे तो कोई भी रचना विचारहीन नहीं हो सकती। रचना में अनुभव, कल्पना एवं विचार तीनों तत्वों का समावेश सदा से ही की है लेकिन अब तक प्रधानता भावना और कल्पना की ही थी। किन्तु विचार की प्रधानता के कारण आठवें दशक की रचना में रचनाकार वक्तव्य पर्याप्त मुखर हुआ है। आज के रचनाकार किसी वस्तु या स्थिति से संवेदित होकर केवल भावुक नहीं होता, अपितु सचेत भी होता है फलतः उसकी रचना में विचारों का संघर्ष और द्वन्द्व छिंड़ जाता है। यह संघर्ष और द्वन्द्व ही विवेक के पर्दे से निकलकर विचार रचना की धारणा को जगाता है कि समकालीन साहित्य के संदर्भ में हमें लगता है कि विचार ही एकमात्र और ऐसी धुरी है जो उसकी पहचान देती है। आज की जो रचना घटनाओं, स्थितियों समय की सच्चाइयों को लेकर चल रही हो या आत्मगत मनोदशाओं को लेकर, उसकी

अभिव्यक्ति वैचारिक आशय और बनावट के बिना संगत, प्रामाणिक और सार्थक नहीं हो सकती। आज रचनाकार की संवेदनात्मक प्रकृति में भावविह्लता का स्थान वैचारिक बैचौनी एवं छटपटाहट ले रहीं है।

आठवें दशक के रचनाकारों ने मानव-मूल्यों के तिरस्कार की प्रतिक्रिया स्वरूप नये और सार्थक मूल्यान्वेषण के सिलसिले में एक प्रकार का विचारधार्मी स्वरूप प्रस्तुत किया, जो रचना में भाषा और भाव का कोरा खिलवाड़ न होकर जनजीवन के सशक्त यथार्थ मूल्यबोध के रूप में उभरा। इसमें रचनाकार किसी दार्शनिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक एवं आर्थिक आदि ज्ञान के विविध क्षेत्रों से संबंधित विचारों को रचना में ढालने का प्रास करते हैं जो पाठक को उत्तेजित न करके, उससे संबंधित तथ्यों पर कुछ न कुछ सोचने के लिए विवेश करती है।

समकालीन साहित्य लेखन संवेदना, नकार-इनकार, यौन बोध और विचार से साक्षात्कार करती हुई मानव-मूल्यों को अधिक गहराई से पकड़ने और समझने पर बल देती रही है। समकालीन लेखन परिवेश के ठोस और ज्वलंत संदर्भों और समस्याओं को समझकर उसके प्रति सतर्क और जागरूक दृष्टि देने का प्रयास किया, जिसमें उसकी कुछ प्रवृत्तियाँ अधिक मुखर हुई और कुछ का अभासा भर हुआ। ऐसी प्रवृत्तियँ अंतः दब गई और मुखर प्रवृत्तियाँ परिवेश के यथार्थ बोध के चित्रण में उद्घाटित हुई।

8.हिन्दी नाटककारों में महिला नाटककारों का स्थान

भारतीय साहित्य की विभिन्न विचारविथियों में लोकप्रियता की दृष्टि से नाटकों का अपूर्व स्थान हैं। नाटक साहित्य क्षेत्र में अन्य गद्य विधाओं के समान महत्वपूर्ण विद्या के रूप में विद्यमान हैं। इस का प्रारंभ राष्ट्रीय और सामाजिक जागरण से जुड़ा हुआ है। इसलिए प्रायः सभी प्रारंभिक नाटक सोद्देश्य हैं। हिन्दी साहित्य के प्रथम तीन युगों (आदि, भक्ति और रीति) में नाटक साहित्य का सर्वथा अभाव रहा है। चौदहवीं

शतीं से लेकर उन्नीसवीं शती के मध्य तक कुछ थोड़ी सी रचनाएँ उपलब्ध हैं। वस्तुतः इन रचनाओं को नाटकों की कोटी में नहीं रखा जा सकता। ये कथाओं के पद्यात्मक वर्णण मात्र हैं।

हिन्दी नाटक साहित्य का विकास प्रारंभ से लेकर अब तक की जो लंबी यात्रा थी, वह बहुत गहरी थी साथ-साथ बहुत गंभीर भी। इस लंबी यात्रा को लेकर इस शीर्षक के अंतर्गत विस्तार रूप से विवेचन करना बहुत कठिन कार्य हो सकता। इस कारण से पूरे हिन्दी नाटक साहित्य को 1960 या समकालीन को विभाजन रेखा मानते हुए सुविधा केलिए **'आलोच्य पूर्वकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार'** और **'आलोच्य कालीन अथवा समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार'** नाम रखकर दो भागों में विभाजित किया गया है।

8.1.आलोच्य पूर्वकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार

आलोच्य पूर्व हिन्दी नाटक के अंतर्गत मौलिक और साहित्यिक नाटक परंपरा में भारतेंदु हिन्दी के प्रथम नाटककार के रूप में यहाँ प्रस्तावित होते हैं और उनका 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (सन् 1873 ई.) हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक कहा जा सकता है। उन्होंने साहित्य की हर विधा को अपनी लेखनी से समृद्ध किया। उनका व्यक्तित्व भी युग-प्रवर्तक का था। ब्रजभाषा में ही भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र का 'नहुष' (सन् 1841 ई.) मिलता है, परन्तु खड़ी बोली में युग-बोध के साथ मंचीय तत्वों के समावेश के कारण आधुनिक नाटकों की प्रथम संरचना का श्रेय भारतेन्दु को ही है।

भारतेन्दु हिन्दी नाटकों के जनक थे। उनकी नाट्य कृतियों का ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से तो विशेष महत्व है ही, उनका लोकधर्मी शिल्प-विधान भी ऐसा है जो रंगमंचीय दृष्टि से उन्हें सफल बनाता है। यही कारण है कि भारतेन्दु के नाटकों का जितना अधिक मंचन हुआ है, उतना अन्य किसी नाटककार के नाटकों का नहीं। भारतेन्दु ने राष्ट्रीयता, समाज-सुधार, प्रेम, स्वच्छंदता, इतिहास, धर्म, नीति,

वर्ण-वैषम्य, मनोविज्ञान आदि की नयी अवधारणाओं से युक्त नये रंगमंचीय शिल्प के विविध प्रयोग करते हुए चौदह मौलिक नाटकों की रचना की तथा कुछ नाटकों का अनुवाद किया। उनके नाटक हैं 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिचन्द्र', 'नील देवी', 'सती प्रताप', 'माधुरी', 'प्रेमयोगिनी', 'चन्द्रावली', 'भारत जननी', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'विषस्य विषमौषधम्', 'प्रवास', 'दुर्लभ बंधु', 'नवमल्लिका', 'रत्नावली'आदि। 'विद्या सुन्दरी', 'पाखण्ड विडम्बन', 'धनंजय विजय', 'कर्पूर मंजरी', 'मुद्राराक्षस' आदि नाटकों का अनुवाद किया।

भारतेन्दुत काल में कई लेखकों ने नाटकों की रचना की। इसमें प्रमुख उल्लेखनीय नाटककार इस प्रकार हैं -

राधाकृष्ण दास ने – 'दुखिनी बाला', 'पद्मावती', 'महाराणा प्रताप', 'धर्मालाप' आदि नाटकों की रचना की। *श्रीनिवास दास* भी इसी समय के प्रमुख नाटककार थे। उन्होंने 'संयोगिता स्वयंवर', 'प्रहलाद चरित्र', 'तप्त संवरण', 'रणधीर,' 'प्रेम मोहिनी' आदि नाटकों की रचना की। *बालकृष्ण भट्ट* ने 'चन्द्रसेन', 'दमयंती स्वयंवर', 'बृहन्नला', 'वेणु संहार', 'शर्मिष्ठा', 'मृच्छकटिक', 'शिशुपाल-वध', 'शिक्षादान', 'आचार विडम्बना', 'नई रोशनी का विष', 'पतित पंचम', 'बाल-विवाह', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'रेल का विकट खेल' आदि नाटककों की रचना की। *प्रताप नारायण मिश्र* – 'हठी हमीर', 'संगीत शाकुन्तल', 'गो संकट', 'कलि कौतुक', 'दूध का दूध पानी का पानी', 'जुआरी-जुआरी', 'भारत दुर्दशा' आदि रचना की। *राधाचरण गोस्वामी* – 'सती चन्द्रावली', 'अमर सिंह राठौर', 'श्रीदामा', 'तनमन-धन गोसाई जी के अर्पण', 'भंग तरंग' आदि।

काशीनाथ खत्री ने 'सिंधु देश की कुमारियाँ', 'तीन मनोहर रूपक', 'गुन्नौर की रानी' आदि नाटकों की रचना की। *देवकी नंदन खत्री* – 'कलियुगी जनेऊ', 'जय नरसिंह की', 'सीता-हरण', 'रुक्मिणी रहस्य', 'कंस वध' आदि रचना की। *किशोरी लाल गोस्वामी* 'मयक मंजरी' नामक नाटक लिखा है, *पं. बद्री प्रसाद प्रेमघन* 'भारत सौभाग्य', 'प्रयाग रामागमन' आदि नाटकों की रचना की। *शीतल प्रसाद त्रिपाठी* ने 'जानकी मंगल', 'जय नरसिंह' आदि नाटकों को रूपायति किया हैं।

इनके अलावा शिवनन्दन सहाय दामोदर शास्त्री, तोतारम वर्मा, हरिऔध, मेंहदी हसन अहसन आदि ने भी नाटकों की रचना की।

आलोच्य पूर्व-कालीन हिन्दी नाटक साहित्य में भारतेन्दु हरिशन्द्र के बाद जयशंकर प्रसाद प्रमुख नाटककार के रूप में विद्यमान है। जयशंकर प्रसाद बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य की हर विधा को अपनी लेखनी से समृद्ध किया। उनका व्यक्तित्व भी युग प्रवर्तक का था। भारतेन्दु के बाद उन्होंने हिन्दी नाटक को एक नया आयाम दिया। भारतेन्दु और उनके समकालीन नाटकारों की दृष्टि वस्तून्मुखी होने से उनके नाटकों का कथ्य और शिल्प सहज यथार्थवादी है। एक नाटककार के रूप में प्रसाद जी के योगदान को नकार नहीं जा सकता। उनका योगदान इस बात में सर्वाधिक है कि उन्होंने हिन्दी नाटक को उसके कथ्य को चरम उत्कर्ष पर पहुँचाया। उनके नाटकीय आलेख साहित्य के महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इसलिए उनके अधिकांश नाटक ऐतिहासिक हैं, जिनमें प्रेम और त्याग के साथ राष्ट्र की सांस्कृतिक गरिमा मुखर हुई है। उनके प्रमुख नाटक इस प्रकर है – 'सज्जन', 'कल्याणी-परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित', 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ,' 'कामना', 'स्कन्दगुप्त', 'एक घूँट', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'अग्निमित्र' आदि।

जयशंकर प्रसाद ने भारतीय और पाश्चात्य शिल्प के समन्वय से नाटकों को नया स्वरूप दिया। भारतेन्दु ने संस्कृत नाट्य शास्त्र के आधार पर *'चन्द्रावली'* और पाश्चात्य नाट्य शास्त्र के आधार पर *'नीलदेवी'* की रचना की थी। प्रसाद ने दोनों का समायोजना करके इसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। सांस्कृतिक चित्रण, चारित्रिक उदात्तता, मानवीय प्रेम, और कलात्मक भव्यता आदि के कारण प्रसाद को *'हिन्दी का शोक्सपीयर'* कहा जाता है।

सूक्ष्म कल्पना और विस्तृत अध्ययन के द्वारा प्रसाद ने प्राचीन ऐतिहासिक वृत्तों के आधार पर नाटकों की रचना की। प्रसाद ने संस्कृत नाटक की परम्परा को छोड़ अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देते हुए युग के अनुकूल परिस्थितियों को अपने नाटकों में अंकित किया। उनके नाटकों में रस-विधान और शैली-वैचित्र्य का सुन्दर सामंजस्य है। उनमें गूढ़ चित्र वाले पात्रों के साथ शुद्ध युद्धोत्साह और देश भक्ति आदि भावों की मार्मिक व्यंजना है। उन्होंने अपने नाटकों में मृत्यु, वध और आत्महत्या के दृश्य भी प्रस्तुत किये हैं।

प्रसाद जी के समकालीन नाटक साहित्य में दो धाराएँ प्राप्त होती हैं। प्रथम तो ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटकों की धारा, जिसका प्रवर्तन प्रसाद जी ने किया था। दूसरे भारतेन्दु युग से प्रभावित प्रहसनों और सामाजिक यथार्थ से संबंध नाटकों की धारा। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक नाटकों के अंतर्गत – *मिश्रबंधु* – 'पूर्व भारत', 'उत्तर भारत', *बद्रीनाथ भट्ट* – 'कुरुवन-दहन', 'वन चरित्र', 'तुलसीदास', 'चन्द्रगुप्त', 'दुर्गावती', *विश्वंभरा नाथ श्रम कौशिक* – 'भीष्म', *माखन लाल चतुर्वेदी* – 'कृष्णार्जून युद्ध', *वियोगी हरि* – 'छद्म योगिनी', 'सिया,' *राम शरण गुप्त* – 'पुण्य पर्व', *ब्रजनन्दन सहाय* – 'सत्य भामा', *जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द* – 'प्रताप प्रतिज्ञा' आदि। हास्य प्रहसन के अंतर्गत - *बद्रीनाथ भट्ट* – 'चुंगी की उम्मीदवारी', 'चबड़घोंघा', 'विवाह विज्ञापन', 'मिस अमेरिकन', *जी.पी. श्रीवात्सव* – 'गड़बड़ झाल', 'दुमदार आदमी', 'उलटफेर', 'मर्दानी औरत', 'न घर का न घाट का',

'भूलचूक', 'साहित्य का सपूत' आदि। सामाजिक हास्य प्रधान नाटक के अन्तर्गत - *प्रेमचन्द* – 'संग्राम', *रामनरेश त्रिपाठी* – 'वफाती चाचा', *लक्ष्मी सिंह चौहान* – 'कुली प्रथा', 'गुलामी का नश', 'उत्सर्ग एक ही समाधि' आदि।

इन नाटककारों के अतिरिक्त भण्डारी, जनार्थन राय, जमुनादास, मेहरा, जीवानंद शर्मा, मथुरा दास, जगन्नाथ शरण, रामनंदन सहाय, सुधाकर द्विवेदी, गंगा प्रसाद गुप्त, रधुनंदन दास आदि ने भी नाटक की रचना की। अधिकांश नाटकों का उद्धेश्य राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करना है। परन्तु लक्षण सिंह चौहान के नाटकों को विशुद्ध राजनीतिक कहा जा सकता है।

सन् 1935 ई. के आस-पास हिन्दी नाटक में एक अवन्तर उपस्थित होता है। इस अवन्तर का श्रेय लक्ष्मी नारायण मिश्र को है। इसलिए इसे बहुत से आलोचक मिश्रयुग भी कहते हैं। फिर उनका धरातल अधिक ठोस होता गया। लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों को काल-क्रमानुसार इस प्रकार रखा जा सकता है – 'आशोक', 'सन्यासी,' 'राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिन्दूर की होली', 'आधीरात', 'गरुड़ध्वज', 'नारद की वीणा', 'वत्सराज', 'दशाश्वमेघ', 'कवि भारतेन्दु', 'वितस्ता की लहरें', 'चक्रव्यूह', 'वैशाली में वसन्त', 'जगत्गुरू,' 'अपराजित', 'धरती का हृदय', 'चित्रकूट' आदि।

मिश्र मूल रूप से समस्यात्मक नाटककार हैं। उन्होंने सर्व प्रथम हिन्दी नाटक क्षेत्र में समस्या नाटकों का प्रवेश किया और इस प्रकार हिन्दी नाटकों को नयी दिशा दी। उन्होंने नाटकों में यथार्थ के चित्रण और नयी बौद्धिकता का समावेश किया। कला क्षेत्र में यह मिश्र जी का नया प्रयोग है। उन्होंने इब्सन और हर्वर्ड शॉ की टेकनीक को अपनाया और उसमें भारतीय प्रसंगों और चरित्रों की अवतारण की। उनके नाटकों में बुद्धिवाद का विशेष आग्रह है।

मिश्र जी ने प्रचीन कथानकों को नयी बौद्धिक चेतना से समन्वित करके विनाश के स्थान पर राष्ट्रीय नव निर्माण की प्रेरणा जागृत की है। हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में प्रसाद जी के बाद पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र ही दूसरे समर्थ नाटककार हैं, जिन्होंने इस विकास को नई दिशा दी। उन्होंने जहाँ एक ओर सामाजिक समस्या नाटकों के नये कथ्य और शिल्प से हिन्दी को परिचित कराया वहाँ दूसरी ओर प्रसाद जी की ही परंपरा ऐतिहासिक नाटकों को नये आयाम में पेश किया।

यहाँ हम पहले उन नाटककारों के कर्तृत्व का परिचय देते हैं, जो पूर्व खेमें में आते हैं और जिन्होंने रंगमंचीय यथास्थिति स्वीकार करते हुए अधिकतर ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक नाटकों की रचना की है – 'श्रीराम', 'अजीत सिंह', 'पग ध्वज', 'छन्नसाल', 'गांधारी' आदि। *सेठ गोविन्द दास* – 'कुलीनता', 'सेरशाह', 'कर्ण', 'कर्तव्य', 'सिंहल द्वीप', 'रहीम'ा, 'कवि भारतेन्दु', 'महाप्रभु वल्लभाचार्य', 'अशोक', 'भिक्षु से गृहत्थ से भिक्ष' आदि। *रामवृक्ष बेनीपुरी* – 'अम्बपाली', 'तथाहत विजेता' 'चाण्क्य', 'सीता की माँ' आदि। *चन्द्रगुप्त विद्यालंकार* – 'अशोक', 'रेवा', 'देव और दानव', 'न्याय की रात' आदि। *उदय शंकर भट्ट* – 'सागर विजय', 'विक्रमादित् अम्बा', 'कमला', 'मुक्ति', 'शक विजय', 'अंतहीन अंत', 'क्रान्तिकारी', 'नया समाज', 'पार्वती', या 'स्वतंत्रता का युग' है, तथा सात काव्य नाटक भी लिखा हैं। *रामकुमार वर्मा* – 'कौमुदी महोत्सव', 'विजय-पर्व', 'अशोक का शोक', 'नौहर की ज्योति', 'नाना फड़नवीस', 'महा राणा प्रताप', 'जय आदित्य', 'जय बाँगला', 'अग्निशिखा', 'पृथ्वि का स्वर्ग', 'संत तुलसीदास', 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक', 'भगवान बुद्ध', 'अहल्याबाई', 'स्वयंवर', 'अनुशासन पर्व', 'सम्राट कनिष्ट', 'क्रान्ति का परताप', 'सरजा शिवाजी', 'कर्मवीर कर्ण' आदि। *रंगेय राघव* – 'स्वर्ण भूमि का यात्री', 'रामानुज', 'विरुद्धक' आदि। *भगवती चरण*

वर्मा – 'कर्ण', 'सबसे बड़ा आदमी', 'पुरया तुन्हें खा गया', 'वसीयत' आदि।

इस काल के प्रारंभ में अर्थात् स्वचन्छंदतावादी युग में ही भुवनेश्र्वर के एकांकी ऊसर और ताँबे के कीड़े प्रकाशित हुए थे। इनकी ओर पहले किसी ने ध्यान नहीं दिया है जबकि प्रसाद समय रंगचेतना एवं रंगबोध के खिलाफ सबसे अधिक आक्रमक मुद्रा में दिखायी देते हैं। छायावादी भावुकता और रुमानी कल्पना के युग में भुवनेश्र्वर जैसा प्रखर ठोस व्यक्तित्व और जीवन के मूलभूत प्रश्नों से साक्षात्कार करता हुआ उनका साहित्य और पाठ्य नाटकों के युग में रंगमंच की परिकल्पना से रचे उनके नाटक सहसा चैंकाते हैं। आश्चर्य होता है कि जो प्रयोग - कथानक, भाषा, यथार्थ, नाट्यानुभूति और रगानुभूत के स्तर पर अब हिन्दी में दिखायी देने शुरु हुए हैं, उनका प्रौढ़ रूप वर्षों पहले भुवनेश्वर में मौजूद है।

आलोच्य पूर्व कालीन हिन्दी नाटक साहित्य में महिला नाटक और नाटककारों का योगदान देखने को नहीं मिलता है। क्योंकि भारतीय जीवन व्यवस्था पुरुष प्रधान होने से साहित्य के विकास में नारी का योगदान स्त्रष्टा के रूप में कम और प्रोरणा के रूप में अधिक रहा। आजकल भारतीय साहित्य और विशेषतः हिन्दी साहित्य में महिला लेखन को लेकर बहुत जोरों से विचार हो रहा है। लेकिन यदि हम साहित्य की ही एक महत्वपूर्ण विधा नाटक पर गौर करें तो हम पाते हैं कि नारी विषयक यह कमजोरी न जाने कितने वर्षों से लगातार चली आ रही है। हमारे यहाँ ऐसा माना जाता रहा है कि आरंभ से ही पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था की उपस्थिति के कारण शायद नारी को उसका उचित स्थान कभी नहीं दिया गया। यह तथ्य तत्कालीन वर्ण व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था के चलते व्यावहारिक रूप में बेशक दिखाई पड़ती रही हो लेकिन जहाँ तक भारतीय सभ्यता, संस्कृति, चिंतन और साहित्य का सवाल है वहाँ नारी हमेशा से पुरुष के समकक्ष खड़ी दिखाई पड़ती है।

8.2.आलोच्य कालीन या समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार

आलोच्यकालीन या समकालीन हिन्दी नाटक साहित्य में हम जगदीश चन्द्र माथुर का उल्लेख कर सकते हैं। उन्हें ही छठवें दशक की हिन्दी नाट्य-धारा का प्रवर्तक कहा जाना चाहिए। उन्होंने सन् 1951 में 'कोणार्क' लिखकर हिन्दी नाटक का दिशा निर्देश किया और नाटक को समकालीन के साथ रंग- सापेक्ष बनाया। यहाँ हम ऐसे नाटककारों के लेखन का परिचय देना चाहते हैं, जो समकालीनता से जुड़ते हुए भी समबिन्दु पर बने रहे। ऐसे नाटककारों में सर्वप्रथम विष्णु प्रभाकर का नाम आता है। विष्णु प्रभाकर के नाटक में आधुनिक युग बोध मिलता है; परन्तु वे गांधीवाद से प्रभावित आदर्शवादी नाटककार हैं। इसलिए उन्होंने वर्तमान विसंगतियों का समाधान आदर्शवादी धरातल पर खोजने की चेष्टा की है। उनके 'नव-प्रभात', 'समाधि', 'डॉक्टर', 'युगे-युगे क्रान्ति', 'टूटन परिवेश,' 'कुहासा' और 'किरण', 'वंदिनी', 'सत्ताके आर-पार', 'अब नहीं,' 'गाँधार की भिक्षुणी', 'श्वेत कमल' आदि नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उनका वर्तमान यथार्थ से सीधा साक्षात्कार टूटते परिवेश हैं।

धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग' लिखकर कवित्व के साथ नाट्यधर्मी चेतना का विन्यास किया। इस नाटक में धर्मवीर भारती ने मिथकों और प्रतीकों के माध्यम से वर्तमान मूल्यहीनता की स्थिति उजागर की है। गिरिजा कुमार माथुर ने 'इन्दुमति', 'पृथ्विकल्प', 'रोटी और कमल' आदि भरत भूषण अग्रवाल ने 'पलायन', 'सेतुबंधन', 'अग्निलीक' आदि दुष्यंत कुमार ने 'एक कंठ विषपायी' और 'मसीहा मर गया' तथा अज्ञेय ने 'उत्तर प्रियदर्शी' नाटकों की रचना की। इन नाटकों का साहित्यिक महत्व अधिक है।

अमृतलाल नागर ने कथा साहित्य के अतिरिक्त नाट्य लेखन और मंचन में पर्याप्त रुचि दिखायी। उनका युगावतार नाटक खेला भी गया। इसके बाद उन्हों ने

'उत्तर-चढ़ाव', 'बात की बात', 'चंदन वन', 'चेक्करदार सीढ़ियाँ और अँधेरा', 'नुक्कड पर' आदि नाटकों की रचना की।

नरेश मेहता के नाटकों में समकालीनता सर्वाधिक प्राप्त होती है। उन्होंने 'खंडित यात्राएँ', 'संशय की एक रात', 'अपराधी कौन', 'सरोवर के फूल', 'महाप्रस्थान' आदि नाटकों की रचना की। इनकी नाट्य कृतियों खंडित यात्राएँ सरोवर की फूल आधि का भी मंचन हुआ।

भीष्म साहनी के नाटकों 'हानुश', 'कबिरा खड़ा बाजार में', 'मुआवजे' ने अधिक ख्याति आर्जित की। भीष्म साहनि नायकों में वर्णनात्मकता का प्राधान्य है।

रमेश बक्षि का पहला नाटक 'देवयानी की कहानी' सन् १९७२ ई में प्रकाशिक हुआ। इसके बाद उनके 'तीसरा हाथी', 'वामाचार', 'किसे हुए तीर' आदि नाटक प्रकाशन में आये।

गिरिराज किशोर ने 'प्रजा ही रहने दा', 'घास और घोडा', 'चहरे-चहरे नर गंध', 'केवल मेरा नाम लो', 'जुर्म शायद' आदि नाटकों की रचना करके समकालीन बोध का परिचय दिया है।

रमेश बक्षि का पहला नाटक 'देवयानी की कहानी' सन् १९७२ ई.में प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'तीसरा हाथी', 'वामाचार', 'कसे हुए तीर' आदि नाटक प्रकाशन में आये।

नरेद्र कोहली का 'शम्बूक की हत्या' नाटक सन् 1975 ई.में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में कोहली ने वर्तमान रुग्म व्यवस्था में फैसी हुई सड़ांध का चित्रण प्रस्तुत किया है।

मोहन राकेश ने चार नाटकों – 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राज हंस', 'आधे-अधूरे', 'पैर तले की जमीन की' रचना की। भाषा, रूपबंध, दृश्यांकन, रंग-संकेत, कथ्य आदि विभिन्न धरातलों पर हिन्दी नाटक और रंगमंच को समीप लाकर

उनमें परस्पर संगति और समीकरण बिठाने की दृष्टि से मोहन राकेश का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

लक्ष्मीनारायण लाल ने सन् 1955 से लेकर आज तक लगभग पच्चीस नाटकों की सृष्टि की है। वे सक्रिय रूप में रंगमंच से जडे रहे। इसलिए उन्होंने रंगमंचीय दृष्टि से शिल्प के अनेक प्रयोग किये हैं। उनका पहला नाटक 'अंधा कुआँ', इसके बाद उनके 'सुन्दर रस', 'मादा कैक्टस', 'रात रानी', 'दर्पन', 'सूर्यमुख', 'कलंकी', 'मि. अभिमन्यु', 'कर्फ्यू', 'अब्दुल्ला दीवाना', 'रक्त कमल', 'गंगा द्वार', 'व्यक्तिगत', 'खेल नाहीं नाटक', 'यक्ष प्रश्न', 'चतुर्भुज राक्षस', 'एक सत्य हरिचन्द्र', 'संस्कार द्वज', 'सगुन पंछी', 'गंगा माटी', 'पंच पुरुष', 'सूखा सरोवर', 'उत्तर युद्ध' आदि अनेक नाटक प्रकाशित हुए। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से हरेक नाटक विशेष महत्व पाया है।

दया प्रकाश सिन्हा का पहला नाटक 'सांझ-सबेरा' सन् 1958 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद उनके 'भँवर', 'सुश्मन', 'इतिहास चक्र', 'ओह अमेरिका', 'कथा एक कांश की', 'सादर आपका', आदि नाटक प्रकाशित हुए। इन नाटकों के माध्यम से दा प्रकाश सिंह नेस समसामयिक विषयों को आधुनिकता के संदर्भ में उठाया है।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री की 'नेफा की एक शाम', 'वतन की आबरु', 'चिराग जल उठा', 'शतुर्मर्ग', 'अनुष्ठान', 'माटी जागे रे' आदि नाटक प्रकाशित हुए है। इन नाटकों में से सबसे अधिक ख्याति उन्हें शुतुर्मुर्ग से प्राप्त हुई।

शंकर शेष ने सन् 1955 ई.से सन् 1991 ई.तक लगभग बीस नाटकों की रचना की। उनका प्रथम नाटक 'मूर्तिकार' सन् 1955 ई. मे लिखा गया। इस के पश्चात उन्होंने नयी 'सभ्यता के नये नमूने', 'रत्नगर्भ', 'विवाह मण्डप', 'बेटो वाला

बाप' और 'तिल का चाड़' नाटक लिखे। ये उनके प्रारंभिक नाटक थे। इस के बाद 'बंधन अपने अपने', 'फन्दी', 'खजुरहों का शिप्ल', 'एक और द्रोणाचार्य', 'घरौंदा', 'मायावी सरोवर', 'रत्नगर्भ', 'आधीरात के बाद', 'बाढ़का पानी' आदि प्रकाशित हुए।

असगर वजाहत के 'इन्ना की आवाज', 'वीरगति', 'फिरंगी लौट आए' आदि नाटक हैं जो कथ्य और शिल्प में एक समबिन्दु स्थापित करते हैं। जिस लाहौर नाहिं देखया वो जन्मोइ नई नाटक असगर वजाहत का बहु चर्चित नाटक हैं।

मुद्राराक्षस के 'तिलचट्टा', 'योर्स फेतफुली', 'मरजीवा', 'तेंदुआ', 'गुफाएँ', 'सन्तोला', 'आला अफसर' आदि नाटक प्रकाशित हुआ हैं। ये नाटक नाट्य जगत में विशिष्ट पहचान बनाते हैं, साथ ही ये उनकी नाट्य कला के ज्ञान और विविध प्रयोगों का परिचय देते हैं।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी', 'लड़ाई', 'कल भात आयेगा', 'अब गरीबी हटाओ' आदि नाटक प्रकाशित हुए हैं। दयाल ने अपने नाटकों में सरल कथा सूत्रों के माध्यम से आधुनिक जीवन की विसंगतियों पर तीखे व्यंग किये हैं।

सुरेन्द्र वर्मा का हिन्दी नाट्य जगत में विशेष स्थान हैं। वे हिन्दी के उन कतिपय नाटककारों में से हैं, जिन्होंने 'सेक्स' की अतिरंजना 'चैंकाने वाले स्टंट', 'पाश्चात्य एबसर्ड' नाटकों के' बेतुकेपन', 'शिविरबद्ध' लेखन, रंगमंचीय प्रचारत्मकता और सतहीपन से अपने को बचाकर गंभीर साहित्यिक नाट्य कर्म और रंगमंचीय विधान में उचित सामंजस्य स्थापित किया हैं। वर्मा के नटाकों में सेतुबंध नायक-थलनायक और विदूषिक और द्रौपदी संग्रहीत हैं।

वर्मा का 'सूर्य की अन्तिम किरण से सीर्य की पहली किरण तक' नाटक यौन संबंधों की गरहराई और उससे उत्पन्न संत्रास का समर्थ चित्र प्रस्तुत कराता हैं।

‘आठवा सर्ग’ नाटक में वर्मा ने कालिदास की ऐतिहासिक कथा के माध्यम से प्रतिबंधित रचना-कर्म की यातना का चित्रण किया है। इसमें श्लील और अश्लील का प्रश्न भी उठाया गया है। रूप गठन दृष्टि से यह नाटक तीन अंकों का हैं।

मणि मधुकर एक प्रयोगशील नाटककार हैं। इनके ‘रस गंधर्व’, ‘बुलबुल सराय’, ‘दुलारी बाई’, ‘खेला पोलमपुर’, ‘इकतारे की आँख’, ‘सारे सर्वनाम’, ‘इलायची बेगम’, ‘सुने बोधिवृक्ष’ आदि विभिन्न प्रयोगों के उदाहरण हैं।

इस प्रकार नवें और दसवें दशक में भी युवा नाटककारों द्वारा कुछ अच्छे चर्चित नाटकों की रचना हुई हैं। ये नाटक रंगमंचीय दृष्टि से भी सफल हुए हैं।

8.3.समकालीन हिन्दी महिला नाटककार

गद्य-साहित्य की अन्य विधाओं की भांति अब नाटक रचना के क्षेत्र में भी महिला लेखिकाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। समकालीन महिला नाटककारों में कुसुम कुमार, मन्नु भंडारी, मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे, मृदुला बिहारी, मैत्रेयी पुष्पा, आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

कुसुम कुमार ने संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक नाटक लिखे हैं। अब तक ‘सुनो शेफाली’, ‘रावण लीला’, ‘पवन चतुर्वेदी की डायरी’ प्रकाशित हो चुके हैं। इन नाटकों में ‘रावण लीला’ विशेष रूप से चर्चित हुए है। ‘रावण लीला’ में धन की प्राथमिकता का एक हास्य-करुणामिश्र मनोरंजक रूप देखा है। ‘सुनो शेफाली’ नाटक में लेखिका ने राजनीतिक भ्रष्टाचार का चेहरा बेनकाब किया है। लेखिका ने इन नाटक में विस्तृत रंग निर्देशन किया है जो उसके रंगमंचीय ज्ञान के परिचायक हैं।

मन्नु भंडारी का पहला नाटक 'बिना दीवारों के घर' 1965 में प्रकाशित हुआ है। 'बिना दीवारों के घर' में एक ऐसे परिवार की समस्या को चित्रिति किया गया है जिसमें पति अजित और पत्नी शोभा दोनों ही नौकरी करते हैं। उनके दाम्पत्य जीवन के संबंधों में तनाव में जीता है जससे घर की संज्ञा झुठला जाती है।

नारी और पुरुष के दाम्पत्य जीवन की संबसे बड़ी विडम्बना यह है कि अजित और शोभा की तरह परस्पर मतभेदपूर्ण संबंधों को लेकर घर की चाहटदीवारों के अंदर जीना जितना कठिन है, उससे निकल कर जीना उससे भी कठिन हो जाता है। नारी जीवन की यह त्रासदी है कि उसके लिए पुरुष के साथ जीना जितना कठिन है उससे अधिक उसके बिना भी जीना कठिन है। इस दृष्टि से शोभा और मीना दोनों जीवन की इस भयंकर त्रासदी को झेलती हैं, और नाटक में यही त्रासदी मुख्य हैं।

मृदुला गर्ग का 'एक और अजनबी' नाटक दो पुरुषों के बीच विभाजित एक नारी की त्रासदी को व्यक्त करता है। शानी विवाह से पूर्व इन्दर खोसला से प्रेम करती है किन्तु उसका विवाह जगमोहन से हो जाता है। इस बीच इन्दर खोसला अमेरिका चला जाता है और वह उसी कम्पनी का मैनेजिग डाइरेक्टर बनकर लौटता है जिसमें जगमोहन एक छोटा-सा अधिकारी है। पति-पत्नी के बीच जब इन्दर खोसला की चर्चा चलती है तो शानी में पूर्व-प्रेम का भाव उमड़ उठता है। जगमोहन पत्नी के इस पूर्व-परिचय का लाभ उठाने की योजना बनाता है।

इस प्रकार शानी एक ओर पत्नी की आकांक्षा का शिकार बनती है और दूसरी ओर आत्म-प्राप्ति की लालस से इन्दर खोसला में अपने प्रेम को खोजती है। किन्तु उसकी यह खोज एक विडम्बना सिद्ध होती है। नाटक में नारी के अन्तर्विरोध और मनोवैज्ञानिक जटिलताओं का शानी के माध्यम से बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। लेखिका ने प्रेमी और पति दोनों की समानता में पुरुष के एक सामान्य चरित्र को

उभारने का जो उपक्रम किया है, उससे जगमोहन और इन्दर खोसला एक से दिखाई जेते हैं।

मृदुला गर्ग का दूसरा नाटक 'तुम लौट आओ' भी स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधृत आधुनिक नाटक है। 'जादू का कालीन' मृदुला गर्ग का नवीनतम नाटक है। मृदुला गर्ग हरेक नाटक सहज भाषा, संवादों में तीखापन पात्रों में तीव्रता इसे हर दृष्टि से मंचन योग्य बनाते हैं।

मृदुला बिहारी हिन्दी नाटक साहित्य क्षेत्र में अपना एक स्थान प्राप्त की हैं। मृदुला जी के पाँच नाटक संकलित है – 'भँवर', 'तीसरे रास्ते का राही', 'वे पाँच शब्द', 'देहरा' और 'अँधेरे से आगे'। ये नाटक नारी मन के विभिन्न पक्षों का उद्‌घाटन करते हैं। नारी की संवेदनशीलता, उसकी दृष्टि, उसका व्यवहार, ज्ञान और कर्म का क्षेत्र अपना अलग ही होता। इसकी समस्याएँ कई अर्थों में पुरुषवर्ग की समस्याओं से भिन्न होती है। समाजगत मूल्यों और व्यवस्था के बीच उसका जीवन, उसके मनोभाव अनेक स्तरों पर पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक आहत होते हैं। इन नाटकों के मुख्य नारी-पात्रों-हीरा, रंजना, जानकी, माया और अंजना के व्यवहारिक जीवन में यही सब घटित होता है। वैसे उनका अपना संसार है, जिन्दगी के अलग अलग आयाम हैं, फिर भी उनमें एक समानता है और वह है उनकी बेचौनी।

मृणाल पाण्डेय को उनके 'जो राम रचि राखा' से ख्याति प्राप्त हुई है। 'आदमी जो मछुआरा नहीं था' और चोर निकल के भागा उनके अन्य नाटक हैं। नाटककार मृणाल पाण्डेय ने अपने नाटकों के माध्यम से आज के भ्रष्टाचार, अमानवीयता, राजसत्ता की मक्कारी तथा ईमानदारी को सचेत चित्रित किया है।

मैत्रेयी पुष्पा जी का 'मन्दाक्रन्ता' नाटक उनका उपन्यास 'इदन्नमम' पर आधारित रचना है। मंदाक्रान्ता नाटक में अपने विचारों की परिपक्वता तथा सामाजिक

यथार्थ के आकलन की प्रवृत्ति प्रकट की है। बुंदेलखंडी जीवन के प्रामाणिक और रंगारंग चित्र यहाँ भी हैं, पर उनमें यथार्थ की पकड़ और गहन मानवीय संवेदना अनुस्यूत है। मंदाक्रान्ता की मंदा वास्तविक अर्थों में एक जुझारू युवती है, जो केवल परिवार और समाज द्वारा अपने लिए निर्मित बंधनों को ही नहीं तोड़ती, वरन उस शोषण के विरुद्ध भी तनकर खड़ी होती है जो आज के नेताओं और माफिया ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों और ग्रामीणों पर कहर के रूप में बरपा जा रहा है।

मैत्रेयी पुष्पा जी ने पात्रों का चित्रांकन अत्यंत जीवंत रूप में किया है। खुरदरे यथार्थ को खुरदरी भाषा में व्यक्त करने की कला उनके पास है। पर शिल्प का सौष्ठव और भाषा की सर्जनात्मकता की उनके उपन्यासों में कमी है। पिता अपने परिवार में एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जो उनकी संतति की कड़वाहट, क्षोभ, घुटन, आक्रोश, फालतूपन के कारण ठहरे हुए पानी की भाँति एक संड़धयुक्त बासी जिन्दगी का प्रतीक बन जाता है।

इस प्रकार हिन्दी नाटक साहित्य में महिला लेखिकाएँ जीवन के जटिल, व्यापक बहुआयामी और विविध-स्तरीय यथार्थ को नाटकों के माध्यम से व्यक्त करके अपनी उत्कृष्ट सर्जनात्मक क्षमता का प्रमाण दे कर अपनी भूमिका निभायी हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी नीटक साहित्य में महिलाओं का योगदान स्त्रष्टा के रूप में अधिक रहा है। 19वीं-20वीं शताब्दी का भारतीय इतिहास एक क्रान्तिकारी युग माना जाता है। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, आचार -विचार आदि के संपर्क ने भारतीय जन- जीवन में आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दिया था। इस का मूल केन्द्र महिला थी। महिला जागरण की गूंज ने उसे चैंकाया नहीं वरन अब वह इसे अपना स्वत्व समझने लगी हैं। महिला द्वारा रचित इस युग का साहित्य इसका प्रमाण है।

समकालीन महिला में विद्रोह की भावना प्रबल हो रही थी। अपनी प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ फेंकना चाहती थीं। केवल सामाजिक जीवन में ही उनकी स्वतंत्रता की ललकार नहीं थी, बल्कि राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक जीवन में भी उसका विद्रोह स्वर प्रबल हो रहा था। महिला द्वारा रचित तत्कालीन नाटक साहित्य इस कथन की पुष्टि करता है। समकालीन महिला द्वारा रचित नाट्य साहित्य से स्पष्ट होता है कि जीवन और जगत की विभिन्न अनुभूतियों से भी वह अपने नाटक की विषय वस्तु का आधार बनाने के लिए बनी हैं।

वास्तव में महिला की साहित्यिक प्रतिभा के उचित श्रेय प्रदान करना ही नहीं है अपितु सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक और नैतिक स्थितियों के परिपार्श्व में उसके मानवीय विकास को देखना भी है।

युगीन परिस्थितियों का चित्रण करने का ध्येय यही है, क्योंकि उन्हीं के द्वारा नाटक साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का आगमन होता है। इस प्रकार जीवन-पक्षों और अनुभूतियों को अपने नाटकों में व्यक्त करके आलोच्यकालीन महिला नाटककारों ने महिला की क्षमता के वैभव के प्रति अटूट आस्था उत्पन्न की।

वास्तव में महिला की साहित्यिक प्रतिभा को उचित श्रेय प्रदान करना ही नहीं है अपितु सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक और नैतिक स्थितियों के परिपार्श में उसके मानवीय विकास को देखना भी रहा है।

युगीन परिस्थितियों का चित्रण करने का ध्येय यही है, क्योंकि उन्ही के द्वारा नाटक साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का आगमन होता है। इस प्रकार जीवन-पक्षों और अनुभूतियों को अपने नाटकों में व्यक्त करके आलोच्यकालीन महिला नाटककारों ने महिला की क्षमता के वैभव के प्रति अटूट आस्था उत्पन्न की।

समकालीन रचना परिदृश्य में महिला नाट्य लेखन का एक प्रवृत्तिगत बिम्ब बनता है। उस वस्तनिष्ठ बिम्ब की अनेक संयोजक रेखाएँ जागरूक महिला की कलम से निर्मित हैं। कहना न होगा आज का महिला नाट्य लेखन सामान्य और असमान्य

स्थितियों की संघर्षशीलता और सामाजिक न्याय पाने की भावना तथा अपने अस्तित्व को एक इकाई का रूप देने की इच्छा से प्रेरित है। समकालीन जीवन के परिदृश्य महिला नाटककार इस बात का स्पष्ट प्रमाण दे रही हैं। उसका विशेष महत्व इसलिए है कि उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर अपने संघर्ष की चेतना में, आज की महिला की सामाजिक नियति और मानसिकता को बहुत ईमानदारी और बहुत गहराई से व्यक्त किया है। वस्तुतः महिला नाटककारों ने संपूर्ण परिवेश में इतिहास वृत्त से संघर्ष करते हुए और नवीन जीवन पद्धति की ओर चाहते हए नारी पात्रों की विशिष्ट जानकारी और पहचान दी है।

***

अध्याय-दो

समकालीन हिन्दी महिला नाटककार : व्यक्ति एवं परिवेश

<u>द्वितीय अध्याय</u>

समकालीन हिन्दी महिला नाटककार : व्यक्ति एवं परिवेश

किसी भी रचना के लिए व्यक्ति का परिवेश सबसे प्रबल होता है। व्यक्ति और परिवेश में अटूट संबंध होता है। व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए कठोर परिवेश से बचने की चेष्टा करता है, और अपने हित के लिए परिवेश से लड़ता है, उसे बदलकर अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करता है। परिवेश का संबंध समाज तथा वैचारिक तत्व का संबंध मनुष्य की मानसिक क्रियाओं से होता है। साहित्यकार अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं को ही रचना के रूप में अभिव्यक्त करता है।

1.व्यक्ति एवं परिवेश

परिवेश सामाजिक संबंधों का गतिशील रूप है। चेतनशील प्राणी होने के नाते मनुष्य जिन व्यक्तियों के संपर्क में आता है, उनके व्यक्तित्व से वह भली-भाँति परिचित हो जाता है। यह परिचय ही सामाजिक संबंध की नींव डाल देता है। उत्पादन प्रणाली के बदलने से व्यक्ति से समस्त सामाजिक संबंध ही बदल जाते हैं। इसलिए परस्पर सहानुभूति या संवेदन का होना आवश्यक है। व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है, सामाजिक अखण्डता का खंड है, जो परिवेश को पूर्णता प्रदान करता है। व्यक्ति के लिए समाज एक अनिवार्य आवश्यकता है। समस्त संस्थाएँ व्यक्ति की सापेक्षता में ही महत्वपूर्ण हैं। यदि ये संस्थाएँ व्यक्ति की उन्नति में बाधक सिद्ध होती हैं तो उनका अस्तित्व ही व्यर्थ है। इसलिए परिवेश व्यक्ति के लिए है।

1.1.व्यक्ति

जीवन के एक अभिन्न अंग व्यक्ति (इँडिविजुअल) के स्वरूप को भी समझना आवश्यक है। जीव शास्त्र में व्यक्ति की परिभाषा एक सामान्य परिभाषा मानी गई है। जबकि मनोविज्ञान में उसे मूलतः विशिष्ट माना गया है। जीवशास्त्रीयएवं विकासवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार – "व्यक्ति एक ऐसा जीवधारी है जो दिक्, काल और क्रिया के परिवेश में जीवित रहता है और इसके साथ वह एक निश्चित जीवन-चक्र का पालन करता है।"[1] यानी व्यक्ति परिवेश में पलता है और निश्चित जीवन चक्र का पालन करता है। समस्त संस्थाएँ व्यक्ति की सापेक्षता में ही महत्वपूर्ण हैं। यदि ये संस्थाएँ व्यक्ति की उन्नति में बाधक सिद्ध होती हैं तो इनका अस्तित्व ही व्यर्थ है। इसलिए परिवेश व्यक्ति के लिए है।

1.2.परिवेश

हिन्दी शब्द सागर में परिवेश के कई अर्थ मिलते हैं - परसना या परोसना, परिवेशन, परिधि, घेर और कोई ऐसी वस्तु जो चारों ओर से घेर कर किसी वस्तु की रक्षा करती हो।"[2] शिवसागर मिश्र के अनुसार - अपने चारों ओर व्यक्ति व्याप्त विभिन्न परिस्थितियाँ ही परिवेश हैं।"[3] भरद्वाज के अनुसार - परिवेश कोई अमूर्त प्रत्यय नहीं है, अपितु उत्पादनों के संबंध से बने सामाजिक ढॉचे का नाम ही परिवेश है, इनके अंतर्गत किसी देश और काल की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ आ जाती हैं।"[4]

व्यक्ति के चरों ओर जो कुछ भी है वही उसका परिवेश होता है। इस संदर्भ में एक आंग्ल वक्ता बोरिंग का कहना है कि - जीन्स के अतिरिक्त व्यक्ति को प्रभावित करने वाली प्रत्येक वस्तु परिवेश है....एक व्यक्ति के वातावरण से तात्पर्य उन सभी

---

[1] विज्ञान दर्शन स्वरूप तथा क्षेत्र - डॉ. वीरेन्द्र सिंह - पृ.76

[2] हिन्दी शब्दसागर - छटा भाग - मूल संपादक-श्यामसुन्दर दास - पृ- 2868

[3] लेखन और परिवेश -वचनदेव कुमार का लेख - परिवेश और मूलबोध -पृ-1

[4] परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य लेखन - हेतु भरद्वाज - पृ-12

उद्दीपकों के योग से है जिन्हें वह जन्म से मृत्यु तक ग्रहण करता है। व्यक्ति हमेशा वातावरण (परिवेश) से प्रभावित रहता है, वातावरण में ही उसका संपूर्ण जीवन बीतता है।"[1]

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि परिवेश के कई अर्थ होते हैं, उसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। उसका संबंध समाज के सभी तत्वों (सामाजिक, राज नैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, व्यवस्थाओं) से संबंधित होता है।

प्रत्येक व्यक्ति हर समय किसी न किसी समस्या से ग्रस्त रहता है। इसलिए वैज्ञानिक भाषा में समस्याओं की उपस्थिति को परिवेश कहा जाता हैं। परिवेश के दो पक्ष होते हैं, आंतरिक और बाह्य। व्यक्ति शरीर के अंदर जो शक्तियाँ काम करती हैं वे उसका आंतरिक परिवेश होती है। और जिन शक्तियों का दबाव व्यक्ति के बाह्य जगत पर पड़ता है, वे उसका बाह्य परिवेश होती हैं। व्यक्ति को प्रतिक्षण इन दोनों परिवेशों की शक्तियों से संघर्ष करके अपना संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता पड़ती रहती है।

2.व्यक्ति एवं परिवेश का अंतः संबंध

व्यक्ति और परिवेश में अटूट संबंध होता है। परिवेश एक तरह की शक्ति या दबाव होता है, जो व्यक्ति को कुछ न कुछ करने को विवश करता है। व्यक्ति पूरी तरह से परिवेश से प्रभावित नहीं होता बल्कि एक सीमा तक उस पर अधिकार भी कर सकता है। मनुष्य हमेशा देश काल के अनुरूप बदलता रहता है। उस बदलते हुए मानवीय चेतना को उजागर करने का प्रयत्न हर रचनाकार करता है। रचनाकार परिवेश के सभी बारीक और स्थूल आयामों को रूपायित करने का प्रयत्न करता है लेकिन हर रचनाकार का अपना-अपना परिवेश अलग होता है।

[1] बालमनोविज्ञान-बालविकास - डॉ.प्रीतीवर्मा - पृ.87-88 से उदृत

वास्तव में मानवीय भावों का यह गहन विश्लेषण पाठक में साहित्य की समझ को विकास करने के लिए किया करता है। क्योंकि साहित्य भावनात्मक अनुभूति एवं इंद्रिय बोध का सम्मिश्रण है जो उसकी भाषिक एवं कलात्मक क्षमता का रूप धारण करता है। इसलिए किसी भी रचनाकार के रचनात्मक बोध के गहन विश्लेषण हेतु उनके जीवन को प्रभावित एवं गतिशील बनाने वाली परिस्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक होता है। परिस्थितियाँ हमेशा रचनाकार को लिखने को बाध्य करती हैं, देश में उठने वाली अनेक लहरों जैसे - सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि बदलाव का चित्रण कर वह अपनी रचना को प्रभावित करता है।

आज के युग और प्राचीन युग के परिवेश में काफ़ी अंतर दिखाई देता है। पहले की दुनिया परिवर्तनशील होते हुए भी छोटी थी मगर आज की दुनिया में जो परिवर्तन आ रहा है, रचनाकार उससे पृथक नहीं है। इस विषय को साबित करते हुए हिन्दी रचनाकार जैनेंद्र कुमार का कहना है कि - "एक बिन्दु पर आकर स्वयं रचनाकार ही अपना परिवेश हो जाता है।"[1] यानी लेखक परिवेश से इतना जुड़ जाता है कि अलग करना असंभव हो जाता है।

सृजक उसी से अनुभूति पाता है, उसी को अभिव्यक्ति देकर अपने परिवेश में पायी वस्तु को संगठित एवं रोचक बनाकर उसी को लौटाता है। रचना प्रक्रिया एक लंबी क्रिया है जिसमें अनेक घात-प्रतिघात होते हैं। लेखक की मानसिकता को जानना उसकी मानसिकता के प्रमुख कारण, उसके संस्कार को जानना आवश्यंभावी है। इसलिए रचनाकार के कृतित्व को सही अर्थ में समझने केलिए उसके व्यक्तित्व को जानना अत्यंत ज़रूरी है।

असंभव अक्सर देखा जाता है कि सृजक के जीवन के दोनों पहलुओं अर्थात व्यक्ति एवं कृतित्व आपस में इतना हिल-मिल जाते हैं कि उनके बीच स्पष्ट विभाजक

---

[1] समयसीमा और सिद्धांत - जैनेन्द्र कुमार - पृ. 7

रेखा खींचना कष्टसाध्य हो जाता है। आदमी के व्यक्तित्व का विकास उसके जन्मजात गुण, उसका सामाजिक संपर्क, पारिवारिक परिस्थिति, शैक्षिक उपलब्धि आदि पर निर्भर रहता है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के लिए यह सब कुछ अनुकूल थे।

3.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों का परिवेश और उनका रचना संसार

समकालीन महिला नाटककारों में कुसुम कुमार, मन्नु भंडारी, मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे, मृदुला बिहारी, मैत्रेयी पुष्पा, आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी नाटक साहित्य में महिला लेखिकाएँ जीवन के जटिल, व्यापक बहुआयामी और विविध-स्तरीय यथार्थ को नाटकों के माध्यम से व्यक्त करके अपनी उत्कृष्ट सर्जनात्मक क्षमता का प्रमाण देकर अपनी भूमिका निभायी है।

समकालीन हिन्दी नाटक साहित्य में महिलाओं का योगदान स्त्रष्टा के रूप में अधिक रहा है। 19वीं-20वीं शताब्दी का भारतीय इतिहास एक क्रान्तिकारी युग माना जाता है। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, आचार -विचार आदि के संपर्क ने भारतीय जन- जीवन में आमूल परिवर्न उपस्थित कर दिया था। इस का मूल केन्द्र महिला थीं। महिला जागरण की गूँज ने उसे चैंकाया नहीं वरन अब वह इसे अपना स्वत्व समझने लगी थी। महिला द्वारा रचित इस युग का साहित्य इसका प्रमाण है।

समकालीन महिला में विद्रोह की भावना प्रबल हो रही थी। अपनी प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ फेंकना चाहती थी। केवल सामाजिक जीवन में ही उसने स्वतंत्रता की ललकार नहीं की, बल्कि राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक जीवन में भी उसका विद्रोही स्वर प्रबल हो रहा था। महिला द्वारा रचित तत्कालीन नाटक साहित्य इस कथन की पुष्टि करता है। समकालीन महिला द्वारा रचित नाट्य साहित्य से स्पष्ट होता है कि जीवन और जगत की विभिन्न अनुभूतियों में भी वह अपने नाटक की विषय वस्तु बनाने लगी थी।

वास्तव में महिला साहित्यिक प्रतिभा का उचित श्रेय प्रदान करना ही नहीं है अपितु सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक और नैतिक स्थितियों के परिपार्श्व में उसके मानवीय विकास को देखना भी है।

युगीन परिस्थितियों का चित्रण करने का ध्येय यही है, क्योंकि उन्हीं के द्वारा नाटक साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का आगमन होता है। इस प्रकार जीवन-पक्षों और अनुभूतियों को अपने नाटकों में व्यक्त करके आलोच्यकालीन महिला नाटककारों ने महिला की क्षमता के वैभव के प्रति अटूट आस्था उत्पन्न की।

समकालीन रचना परिदृश्य में महिला नाट्य लेखन का एक प्रवृत्तिगत बिम्ब बनता है। उस वस्तुनिष्ठ बिम्ब की अनेक संयोजक रेखाएँ जागरूक महिला की कलम से निर्मित हैं। कहना न होगा आज का महिला नाट्य लेखन सामान्य और असमान्य स्थितियों में संघर्षशीलता और सामाजिक न्याय पाने की भावना तथा अपने अस्तित्व को एक इकाई का रूप देने की इच्छा से प्रेरित है। समकालीन जीवन के परिदृश्य महिला नाटककार इस बात का स्पष्ट प्रमाण दे रहे हैं। उसका विशेष महत्व इसलिए है कि उन्होंने अपने अनुभवों के आदर पर अपने संघर्ष की चेतना में, आज की महिला की सामाजिक नियति और मानसिकता को बहुत ईमानदारी और बहुत गहराई से व्यक्त किया है। वस्तुतः महिला नाटककार ने संपूर्ण परिवेश में इतिहास वृत्त से संघर्ष करते हुए और नवीन जीवन पद्धति की ओर चाहते हुए नारी पात्रों की विशिष्ट जानकारी और पहचान दी है।

4.कुसुम कुमार - व्यक्ति एवं परिवेश

डॉ. कुसुम कुमार जी का जन्म 5 अगस्त, 1939 दिल्ली में हुआ था। किसी भी साहित्यकार की प्रतिभा, उसकी सक्रिय कल्पनाशक्ति और उसके गहन चिंतन मनन का समुचित परिचय हमें उसके द्वारा अपनी रचनाओं में किये गये प्रयोगों से ही

मिलता है। प्रयोगधर्मिता के इसी दौर में कई नाट्य लेखिकाएँ सामने आयीं जिन्होंने अपनी विशिष्ट नाट्य कृतियों द्वारा हिन्दी नाटक में प्रयोगात्मकता की प्रवृत्ति को पुष्ट किया। समकालीन हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से महिला नाटककारों का भी कम योगदान नहीं रहा क्योंकि मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, शांति मेहरोत्रा, गिरीश रस्तोगी, मृणाल पाण्डे और मृदुला बिहारी जैसी नाट्य लेखिकाओं के साथ ही कुसुम कुमार के नाटक भी प्रयोग के स्तर पर काफी सफल और चर्चित रहे।

सन् 1978-1988 के बीच की नाट्यकृतियों का सृजन इस बात का प्रमाण है कि कुसुम कुमार एक सक्रिय नाट्य लेखिका हैं, शैली शिल्प और कथ्यगत प्रयोग इनके नाटकों को एक विशिष्ट गरिमा प्रदान करते हैं साथ ही प्रयोग के स्तर पर पाठक इनके नाटकों को कुछ सोचने समझने के लिए मजबूर भी करते हैं।

4.1.कुसुम कुमार का साहित्य परिचय

डॉ. कुसुम कुमार जी के समग्र साहित्य को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते है-

4.1.1.कविता-संग्रह

1.तृष्णांकित

2.रास्ते भर जंगल

3.तीन अपराध

4.अभी रहेंगे।

4.1.2.उपन्यास

1. हीरामन हाई स्कूल

4.1.3.नाटक

1. सुनो शेफाली

2. रावण लीला

3. पवन चतुर्वेदी की डायरी

4.1.4.एकांकी

1. सलामी मंच तथा अन्य नाटक
2. मादा मिट्टी

4.1.5.सिद्धांत विवेचन

1.हिन्दी नाट्य चिंतन

4.1.6.अनुवाद

1. सांध्य छाया
2. हिमालय की छाया
3. बिना चेहरे के पुरुष
4. पसीना-पसीना
5. पापा खो गये
6. बॉबी की कहानी और बाल कहानियाँ।

4.2.कुसुम कुमार के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

4.2.1.सुनो शेफाली

'सुनो शेफाली' (1979) सत्ताधारियों, समाज सेवकों, पूँजीपतियों और भ्रष्टाचारियों की जबरदस्त ताकतों के खिलाफ कैसे एक सही और ईमानदार व्यक्ति की अकेली लड़ाई समाज और व्यवस्था को तोड़ती नहीं स्वयं गरिमामय होते हुए भी टूट जाती है सार्थक नहीं रह जाती व्यक्ति की इस विडम्बना को संबोधन के स्तर पर तीखी और मार्मिक अभिव्यक्ति डॉ. कुसुम कुमार जी की 'सुनो शेफाली' एक उल्लेखनीय रचना है।

'सुनो शेफाली' छः दृश्यों का यथार्थवादी नाटक है जो यमुना के दो घाटों वाले एक ही दृश्य-बंध पर मंचित होता है। नाटक में दो गीत हैं और कहीं-कहीं हास्य-परक संवाद भी जो पाठक-दर्शक को नाटक के सतत तनाव से कुछ देर के लिए मुक्ति प्रदान करते हैं। वस्तु-संघटन में नाट्य-कौशल तथा चरित्रों के परिचय एवं

उद्घाटन में लेखिका ने बड़ी चतुराई से कुतूहल को बनाए रखकर अपनी नाट्य-समझ का प्रमाण प्रस्तुत किया है।

4.2.2.रावणलीला

रावणलीला (1983) जिगरपुर की नेपथ्य-कथा के बहाने कला के क्षेत्र में व्याप्त भ्राष्टाचार के एक पहलू पर प्रकाश डालता है। मंच के आगे और पीछे की लीला के वैषम्य पर आधारित विडम्बनापूर्ण नाट्य-स्थितियों का यह आलेख दिलचस्प तो है लेकिन किसी गहन-गंभीर जीवन अनुभव से हमारा साक्षात्कार नहीं कराता। प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से यह नाटक अधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण कृति है। इसमें एक छोटे कस्बे में एक स्थानीय मंडली द्वारा राम लीला प्रस्तुत करने के प्रसंग का चित्रण करते हुए भारतीय समाज की बनावट और अंतर्विरोधों को रेखांकित किया गया है। रामलीला के प्रबंधक, अभिनेता और दर्शक इन तीनों वर्गों के द्वन्द्वात्मक संबंध का चित्रण करते हुए कस्बाई चित्रण का इस नाटक में अच्छी तरह पड़ताल करते हैं।

रामलीला की प्रदर्शन-पद्धतियों की परोडी की भंगिमा में सटीक उपयोग कर रावण की अपने हक की लड़ाई और उसकी विजय दिखाने के कारण यह नाटक अनूठा प्रयोग बन गया है।

2.2.3.पवन चतुर्वेदी की डायरी

पवन चतुर्वेदी की डायरी (1986) कुसुम कुमार जी का एक और नवीनतम प्रयोगधर्मी नाटक है। यह नाटक दो भागों में विभक्त है और विख्यात एवं प्रतिष्ठित बाप के जीवन मार्ग पर भटके हुए एक असफल बेटे की यथार्थ और कारुणिक कथा है, जिसके जीवन के चारों ओर का एक परिवेश है, जिसमें वह जीता तो है पर खुलकर साँस नहीं ले पाता। किसी को अपना समझकर अपने दुखों को, मानसिक परेशानियों को सुना नहीं सकता। दाम्पत्य संबंध में पड़ी हुई दरार पिता से असहमति

और मनमुटाव तथा अंत में मित्र मेहता से भी उसका झगड़ा होना, वास्तव में उसकी अनियंत्रित मानसिकता है।

नाटक में नाटकीय वातावरण कम और कहानीपन की शैली की अधिकता नाट्यशिल्प को कमजोर करती है। नाटक का अधिकांश भाग फलैश बैक से ही गुजरता है और इसी से नाटकीय घटनाओं की सूचना भी मिलती है। नाटक में दिखाने की अपेक्षा कहने का भाव अधिक प्रबल है। नाटक का पात्र पवन डायरी के पन्ने उलटता हुआ अपने अतीत की यादों और घटनाओं में खो जाता है। नाटक की मंचीय प्रस्तुति संभव है और हुई भी है पर बार-बार फ्लैश बैक के विधान के कारण नाटक के केन्द्रीय प्रभाव के खंडित होने का भाव बना रहता है।

2.5.मन्नू भंडारी : व्यक्ति एवं परिवेश

मन्नू भंडारी का जन्म 3 अप्रैल 1931 में मध्यप्रदेश के बानपुरा नामक गाँव में हुआ। उनके पिता का नाम श्री सुख सम्पत राय भंडार है। अपने पिता की संतनों में वे सबसे छोटी रही हैं और सबसे लाड़ली भी।

मन्नू जी का जन्म मध्य प्रदेश में हुआ किन्तु उनकी शिक्षा अलग-अलग स्थानों पर हुई, प्रारंभिक शिक्षा के लिए उन्हें अजमेर के सावित्री स्कूल में दाखिल किया गया। अजमेर में ही उन्होंने इंटरमीडियट तक शिक्षा ग्रहण की। वह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का युग था, छात्रा मन्नू उससे अप्रभावित नहीं रह सकीं। स्कूल जीवन में ही उनके भीतर राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति झुकाव रहा। उन्होंने कलकत्ता विश्वविध्यालय से स्नातक स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की। स्नातक स्तर पर हिन्दी उनका विषय नहीं रहा, लेकिन साहित्य के प्रति रुचि के कारण वे हिन्दी साहित्य के अध्ययन की और प्रवृत हुईं। उन्होंने काशी विश्वविध्यालय से प्राइवेट छात्रा के रूप में हिन्दी में स्तातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण की।

एम.ए की परीक्षा उत्तीर्ण होने के तुरंत बाद ही उन्होंने कलकत्ता के एक विद्यालय बालीगंज शिक्षा सदन में अध्यापन का कार्य आरंभ कर दिया। यहाँ नौ वर्ष

काम करने के बाद तीन वर्ष कलकत्ता में ही रानी बिडला कालेज में पढ़ाया। 1964 से दिल्ली के मिराण्ड हाउस कालेज में पढ़ रही थीं। अध्यापन मन्नू जी का प्रिय कार्य रहा है, अध्यापन संबंधी अपनी रुचि के विषय में उन्होंने 'एक पुरुष एक रानी' नामक कृति में स्वयं स्वीकार किया है - यों शौक में आकर लिख लिया करती हूँ लेकिन मेरी असल भाइन तो पढ़ाना ही है।"[1]

जिस समय मन्नू जी लेखन के क्षेत्र में उतर रही थी उनका परिचय राजेंद्र यादव से हुआ। राजेंद्र यादव उस समय हिन्दी साहित्य जगत में प्रतिष्ठित हो चुके थे, लेखन के माध्यम से हुआ यह परिचय कालान्तर में घनिष्ठता में बदल गया। परिवारवालों द्वारा आपत्ति उठाए जाने के बावजूद मन्नू जी का विवाह कलकत्ता में 1956 में राजेंद्र यादव के साथ हुआ। उस वक्त राजेंद्र यादव सिर्फ लेखन कार्य कर रहे थे। 1962 में मन्नू जी के यहाँ एक पुत्री ने जन्म लिया और 1964 में वह सपरिवार दिल्ली चली आ ई। यहाँ आकर उन्होंने दिल्ली विश्वविध्यालय के मिरांडी हाऊस में अध्यापन का कार्य शुरू कर दिया और राजेंद्र यादव ने अक्षर प्राकाशन प्रइवेट लिमिटेड की स्थापना की।

गृहस्थ जीवन की कुछ समस्याओं को मन्नू जी अनदेखा नहीं कर पायीं। वे स्वीकार करती हैं कि विवाह के उपरान्त कुछ ऐसे अवसरों का भी उन्हें सामना करना पड़ा जिसके कारण उनका व्यक्तित्व कई स्तरों पर विभाजित हुआ, लेकिन बिना किसी प्रकार के असंतुलन के मन्नू जी ने घर और बाहर में तादत्म्य बनाए रखा और आगे बढ़ती रहीं। विवाह को वे एक ऐसा बंधन मानती हैं जिसे आदमी स्वेच्छा से अपनाता है पर यदि उसे वह बंधन कष्टतर लगे तो उसके पास बच निकलने के बगैर मनुष्य संपूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकता। किन्तु वैवाहिक । जीवन का निर्वाह भी एक कला है, जो सीखनी ही पड़ती है। मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता होने के नाते विवाह संस्था को नकार नहीं सकते लेकिन विवाह के नाम पर होने वाले

---

[1] उपन्यासकार मन्नू भंड़ारी - माधुर वाजपेयी - पृ. 9

भद्देपन और शोषण को बर्दाश्त भी किया नहीं जा सकता। लेखिका की रचनाओं से भी यही स्वर ध्वनित होते हैं। जीवन की मूल आवश्यकता - आकर्षण और कठिनाइयों में उलझकर व्यक्ति विवाह को समस्या भी मानने लगा है। लेखिका के अनुसार - विवाह एक ऐसा बन्धन है जिसमें बंधा हुआ आदमी छटपटाए।"[1] जीवन के प्रति मन्नू जी के अपने मानदंड हैं। जिंदगी में अपने तमाम निजी अधिकार और कर्तव्य की टकराहट से उत्पन्न वैषम्य को नष्ट करने के लिए सामंजस्य को अधिक महत्व देती हैं। सूझ-बूझ और संतोष ही व्यक्ति को नितांत निजी तौर पर सुखी कर सकता है। अपने जीवन के संदर्भ में भी उनकी यही मान्यता रही है - जिंदगी अपनी शर्तों पर या अपने मन चाहे ढ़ंग से शायद ही किसी को मिलती हो जो नहीं मिला, उसी की कचोट से हम जीवन भर टूटते-बिखरते रह जाते हैं या जो कुछ भी हम उसी को भरपूर निचोड़ वसूल कर सार्थकता या उपलब्धि का सन्तोष भी पा सकते हैं। मैंने भरसक दूसरी तरह के रवैये को अपनाने की कोशिश की है।"[2] जीवन संबंधी यह मन्नू जी की अपनी ही मान्यता क्यों न रही हो, किन्तु सामाजिक दृष्टि से इन पंक्तियों की व्याख्या करने पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि जीने का सही ढंग मुश्किल से टूटना और बिखरना नहीं बल्कि अपने आत्मविश्वास को बनाए रखकर हर मुश्किल का सामना करना है।

इसी संदर्भ में आधुनिकता को वे एक ऐसा तर्क संगत और युक्त संगत दृष्टिकोण मानती हैं, जो मनुष्य के विचार, व्यवहार और कार्यों से प्रकट होता है। दूसरों के व्यक्तित्व को मान्यता देने और उसे समझने की कोशिश को वे आधुनिकता की अनिवार्य शर्त मानती हैं। आधुनिकता का यह रूप उनकी रचनाओं में दृष्टव्य है। लेखन के क्षेत्र में लेखिका एक जिम्मेदार हो जाती हैं कि वह अपनी रचनाओं से समस्याओं को, स्थितियों को हर प्रकार के पूर्वाग्रहों से रहित होकर उठाए और विचारपूर्वक परखे भी। बिना किसी प्रकार के तर्क के वे रूढ़ियों को स्वीकार करने के

---

[1] मन्नू भंडारी : व्यक्तित्व और कृतित्व - माधुरी बाजपेयी - पृ.21
[2] मन्नू भंडारी :व्यक्तित्व और कृतित्व - माधुरी बाजपेयी - पृ.21

पक्ष में कतई नहीं हैं। जहाँ रूढ़ियाँ हैं, अंधविश्वास है वहीं पर प्रहार करने वाला आधुनिक दृष्टिकोण भी किसी न किसी चरित्र के माध्यम से प्रकट हुआ है।

मन्नू जी के व्यक्तित्व में माता के पूर्णसमर्पित एवं पिता के दृढ़संकल्पी एवं अहंवादी संस्कारों के औचित्यपूर्ण रूप को समझना है। इसी संवेदनशील स्वभाव, न्यायोचित विवेक, निष्काम समाजसेवी मस्तिष्क ने एक समर्थ लेखिका बनने के लिए पृष्ठभूमि निर्मित की जिससे उनकी रचनाओं में अप्रतिबद्धता, समाजसापेक्षता, न्यायपक्षधरता आद्यन्त दृष्टिगत होती है। जुलूस निकालना, प्रभातफेरियों में सम्मिलित होना, स्वतंत्रा संग्राम में जूझने को कृतिसंकल्प होना, जनसमूह में भाषण देना, अत्याचार के विरुद्ध स्वरोद्घोष करना आदि गतिविधियाँ उनकी प्रारंभिक जिंदगी का खास हिस्सा रही हैं।

पराधीन भारत में नारी-शिक्षा की सुविधाएँ इतनी सहजता से उपलब्ध नहीं थीं। आज भी नारी-शिक्षा का प्रसार विशिष्ठ मध्यवर्ग के परिवारों तक सीमित है। जहाँ तक मन्नू जी की शिक्षा का प्रश्न है, उनकी शिक्षा और अध्ययन को अग्रसर करने का श्रेय उनके सुसंस्कृत और गरिमावान पिता को है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा अजमेर के शिक्षा-संस्थानों में संपन्न हुई। स्नातक स्तर की उपाधि 1949 में कलकत्ता विश्वविध्यालय से प्राप्त की। तदन्तर थोड़े अन्तराल के पश्चात् बनारस विश्वविध्यालय से स्नातकोत्तर स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की।

मन्नू जी को जब से अस्मिता-बोध हुआ तब से स्वयं को पुस्तकों, पत्रिकाओं, राजनीतिक-सामाजिक चर्चाओं के बीच पाया। इससे उनमें एक दृष्टि-आलोक क्षेत्र में अवतरित होने से पूर्व ही स्फुरित हो चुकी था, जो उनकी रचनाओं में आद्यन्त महसूस जा सकता है। यही दृष्टिचिंतन उनकी कहानी की अभिशप्त उपलब्धि है और यही उनकी लेखकीय निधि है।

मन्नू जी के साहित्य क्षेत्र में पदार्पण का श्रेय उनकी बहुचर्चित कहानी ‘मैं हार गई’ का है जिसका प्रकाशन कहानी पत्रिका में हुआ था। उन्हें लेखिका के रूप में

प्रस्थापित करने का श्रेय इसी पत्रिका के संपादक श्री भैरव प्रसाद गुप्त द्वारा प्रत्येक कहानी पर शैल्पिक सूझ, सांकेतिक अर्थवत्ता एवं कथाक्रम की प्रभावोन्वित से संबद्ध टिप्पणी के महत्व को लेखिका आज भी स्वीकारती हैं।

1961 का वर्ष इनके गृहस्थ जीवन के लिए वरद सिद्ध हुआ जब उनकी एकमात्र पुत्री के जन्म से इनके पारिवारिक जीवन को वास्तविक रूप में पूर्णता मिली। ज्ञानोदय से धारावाहिक रूप में एक इंच मुस्कान का प्रकाशन भी इसी वर्ष की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 1964 में कलकत्ता से दिल्ली आकर बसना और अक्षर प्रकाशन की स्थापना होना इनके लेखकीय जीवन को अग्रसर करने में महत्वपूर्ण निर्वाहक हैं।

वैवाहिक जीवन के क्षणों में सुख-दुख, हर्ष-विषाद, उत्थान-पतन की भाव-भूमियों से गुजरते हुए इस दम्पति को साहित्यिक मित्रों और परिचितों के व्यंग्यबाणों को सहना पड़ा है, लेकिन जिंदगी की तल्खियों, तुर्शियों, कड़ुवाहटों को भोगते हुए उन्होंने गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों को साहसपूर्वक ढोया है। इसका श्रेय दोनों पति-पत्नी को ही है कि उन्होंने घोर विपरीत स्थितियों में भी सौम्य, समझौतावादी मानसिकता के बल पर अपने सुचारु पारिवारिक जीवन से इर्द-गिर्द को स्तब्ध कर दिया।

मन्नू भंडारी जी के लेखन में श्री यादव जी के संपर्क, सहयोग से विशेष परिष्कार हुआ। वैचारिकता के लिए जिस स्पष्टता की और रचना-कर्म के लिए जिस भाषागत सजगता की अपेक्षा होती है, उसकी उपलब्धि के मूल में यादव जी का दिशादान ही सर्वाधिक उत्तरदायी है। मन्नू जी के व्यक्तित्व में एक लेखिका विद्यमान अवश्य थी जो पंख पसार तमाम आकाश को नापना चाहती थी, हर आदमी के दर्द की अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील थी, पर उसे अपेक्षा थी निर्देशन की, सही व गलत के मध्य विभाजक-रेखा परखने की और इस निर्देशन, दिशादान, निरीक्षण -विवेक का एहसास हुआ यादव जी के माध्यम से। यादव जी के संपर्क में जो इष्टीम्त्र, लेखक, देश प्रेमिओं उनके साथ संभाषण, वाद-विवाद, वैचैरिक आदान-प्रदान से मन्नू जी पूर्ण

परिमाण में एक चिंतनशील लेखिका के रूप में हिन्दी साहित्याकोश में उभरीं।

स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में जिन महिला कथाकारों ने जिंदगी की विद्रूपताओं, विषमताओं, विकृतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति दी उनमें कथालेखिका मन्नू भंजडारी जी का नाम सर्वाधिक चर्चित है। सहज सामान्य भाषा में निश्छल, बेबाक अभिव्यक्ति से समाजसापेक्ष विषयों के शाश्वत संदर्भों में प्रस्तुतीकरण और नारी-मन की पीड़ा के अंकन से वे हिन्दी पाठकों में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। उनकी रचनाओं में विषय-वैविध्य के साथ-साथ उत्तरोत्तर सृजनात्मक विकास विद्यमान है। इसके लिए उनके कहानी-संग्रहों का संक्षिप्त विवेचन अपेक्षित होगा।

5.1.मन्नू भंडारी का साहित्य परिचय

मन्नू भंडारी जी के समग्र साहित्य को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते है –

5.1.1.कहानी संग्रह

1.मैं हार गई

2.एक प्लेट सैलाब

3.यही सच है

4.तीन निगाहों की तसवीर

5.त्रिशंकु

6.मेरी प्रिय कहानियाँ

7. ऑखों देखा झूठ

8.अकेली (राजेन्द यादव के साथ)

5.1.2.उपन्यास

1.एक इंच मुस्कान (1961) (राजेंद्र यादव के साथ)

2.आपका बंटी (1971)

3.महाभोज

4.स्वामी (शरत चन्द्र कहानी पर आधारित)

5.कलवा

5.1.3.नाटक

1.बिना दीवारों के घर

2.महाभोज

5.2.मन्नू भण्डारी के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

5.2.1.बिना दीवारों के घर

मन्नू भण्डारी जी की कृति 'बिना दीवारों के घर' में एक ऐसे परिवार की समस्याओं का चित्रण किया गया है जिसमें पति अजित और पत्नी शोभा भी नौकरी करते हैं। उनके दाम्पत्य जीवन की विषमता एवं तनावपूर्ण स्थिति जिस गार्हस्थिक अव्यवस्था, बिखराव और पारस्परिक संबंधों में तनाव को जन्म देती है, उससे घर की संज्ञा झूठला जाती है। घर की कोई धारणा उनके मन में विद्यमान नहीं रहती है जो उन्हे परस्पर जोड़ सके। अतः उन्हें ऐसा लगता है कि वे एक दीवारों के घर में जीने के लिए विवश हैं। वहाँ परस्पर सौहार्द, प्रेम, सहानुभूति और विश्वास उभरने का सर्वथा अभाव लक्षित है। अजित और शोभा की समस्या उस आधुनिक दम्पति की समस्या है जो एक दूसरे के स्वतंत्र व्यक्तित्व को सह नहीं पाते। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के कारण वे दोनों ही यह अनुभव करते हैं कि उन दोनों की ही भूमिकाएँ महत्वपूर्ण हैं। किन्तु उनकी नौकरी स्वयं अपने में एक विडम्बना है क्योंकि केवल नौकरी करने से घर नहीं चलता। घर चलाने के लिए स्त्री-पुरुष का घर के काम में हाथ बटाना आवश्यक है। अजित एक पुरुष होने के अहंकार में इस सत्य को नकार देता है और कहता है कि - कौन कहता है औरत से कि वह नौकरी करे, छोड़ दे नौकरी।"[1] किन्तु वह यह नहीं समझता कि उसकी पत्नी शोभा के लिए नौकरी केवल पैसा कमाने और घर चलाने का साधन ही नहीं है अपितु उसकी

[1] बिना दीवारों के घर पृ.26

आन्तरिक आवश्यकताओं एवं सक्षमताओं के साथ भी जुड़ी हुई है। नारी की आकांक्षा और पुरुष द्वारा उसके माध्यम से घर की प्राप्ति ऐसे असंतोष को जन्म देती है जिससे पति-पत्नी दोनों गिर जाते हैं। नारी की आकांक्षा उसे ऊपर की ओर ले जाती है और घर की जमीन से उसके पाँव धीरे-धीरे उखड़ते जाते हैं। शोभा शीघ्र ही इस सत्य को पा लेती है - लगता है जैसे जितना-जितना ऊपर से बढ़ती जा रही हूँ भीतर से उतनी ही मेरी जड़े कटती जा रही हैं, मैं अपनी धरती से उखड़ती जा रही हूँ।"[1] नारी और पुरुष के दाम्पत्य जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि अजित और शोभा की तरह परस्पर मतभेद पूर्ण संबंधों को लेकर घर की चारदीवारी के अंदर जीना जितना कठिन है, उससे निकल कर जीना उससे भी कठिन हो जाता है। इनमें से प्रथम स्थिति का उदाहरण शोभा है और दूसरी का मीना। मीना घर की चारदीवारी से बाहर रहने के अनुभव को अत्यंत मार्मिक शब्दों में प्रकट करती हुई कहती है कि - घर छोड़कर ही कोई औरत क्या उस घर को भूल सकती है जिसे वह अपने हाथों से बनाती है, संवारती है।"[2] नारी-जीवन की यह त्रासदी है कि उसके लिए पुरुष के साथ जीना जितना कठिन है उससे अधिक उसके बिना भी जीना कठिन है। उस दृष्टि से शोभा और मीना दोनों के जीवन की इल भयंकर त्रासदी को झेलती है और नाटक में यही त्रासदी मुख्य है उसका चरित्र तो उसका उपादान मात्र।

5.2.2.महाभोज

'महाभोज' (1979) मन्नू जी का दूसरा स्वतंत्र उपन्यास है। इस उपन्यास का कथानक सामाजिक ही है किन्तु परिवेश राजनीतिक होने की वजह से इसे राजनैतिक उपन्यास कहना अधिक उचित होगा। इस उपन्यास पर ही आधारित नाटक महाभोज है। इस नाटक में लेखिका ने गाँवों में व्याप्त सामंती सभ्यता का साम्राज्य और उसके

---

[1] बिना दीवारों के घर पृ.12

[2] बिना दीवारों के घर पृ-26

द्वारा किसान मजदूर वर्ग पर किए जाने वाले अत्याचार तथा तत्कालीन शासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण बखूबी किया है। इस प्रकार यह नाटक समकालीन सामाजिक कथात्मक राजनीतिक परिवेश पर आधारित यथार्थवादी नाटक है।

नाटक सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों की विसंगतियों का चित्रण भी करता है और यथार्थ स्थिति के विरुद्ध विद्रोह की जरूरत का संकेत भी है। परन्तु नाट्य निर्देशिका अमला अलाना के सहयोग से किए इस रूपांतरण के अंत के संबंध में लेखिका का यह विचार सही प्रतीत होता है कि नाटक की स्थितियों पर सूत्रधार का शब्दहीन संवाद इस बात को तो स्पष्ट कर देता है कि स्थितियाँ अब कहने-सुनने से परे चली गई हैं लेकिन इस उपन्यास में विद्रोह और संघर्ष का जिस निरन्तरता की ओर संकेत है, वह कहीं न कहीं धुँधला होकर टूटता सा लगता है। बेहतर तो यह होता है कि महेश किसी प्रकार बिन्दी के संघर्ष को आगे बढ़ाने वाली कड़ी के रूप में उभरकर आता और इस विश्वास की पुष्ठि करता है कि विद्रोह की आग दबाई तो जा सकती है, पूरी तरह कुचली नहीं जा सकती।

इस प्रकार मन्नू जी की तमाम रचनाएँ उनकी अपनी मान्यताओं का वहन करती चलती हैं। उनके साहित्य में स्त्री चरित्र को प्रमुखता प्राप्त हुई है। उनमें स्त्री का एक नया ही रूप उभर कर सामने आया है। सामाजिकता के साथ-साथ उनकी रचनाओं में विवाह और जीवन संबंधी जटिलताओं को लेकर उनका अपना दृष्टिकोण लेखकीय ईमानदारी के साथ व्यक्त हुआ है। जिसे उन्होनें अपनी रचनाओं में विविध रूपों में निरूपित किया है। मन्नू जी का व्यक्तित्व जीवन संबंधी उनके विचार और उनका परिवेश उनकी रचनाओं की प्रामाणिकता को उजागर करता है।

6. मृदुला गर्ग : व्यक्ति एवं परिवेश

सातवें दशक के बाद सक्रिय रूप से हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करने वाली मृदुला गर्ग आज की एक बहुचर्चित लेखिका हैं। एक लेखिका के रूप में

अपने को स्थापित करने के लिए उन्हें काफ़ी संघर्ष करना पड़ा है। एक व्यक्ति (स्त्री) तथा एक लेखिका इन दोनों रूपों में अनेक उतार-चढ़ाव की स्थितियों से गुज़रते हुए उन्होंने अपनी मंज़िल पाने की कोशिश की है। मृदुला गर्ग जी के लेखकीय व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी परिवार की भूमिका तथा परिवेशगत संस्कार प्रमुख रहें हैं। अतः मृदुला गर्ग के सृजन को जानने से पहले उनके जीवन को जानना ज़रूरी है और उनके व्यक्तित्व से परिचित होना भी।

वैसे तो रचनाकार की प्रत्येक कृति में उनका व्यक्तित्व प्रतिफलित होता है। उसके साहित्य-सृजन को व्यक्तित्व से अलग करके मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। लेखक के व्यक्तित्व का निर्माण उसके आस-पास के परिवेश और संस्कारों से होता है। अतः मृदुला गर्ग की रचनाओं में झाँकनेवाले निर्भीक, स्वतंत्र विचारों वाले, व्यक्तित्व को जानने-परखने केलिए हमें उनके परिवेश तथा उनकी ज़िंदगी को जानना आवश्यक है।

मृदुला गर्ग के जीवन से संबंधित तथ्यपरक जानकारी के अभाव में हमें उनके द्वारा लिखी गयी आत्म कथाओं, लेखों, संस्मरणों का आधार ग्रहण करना पड़ा है तथा उनके साथ उनके दिल्ली स्थित निवास 'आशामृग' पर उनसे लिए गए व्यक्तिगत साक्षात्कार के द्वारा भी अत्यधिक उपयोगी सामग्री प्राप्त हो सकी है। अतः इन सबको प्रामाणिक मानकर उनके जीवन को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है।

मृदुला जी का जन्म 25 अक्तूबर 1938 को सुप्रसिद्ध शहर कलकत्ता के एक अमीर परिवार में हुआ। तीन चार वर्ष की आयु में ही उनके पिता जी श्री. बी.पी. जैन का तबादला दिल्ली होने के कारण मृदुला गर्ग जी की पूरी पढ़ाई दिल्ली में हुई। बचपन में ख़राब सेहत के कारण तीन साल तक वे स्कूल नहीं जा पाई और घर पर ही रहकर अपनी पढ़ाई उन्होंने पूरी की। कुशाग्र बुद्धि वाली मेधावी छात्र के रूप में मृदुला जी पढ़ाई में हमेशा अच्छी प्रगति करती रहीं और तीन साल स्कूल न जाने के बावजूद भी साल बरबाद नहीं हुए और ठीक समय पर वे स्कूल से पास हो गईं।

बचपन से ही एकांत प्रिय मृदुला गर्ग जी को साहित्य पढ़ने का शौक था। अतः छोटी सी उम्र में ही उन्होंने हिन्दी व अँग्रेज़ी दोनों भाषाओं का मौलिक व अनूदित साहित्य पढ़ा। कई गहन लेखकों की रचनाएँ भी उन्होंने बचपन में ही पढ़ ली थी परिणामतः साहित्यिक संस्कार उन पर होते गए। साहित्य उनकी चेतना में बैठने लगा और बड़े नामों का डर भी मन से मिट गया।

बचपन में ही एक कहानी पढ़ी थी –‘through the looking glass’ जिससे उन्होंने यह बोध ग्रहण किया था कि - दौड़ोगे नहीं तो ठौर पर खड़े नहीं रह पाओगे और एम.ए अर्थ शास्त्र करते हुए डॉ. के एन. राज का यह जुमला तेज नहीं दौड़ोगे तो पीछ धकेल दिये जाओगे उनके मानस पर गहरा प्रभाव डालने लगा। आगे समय गुजरता गया। उन्होंने दिल्ली स्कूल ऑफ़ इ कानामिक्स अर्थशास्त्र में एम.ए किया और सन् 1960 से 1963 तक दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज और जानकीदेवी कॉलेज में प्राध्यापिका के रूप में अध्यापन का काम किया। पढ़ाई के अलावा अभिनय में विशेष रुचि होने के कारण लेखिका ने स्कूली दिनों में अनेक नाटकों में अभिनव करके पुरस्कार प्राप्त किए और मंच तथा अभिनय के माध्यम से ही किताबों से इतर भी उनका एक जीवन बना। अपने एकाकी स्वभाव और ख़राब सेहत के कारण उनका मित्र परिवार नहीं के बराबर था। अभिनय और वादविवाद स्पर्धाओं द्वारा उनका एक सार्वजनिक जीवन भी निर्मित हुआ।

मृदुला जी के लेखकीय व्यक्तित्व के निर्माण में उनके पिता जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पिता की बौद्धिकता और विचारों के प्रभाव स्वरूप भी मृदुला जी में आत्मावलोकन की प्रवृत्ति का निर्माण हुआ। लेखिका का बचपन माँ के संरक्षण तथा लाडप्यार के अभाव से पीड़ित तो रहा लेकन पिता ने उन्हें माँ के वात्सल्य और ममता से पालित-पोषित किया। अपनी माँ के बारे में वे स्पष्ट रूप से कहती हैं - मेरी माता अपने समय की दूसरी स्त्रियों से भिन्न थीं। उनको खाना बनाने व अपने बच्चों के पालन- पोषण में कोई रुचि नहीं थी। उन्होंने न कभी खाना बनाया और न ही कभी

अपने बच्चों को दुलराया। परंतु किसी ने कभी भी उनको बुरी पत्नी या बुरी माता नहीं कहा। मेरे पिता ने हम सबकी बहुत अच्छी देखभाल की और हमने अपने माता की देख-रेख की जो कि एक सुंदर कोमल हृदयवली परंतु लगभग अपंग स्त्री थीं।"[1]

मृदुला गर्ग जी की माँ मंजुल जी अक्सर बीमार रहती थीं इसलिए दस बारह वर्ष की उम्र से ही मृदुला जी और तीसरे नंबर की चित्रा जी माँ की सेवाटेहल में लग गये थे। बीमार व्यक्ति की सेवा करना न पसंद होने पर भी मृदुला जी को ही बीमार माँ की तिमारदारी का काम करना पड़ता था। इस प्रकार बचपन की मौज मस्ती के दिन मृदुला जी ने माँ की सेवा तथा साहित्य पठन में गुज़ारा। अपनी माँ की सुन्दरता तथा साहित्य प्रेम की तारीफ मृदुला जी करती हैं। बकौल मृदुला जी उनकी माँ शरतचन्द्र नायिकानुमा थीं। वे गजब की साहित्य प्रेमी थी। हिन्दी अँग्रेजी के अलावा उर्दू में भी लेखन लिखती थी हलांकि उनकी पढ़ई सिर्फ नवीं कक्षा तक ही हुई थी।

तीन चार वर्ष की आयु में ही उन्हें अपने पिता जी के तबादले के कारण कलकत्ता छोड दिल्ली आना पड़ा था और उनका अनुभव संसार विस्तृत होता गया। देश के अलग-अलग क्षेत्रों की जिन्दगी और समस्याओं को समझने का अवसर मृदुला जी को मिला। वे अपने पिता जी की उदारता, स्नेहशीलता तथा वैचारिकता की मुक्त कंठ से प्रशंसा करती हैं। इनके पिता खुले विचारों के होने के कारण किसी भी पारिवारिक सदस्य पर उन्होंने दबाव नहीं डाला था। लड़का और लड़की दोनों को समान दृष्टि से देखने वाले पिता जी ने लड़कियों पर कोई बंधन या पाबंदी नहीं डाली थी। मृदुला जी की चार बहनें और एक भाई हैं। उनकी बहनें व भाई साहित्य पठन व सृजन में रुचि रखते हैं।

---

[1] मृदुला गर्ग का कथा साहित्य - तारा अग्रवाल - पृ. 12

अपनी युवावस्था में किसी लड़के के साथ प्रेम में न पड़ते हुए उन्होंने बकाइदा परंपरागत रूप से विवाह किया। अपने स्वयं के इश्क के चक्कर से दूर रहने के बारे में वे निःसंकोच रूप से बताती हैं -बकौल, जुग्गी चाचा और मैं अपना सिर हमेशा किताबों में घुसेड़ रखती थीं इसलिए मुझे देख कर किसी लड़के में सोहदा बनने की तड़प नहीं उठने वाली थी ।"[1]

मृदुला जी का विवाह सन् 1963 में श्री आनंद प्रकाश के साथ हुआ। अपने विवाह के बारे में मृदुला जी कहती हैं कि - यद्यपि मेरे स्त्रियों कि अपेक्षा पुरुष मित्र अधिक थे फिर भी महिला विद्यालयीन स्तर पर मेरा किसी से प्रेम नहीं हुआ। वस्तुतः मैं ने अपने अधिकतर सहपाठियों को अपरपक्व बुद्धि पाया। मेरा विवाह माता पिता के द्वारा तय किया गया था फिर भी विवाहपूर्व हम एक-दूसरे को पूरी तरह जान गए थे। हम प्रेम विवाह की संज्ञा न देकर आपसी पसंद का विवाह कहेंगे।"[2] आनंद प्रकाश जी का अभियन्ता हैं विवाह के पाश्चात मदुला जी ने अपनी नौकरी छोड दी। सन्1960 से लेकर 1963 तक तीन वर्षों तक उन्होंने अध्यापन कार्य किया। नौकरी छोड़ने का प्रमुख कारण था कि - इन्होंने हमेशा अपने पारिवारिक जीवन को प्राथमिकता दी। घर गृहस्थी में ताल-मेल एवं सुचारूपन से निर्वाहन हेतु इन्होंने अपनी नौकरी का त्याग करने में तनिक भी संकोच नहीं किया। इनकी प्रबल धारणा रही है कि ममता एवं पारिवारिक कीमत पर नारी-नौकरी अर्थहीन है। और संबंधों में कटुता एवं दूरी का कारण बनती है।"[3] अतः विवाह के बाद वे दिल्ली छोड़कर अपने पति के साथ क्रमशः डालमिया नगर (बिहार) दुर्गा पूरा (बंगाल) बागल कोट (कर्नाटका) जैसे औद्योगिक तथा छोटे कस्बों में सन् 1963 से 1971 तक रही। तबतक लेखन कार्य नहीं किया।

---

[1] मृदुला गर्ग का कथा साहित्य-तारा अग्रवाल पृ.16

[2] मृदुला गर्ग का कथा साहित्य-तारा अग्रवाल पृ.17

[3] मृदुला गर्ग का कथा साहित्य-तारा अग्रवाल पृ.17

नाटक निर्देशन और अभिनय में विशेष रुचि रखनेवाली मृदुला गर्ग जी ने 1963 से 1971 तक कई नाटकों में अभिनय करके अपनी संवेदनशीलता के कारण अनेक मुसीबतों में फंसे लोगों के लिए पैसा इक्कट्टा करके उनकी मदद की गैर व्यावसायिक ढ़ंग से। परन्तु 1970 में सृजनात्मकता की ओर उन्मुख होकर उन्होंने नाटक मंचन भी छोड़ दिया। उसका कारण यह था कि लेखन और नाटक दोनों करने में बच्चों की देखभाल के लिए समय कम बचता था। दूसरा यह कि लेखन में अंततः उन्हें रचनात्मक अभिव्यक्ति का वह माध्यम मिल गया जो तबतक खोजती रही थी। अतः अपने वैवाहिक जीवन के प्रति समर्पित लेखिका मृदुला गर्ग ने अपने पती व बच्चों की खातिर पहले नौकरी छोडी फिर नाट्याभिनय से हटकर लेखन में अपना मन लगाया और घर में लेखन कार्य करते हुए बच्चों की परवरिश तथा पति की देखभाल करती रहीं।

मृदुला जी अपने परिवार के साथ बहुत खुश हैं। उनके दो पुत्र है - शशांक विक्रम और आशीश विक्रम। दोनों का विवाह हो चुका है। उनकी पहली बहु का नाम है - अपर्णा शशांक विक्रम और दूसरी बहु का नाम है - वंदिता आशीश विक्रम। उनकी एक पौत्री है - श्रृंगी तथा पौत्र है मृगांक। एक आदर्श गृहिणी के रूप में लेखिका अपने परिवार के हर सदस्य की चिंता करती हैं। इस संदर्भ में सूर्यबाला जी का कहना है कि - आम धारणा है कि उच्च सफल लेखक सफल परिवारी नहीं हुआ करता। परंतु यह देखा गया है कि कई लेखिकाएँ सफल परिवारी भी होती हैं।"[1]

आखिर लेखिकाएँ भी प्रथमतः इनसान ही होती हैं। सुख-दुख जरूरतें उनकी अपनी होती हैं और ऐसे में अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें कई तूफान हलचलों का सामना करना पड़ता है। परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हुए अपने लेखकीय अस्तित्व की सुरक्षा के लिए एक लेखिका को अंगारों पर चलना होता है और सफल पारिवारिकता की अग्नि परिक्षा देनी होती है। इस संदर्भ में

---

[1] मृदुला गर्ग का कथा साहित्य-तारा अग्रवाल पृ.18

मृदुला गर्ग जी का उदाहरण देते हुए कहा जा सकता है कि उन्होंने परिवार और लेखन दोनों क्षेत्रों में सामंजस्य और संतुलन बनाए रखा है। कई बार तो उन्हें अपनी पारिवारिक कठिनाईयों के कारण सृजन को रोकना भी पड़ा है पर कठिनाई दूर होते ही फिर सृजन की धारा प्रवाहित। अपनी इसी दशा का जिक्र करते हुए वे अपने एक लेख 'मैं और मेरा समय' में 'जादू का कालीन' का निर्माण उन्होंने किन परिस्थितियों में किया उसका उल्लेख करती हैं। सन् 1985 में जब आर्थिक दबाओं की वजह से उनके पति को अपना दफ्तर घर में ही खोलना पड़ा था, दिन भर दफ्तर में आने-जानेवालों की रेल-पेल। ऐसी दशा में एकांत तो दूर की बात आधा घंटा बैठकर लिखना भी मुश्किल था।

अपने नाटक 'जादू का कालीन' की निर्माण स्थिति पर प्रकाश डालते हुए वे लिखती हैं कि - 1988-89 में मैंने एक नाटक 'जादू का कालीन' जरूर लिखा था। बड़ी मजेदार स्थिति में किसी कारण दफ्तर की दिन की छुट्टियाँ थी, शायद मेरे पति को बाहर जाना पड़ा था और बकी लोग गप्पे मार कर गये थे। तो मैंने बाहर पाठक पर ताला मारा खुद को कमरे में बंद किया और दो दिन तीन रात तक मुसलसल लिख कर नाटक पूरा कर डाला। चाय बनाकर थरमस में रख ली। जब लिखने का काम रोकना जरूरी लगता डबल रोटी उसमें भिगो कर खा लेती थी। तो नाटक लिखा जाता था।"[1] इस प्रकार मृदुला जी ने पारिवारिक अड़चनों का सामना करते हुए अपनी साहित्यिक आत्मा को जीवित रखा, सृजन प्रक्रिया जारी रखी। अपने दाम्पत्य संबंधों को आम पति-पत्नी की तरह मानते हुए वे कहती हैं कि - हम पति-पत्नी एक दूसरे के काम में खामख्वाह टाँग नहीं अड़ाते हाँ एक-दूसरे की मसरुफियत और आदतों से समय-समय पर किसी भी पति-पत्नी की तरह कुढ़-चिढ़ भी लेते हैं। सच तो यह है कि जिन्दगी का मजा ही टकराने में है और साथ रहने का मतलब ही टकराना है। हमारे यहाँ तो वैसे भी हर किसी को जो वह सोचता है

[1] मृदुला गर्ग का कथा साहित्य-तारा अग्रवाल पृ.19

कहने की छूट है और जो वह वाकई करना चाहता है करने की। ऐसे में बहस भी आवश्यंभावी है और टकराहट भी। टकराते रहते हैं और जिन्दगी का आनंद लेते हैं।

अपने पति को अपनी सफलता का श्रेय देते हुए लेखिका का यह कथन है कि - हर लेखिका के पीछे कोई नहीं तो एक पुरुष अवश्य रहता है जिसके कारण नहीं, जिसके बावजूद वह करती है, मैं अपवाद नहीं हूँ।"[1]

किसी रचनाकार का रचना तथा रचनाधर्मिता से अवगत होने के लिए उसके व्यक्तित्व को जानना आवश्यक होता है। आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्तित्व की धनी श्रीमती मृदुला गर्ग जी का छोटा कद, गोरा रंग, छोटे काले बाल, बड़ी-बड़ी आँखे, गोल चेहरे पर मंद मुस्कान उनके भव्य व्यक्तित्व की पहचान है। मृदुभाषी, सरल, स्नेहमयी तथा मिलनसार मृदुला जी की बातों में सामने वालों को आकर्षित करने का जादू है। छहररी काया, सलीकेदार रहन-सहन, कोमल एवं मृदु व्यवहार, दृढ़ विचार ये सारी बातें उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करती हैं। उनके सुदर्शन तथा गरिमामय व्यक्ति को साकार करती हुई शीलप्रभा वर्मा कहती हैं - श्रीमती मृदुला गर्ग सुदर्शन है। उनका साहित्य भी तदानुरूप ही सुदर्शन है। श्रीमती गर्ग बोल्ड़ हैं उनका लेखन भी बोल्ड हैं। सहानुभूति न वे चाहती हैं न ही बाँटती हैं। स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा है। वे सत्य के एक अंश को लेकर उसे ग्लोरीफाई नहीं करती प्रत्युत उसको सम्पूर्णता में लेती हैं। जीवन में दुराव वे जानती नहीं और लेखन को भी उन्होनें उसी के अनुरूप ढ़ाला है। उनकी जैविक तृष्णाओं की सहज, स्पष्ट अभिव्यक्ति भी अपने प्रति बोला गया सच है। एक सूक्ष्म पारदर्शी वेदना धारा उनके लेखन और व्यक्तित्व में बहती हुई दिखाई देती है वह कभी हंस के नीचे छलकती है कभी शुद्ध त्रासदी बनकर उभरती है।"[2]

---

[1] मृदुला गर्ग का कथा साहित्य-तारा अग्रवाल पृ.19
[2] मृदुला गर्ग का कथा साहित्य-तारा अग्रवाल पृ. 21

आन्तरिक व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र के गुणों और विशिष्टताओं से जाना जाता है। व्यक्ति के आन्तरिक व बाह्य दोनों प्रकार की विशेषताओं से व्यक्ति का संपूर्ण व्यक्तित्व बनता है, ढलता है। अतः व्यक्तित्व को संपूर्णता में जानने के लिए उसके अन्तर्गुणों से परिचित होना भी जरूरी है। मृदुला गर्ग बचपन से ही जिज्ञासु, शर्मीली और अपने में सीमित रहने वाली लड़की होने के कारण उनकी कोई सहेली नहीं थी उनका अधिकतर समय अध्ययन में ही बीतता था। बचपन से ही निरन्तर अध्ययन, साहित्य-पठन आदि के कारण ही उनके ज्ञान का क्षितिज विस्तृत हुआ। बचपन से ही मेधावी छात्र होने के कारण एम.ए अर्थशास्त्र की परीक्षा में उन्हें योग्यता-छात्रवृत्ति भी प्राप्त हुई थी। महाविद्यालयीन जीवन तक आते-आते उनका झेंपू, संकोची, लज्जालू स्वभाव समाप्त हो गया था तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्व बहिर्मुखी होने लगा था और नाटकों में तथा वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेकर वे अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने लगी थीं।

आठवें दशक में एक सशक्त कथाकार के रूप में अपनी पहचान बनाने वाली श्रीमती मृदुला गर्ग न केवल एक कथाकार हैं बल्कि एक समर्थ निबंधकार और नाटककार भी हैं। कहानियों व उपन्यासों की रचना के अलावा उन्होनें दो-तीन नाटक, दो निबंध-संग्रह, संस्मरण आदि लिखकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है तथा अपनी साहित्यिक ऊर्जा और निरंतरता को बनाए रखा है। परन्तु मृदुला जी की कोई काव्यकृति और आत्मकथात्मक कृति अभी तक प्रकाश में नहीं आयी है।

हिन्दी भाषा के साथ ही साथ अंग्रेजी भाषा पर भी समान अधिकार होने के कारण उन्होंने अनुवाद का काम भी किया है और स्वयं की कुछ कहानियों के भी अंग्रेजी अनुवाद किये हैं। इसी प्रकार एक आस्ट्रियन लेखिका 'विकी बाम' के अंग्रेजी उपन्यास 'MAN NEVER KNOW' का हिन्दी में अनुवाद भी उनके द्वारा हुआ है। 'योगेश गुप्ता' की कहानियों को भी अंग्रेजी में अनूदित करने का कार्य मृदुला जी ने किया है। उनका अनूदित साहित्य भी काफी मात्रा में है। अतः साहित्य सर्जक के

अतिरिक्त वे एक कुशल अनुवादक भी हैं।

अनुवाद पत्रिका के अलावा श्रीमती गर्ग ने 'रविवार' पत्रिका में परिवार नामक कॉलम या स्तम्भ लेखन भी किया है एक कॉलमिस्ट के रूप में। जो लेख आगे चलकर उनके 'रंग-ढंग' नामक कृति में संकलित किए गए। पर्यावरण के ह्रास का बच्चों पर प्रभाव शीर्षक शोधकार्य भी उनके द्वारा हुआ है।

मृदुला जी के साहित्य की लोकप्रियता का प्रमाण व उपन्यास का अन्य भाषाओं अंग्रेजी, जर्मन, चेक, रूस आदि में भी अनुवाद हुआ है। उनकी अनेक रचनात्मक कृतियों पर विभिन्न पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। मृदुला जी के समग्र साहित्य को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं -

6.1.मृदुला गर्ग का साहित्य परिचय

मृदुला गर्ग जी के समग्र साहित्य को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं -

6.1.1.कथा साहित्य

1.कितनी कैदें

2.टुकड़ा-टुकड़ा आदमी

3.डेफोडिल जल रहें हैं

4.ग्लेशियर से

5.उर्फ सैम

6.दुनिया का कायदा

7.शहर के नाम

8.चर्चित कहानियाँ

9.समागम

6.1.2.उपन्यास

1. उसके हिस्से की धूप
2. वंशज
3. चितकोबरा
4. अनित्य
5. मैं और मैं
6. कठगुलाब

6.1.3.नाटक

1. एक और अजनबी
2. जादू का कालीन

6.1.4.लेख संग्रह

1. रंग-ढंग
2. चुकते नहीं सवाल

6.1.5.संस्मरण

1. दीदी की याद में (साहित्य अमृत, सितंबर 1998)
2. एक महा आख्यान लघु उपन्यास सा निबट गया (हंस, सितंबर 1998)

6.1.6.अनुवाद

1. उसके हिस्से की धूप स्वयं के इस उपन्यास का A touch of sun के रूप में स्वयं द्वारा ही अंग्रेजी में अनुवाद।
2. डफोडिल जल रहे हैं की हिन्दी कहानियों का अनुवाद स्वयं द्वारा अंग्रेजी में Efodils fire शीर्षक से।
3. योगेश गुप्ता की कहानियों का अनुवाद अंग्रेजी में Sky Scraper शीर्षक से।
4. खुद की अलगी सुबह कहानी का अनुवाद अंग्रेजी में स्वयं द्वारा the morning after नाम से।
5. एक तिकोना दायरा - ऑस्ट्रियन लेखिका विकी बाम के सुप्रसिद्ध उपन्यास

Man never Know का अनुवाद मृदुला गर्ग जी द्वारा हिन्दी अनुवाद।

6. इजेबेल एंडूस के एकांकी Bride Form Hills का हिन्दी रूपांतरण स्वयं द्वारा दुलहित एक पहाड़ की।

6.1.7. मृदुला जी की पुरस्कृत रचनाएँ

कोई रचना पुरस्कृत होने पर ही रचनाकार की लौकिक ख्याति तथा कीर्ति और अधिक बढ़ जाती है। अतः पुरस्कार रचनाकार के जीवन में काफी मायने रखते हैं। मृदुला जी की रचनाएँ काफी चर्चित और विवादास्पद होने के उपरान्त भी पुरस्कृत हुई हैं यह विशेष बात है।

1. 'कितने कैद' कहानी को कहानी पत्रिका द्वारा सन् 1972 में सर्वश्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार।
2. पहला उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' मध्यप्रदेश साहित्य परिषद द्वारा महाराजा वीरसिंह पुरस्कार से सन् 1975 में पुरस्कृत।
3. 'एक और अजनबी' नाटक को सन् 1978 में आकाशवाणी द्वारा पुरस्कार।
4. 'जादू का कालीन' (बाल नाटक) मध्यप्रदेश साहित्य परिषद द्वारा सेठ गोविंददास पुरस्कार सन् 1993 में।
5. पूरे साहित्य के आधार पर सन् 1988-89 का हिन्दी अकादमी का साहित्यकार सम्मान ।

6.1.8. मृदुला गर्ग के साहित्य का अन्य भाषाओं में अनुवाद

1. उनके 'चितकोबरा' उपन्यास का सन् 1987 में जर्मन भाषा में अनुवाद Die Gefleckte Cobra शीर्षक से।
2. 'अवकाश' कहानी 1973 में अंग्रेजी में अनूदित होकर Times Of India के भारतीय भाषा कहानी विशेषांक में छपी फिर सन् 1978 में जर्मन में अनूदित

होकर भारतीय कहानियों के संकलन में।

3. 'विनाशदूत' कहानी का अंग्रेजी अनुवाद अपरीका में छपा तथा हाल ही में इसका जर्मन भाषा में भी अनुवाद हुआ है।

6.2. मृदुला गर्ग के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

6.2.1.एक और अजनबी

'एक और अजनबी'(1978) मृदुला गर्ग का यह विचारोत्तेजक नाटक आकाशवाणी पुरस्कार योजना के अन्तर्गत 1977 के प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत हो चुका है। स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित प्रस्तुत नाट्य कृति की मूल समस्या पर प्रकाश डालते हुए मृदुला जी कहती हैं - धीरे-धीरे जंग खाता सामाजिक आदमी उस मुकाम पर पहुँच जाता है जहाँ उसके अपने सबसे निजी क्षण, स्त्री-पुरुष के बीच के आत्मिक दैविक संबंध भी सामाजिक व्यवहार की बलि चढ़ जाते हैं हमारे हाथ पैर एक मशीनी रोबट की तरह हरकत करते चले जाते हैं और हम अलग पड़े अपना तमाशा खुद देखते रहते हैं। अजनबियों की मानिंद...पर क्या किसी अजनबी के कंधों पर कोपकर, हम उन सपनों को साकार कर सकते है?.....एक और अजनबी में स्त्री-पुरुष की संस्कारगत अमृत तृष्णाओं और वर्तमान सभ्यता द्वारा आरोपित दोहरावभरी जिन्दगी के द्वन्द्व को तीव्र अनुभूति तथा प्रभावी शैली द्वारा व्यंजित किया गया है। मृदुला जी का यह नाटक मंच पर मंचित, आकाशवाणी से प्रसारित एक श्रेष्ठ सफल नाटक है।

6.2.2.जादू का कालीन

'जादू का कालीन' (1993) अपने इस दूसरे नाटक में नाटककार ने कालीन उध्योग में कार्यरत बाल मजदूरों की कहानी कही है। बाल श्रमिकों की विवशता, उनकी दुर्दशा, उनके पुनर्वास की समस्या, प्रशासनिक भ्राष्टाचार, स्वयंसेवी संगठनों का पाखण्ड आदि प्रश्नों को सामने लाता यह नाटक की मजबूरी की गरीबी और भूख

के कारण उनके बंधुआ बनकर जीने की मजबूरी को भी दर्शाता है। बाल श्रमिकों का स्वप्रदर्शी स्वभाव भी नाटक में दिखाया है। सपनों के जादुई कालीन बुनना ही जिनके लिए संजीवनी है, नाटक इसी सपनों की दुनिया में खत्म होता है।

7.मृदुला बिहारी - व्यक्ति एवं परिवेश

मृदुला बिहारी का जन्म 1 फरवरी 1949 में हुआ है। पाटना विश्वविद्यालय की स्नातिका श्रीमती मदुला बिहारी की लगभग चालीस रचनाएँ आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित हो चुकी हैं। इनका एक ऐतिहासिक उपन्यास 'पूर्णाहुति' भी प्रकाशित हुआ है। दूरदर्शन नाटकों का संग्रह 'अंधेरे से आगे' तथा अन्य नाटक प्रकाशित हुए हैं।

7.1.मृदुला बिहारी का साहित्य परिचय

मृदुला बिहारी जी के समग्र साहित्य को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

7.1.1.उपन्यास

1. 'पूर्णाहुति'

7.1.2.नाटक

1.भँवर

2.तीसरे रास्ते का राही

3.वे पाँच शब्द

4.देहरी

5.अंधेरे से आगे

7.2.मृदुला बिहारी के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

7.2.1.भँवर

'भँवर' नाटक में लेखिका ने घर और नौकरी के बीच झूलती हुई नारी की छटपटाहट को लेकर सृजन किया है। नाटक की नायिका रंजना के पति का वेतन कम था परन्तु वीरगंज छोटा सा नगर था जिसके कारण जीवन की आवश्यकताएँ कम थीं। परिवार में प्रेम, सुख और शान्ति थी। मगर दिल्ली महानगर है जहाँ पर तड़क-भड़क अधिक है। इस तड़क-भड़क को बनाये रखने के लिए धन चाहिए। ऐसी स्थिति में रंजना नौकरी करना चाहती है। लेकिन सुधीर उसका नौकरी करना पसन्द न करे तो वह स्पष्ट करती है - घर की चार दीवारी ही तो औरत को एक सीमा में बाँध देती है।"[1] लेकिन सहेली रंजना के प्रेरणा भरे शब्दों को सुनकर नौकरी करने के लिए तैयार हो जाती है।

इस प्रकार लेखिका ने 'भँवर' नाटक के माध्यम से निम्न मध्य वर्ग, पति और माँ-बाप के प्रति स्त्री के नैतिक दायित्व, चार दीवारों में बंधी परंपरागत भारतीय नारी, महानगर की आत्मविश्वास से पूर्ण नारी, नारी के अस्तित्व, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा स्त्री अधिकार आदि के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक चेतना को उभारा है।

7.2.2. तीसरे रास्ते का राही

'तीसरे रास्ते की राही' नाटक असफल प्रेम के उदात्त प्रेम के रूप में उन्नयन की कथा पर आधारित है। नाटक की नायिका अंजना है और नायक है अमित। माया की लड़की का विवाह है। वे अपनी बहन तथा भाँजे-भाँजियों को लेने के लिए आये हैं। संजना की परीक्षा चल रही है तथा वीना के प्रैक्टिकल जारी हैं। इन दिनों के कारण इनकी माँ दिल्ली जाने तथा विवाह में सम्मिलित होने में असमर्थ है। अंजना के पेपर हो चुके हैं अतः मामा उसे अपने साथ ले आते हैं। विवाह के दिनों में उसकी भेंट अमित से होती है और दोनों एक दूसरे के प्रेमपाश में बंध जाते हैं। अमित और

अंजना के बीच पत्राचार जारी रहता है।

इधर अमित कंपीटिशन में पास हो जाता है तथा घर वालों के दबाव से किसी और लड़की से विवाह कर लेता है। दूसरी ओर अंजना के सामने विवाह का प्रस्ताव आता है परन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करती।

प्रेम में असफल होकर अंजना स्कूल में अध्यापिका की नौकरी कर लेती है। जिस स्कूल में अंजना पढ़ाती है उस स्कूल में एक बालक पढ़ता है। उसकी माँ नहीं है तथा स्नेह का भूखा है। अंजना उसे स्नेह तथा प्रेम देती है। इस प्रकार असफल प्रेम का स्थानान्तरण उदात्त प्रेम में होता है।

7.2.3. वे पाँच शब्द

'वे पांच शब्द' नाटक में लेखिका ने मध्य वर्ग और निम्न वर्ग के आर्थिक अभावों और दबावों को अभिव्यक्ति दी है। माया इस नाटक की नायिका है और नौकरी करती है। माया का पति भी किसी दफ्तर में नौकरी करता है। फिर भी किसी दूसरी कंपनी में नौकरी के लिए आवेदन दिया हुआ है। माया चाहती है कि यह नौकरी अजित को मिल जाये। इसलिए माया ने उस कंपनी के डायरेक्टर के पी.ए. को खाने पर बुलाया है। उसके विपरीत अजीत का विश्वास है कि अच्छी नौकरी सिफारिश से नहीं बल्कि मेहनत और ईमानदारी से मिलती है।

पी.ए खाने पर आता है और अजित को इंटरब्यू के लिए तैय्यारी करते देखकर कहता है - क्या होता है पढ़कर? यह सब ढोंग है। मेहनत और योग्यता की बात तो दिखावा है, पर यह नाटक भी जरूरी है।"[2] माया पी.ए को अजित का विवरण नोट कराती है। इन्टरव्यू होता है और अजित को लगत है कि उससे अधिक योग्य उम्मीदवार का चयन होगा। इस प्रकार लेखिका ने नौकरी से असंतुष्ट तथा आगे बढ़ने की इच्छा, नौकरी के लिए सिफारिश की आवश्यकता, इन्टरव्यू के नाम पर

---

[1] भँवर - पृष्ठ-24
[2] वे पाँच शब्द - 77

चलने वाले क्रूर मजाक आदि से समकालीनता के स्तर पर आर्थिक और सामाजिक चेतना को उभारा है।

7.2.4.देहरी

'देहरा' नाटक में लेखिका ने विधवा- पुनर्विवाह के प्रश्न को उठाया है। नाटक की नायिका हीरा, विवाह के तीन वर्ष बाद विधवा हो जाती है। छः मास मायके में रहने के बाद उसे ससुराल जाना है। हीरा की माँ चाहती है कि उसे ससुराल न भेजा जाये क्योंकि ससुराल वाले इस छोटी से बेजुबान जानवर की भाँति काम लेंगे। वह चाहती है कि कसनपुर वाले पारसनाथ से हीरा का पुनर्विवाह कर दिया जाए। हीरा के पिता को यह अच्छा नहीं लगता क्योंकि पारसनाथ के पहली पत्नी से बच्चे हैं और हीरा उसके पिता के समान है। अतः हीरा को उसके ससुराल भेज दिया जाता है।

हीरा को विधवा होने का कारण ग्रामीण समाज से उपेक्षा और तिरस्कार ही मिलता है। मायके से चलते हुए हीरा के पिता ने जो शिक्षा दी थी अपने आचरण से सबको खुश रखना। सास-ससुर की सेवा करना। उसकी शिक्षा का पालन करते हुए वह परिवार की दिन-रात सेवा करती है और परिवार से मिलने वाले प्यार के कारण के हीरा को पग-पग पर सहारा देकर उसे टूटने से बचाती है। घर और परिवार से पूर्णतः जुड़ जाने के बावजूद भी हीरा के मन में एक खालीपन और एकाकीपन विद्यामन रहता है।

चेतन एक आधुनिक चेतना समपन्न युवक है। इस घर में रहते हुए वह हीरा की दशा देखता है। उसका विचार है समाज के नियमों को भगवान की मर्जी के साथ जोड़कर क्यों किसी की जिनदगी बरबाद की जाए। अतः हीरा को अपने जीवन को पुनः शुरु कर लेना चाहिए। चेतन को लगता है कि भारतीय समाज में विधवा को विधवाओं की कहानियाँ सुना-सुना कर उसके मन में वैराग्य भाव भर जाता है। दया और सहानुभूति दिखाकर उन्हें बेचारी बना दिया जाता है। हीरा ने भी अपने चारों

ओर एक दीवार बना ली है।

चेतन का दृढ़ विश्वास है कि भाग्य को दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा बदला जा सकता है। वह अपने विचारों को कार्य रूप देने केलिए अपनी बहन प्रभावती तथा जीजा को अपने माता-पिता के पास भेजता है ताकि हीरा से विवाह की बात को वह आगे बढ़ा सके।

माता पिता की सहमति, हीरा की स्वीकृति तथा बहन और जीजा की सहायता से चेतन नाटक के अन्त में हीरा को सामाजिक कुरूतियों की देहरी से बाहर निकालकर विधवा-पुनर्विवाह का मार्ग प्रशस्त करता है। हीरा का वैधव्य की देहरी को त्यागकर एक नव जीवन की ओर अग्रसर होना ही नाटक की मूल संवेदना है।

7.2.5.अंधेरे से आगे

प्रस्तुत कृति 'अंधेरे से आगे' में जिन पाँच नाटकों का संकलन किया गया है उनके नाम हैं – 'भँवर', 'तीसरे रास्ते का राही', 'वे पाँच शब्द', 'देहरी' और 'अंधेरे से आगे'। इन सभी नाटकों के सभी पात्र सहज मानवीय चरित्र हैं। इन नाटकों के केन्द्र में नारी है। ये नाटक नारी-मन के विभिन्न पक्षों का उद्‌घाटन करते हैं। नारी की संवेदशीलता, उसकी दृष्टि, उसका व्यवहार, ज्ञान और कर्म का क्षेत्र अपना अलग ही होता है। उसकी समस्याएँ कई अर्थों में पुरुषवर्ग की समस्याओं से भिन्न होती हैं। समाजगत मूल्यों और व्यवस्था के बीच उसका जीवन, उसके मनोभाव अनेक स्तरों पर पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक आहत होते हैं। इन नाटकों के मुख्य नारी पात्र - हीरा, रंजना, जानकी, माया और अजंना के व्यवहारिक जीवन में यही सब घटित होता है। वैसे उनका अपना संसार है, जिन्दगी के अलग अलग अयाम हैं, फिर भी उनमें एक समानता है और वह है उनकी बेचैनी - कुछ करने की, कुछ पाने की और कुछ होने की - एक बदलाव की बेचैनी। वे जहाँ अपने को देखना चाहती हैं, किसी विवशता के कारण उन्हें वह सम्भव नहीं हो पा रहा है। सामने आत्म-साक्षात्कार के क्षण आते अवश्य हैं लेकिन इतनी आसानी से नहीं, भय, पीड़ा,

असुरक्षा, एकाकीपन जैसी अनेक बाधाओं से गुजरने के बाद ही कुछ पाने की आशा की एक किरण मिल पाती है।

'अंधेरे से आगे' बाल-विवाह की कुप्रथा से उत्पन्न समस्याओं को लेकर लिखा गया है। नाटक की नायिका जानकी का बचपन में विवाह कर दिया गया है। उसका पति पढ़-लिख कर एक उच्च अधिकारी बन जाता है। रामलाल जानकी के समस्त गहने उतराकर उसे घर बाहर निकाल देता है। पति से तिरस्कृत होकर जानकी का मन करता है कि वह मर जाये। उससे सहानुभूति प्रकट करने वाले झूठे हैं। माँ का दुख तथा पड़ोस की स्त्रियों के ताने उसे और व्यथित करते हैं। गाँव का बदमाश तथा उसकी भेजी हुई कुट्टिनी उसे लोभ-लालच देकर फंसाना चाहते हैं परन्तु जानकी बिस्सु की कंजरी बनकर रहने की अपेक्षा परिश्रम करके पेट भरना उचित समझती है।

इस प्रकार पति द्वारा परित्यक्त जानकी का स्वावलम्बन के लिए संघर्ष नाटक में सामाजिक और आर्थिक चेतना को प्रकट करता है। जानकी का यह संघर्ष केवल उसका ही नहीं बल्कि उन अनेक पीड़ित और व्यथित स्त्रियों का है जो जीवन में आई निराशा से घबराती नहीं है बल्कि अपने सोये हुए आत्मविश्वास को पुनः जागृत कर स्वावलम्बन की ओर बढ़ती हैं।

8.मृणाल पाण्डे : व्यक्ति एवं परिवेश

मृणाल पाण्डे जी का जन्म 26 फरवरी 1946 को टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में हुआ था। एम.ए (अंग्रेजी साहित्य) प्रयाग विश्वविघ्यालय, इलाहाबाद से कीं। गंधर्व महाविध्यालय से संगीत विशारद तथा कॉरकोरन स्कूल ऑफ़ आर्ट, वाशिंगटन में चित्रकला एवं डिजाइन का विधिवत अध्ययन किया। कई वर्ष विभिन्न विश्वविध्यालयों (प्रयोग, दिल्ली, भोपाल) में अध्यापन के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में आयीं। दैनिक हिन्दुस्तान व वामा की संपादक तथा दैनिक हिन्दुस्तान की कार्यकारी संपादक रहीं। स्टार न्यूज के लिए हिन्दी बुलोटिन का संपादन किया।

8.1.मृणाल पाण्डे का साहित्य परिचय

मृणाल पाण्डे जी का समग्र साहित्य को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते है -

8.1.1.उपन्यास

1.विरुद्ध

2.पटरंगपुराण

8.1.2.कहानी

1.दरम्यान

2.शब्दवेधी

3.एक नीचे ट्रैजिडी

4.एक स्त्री का विदागीत

5.यानी की एक बात थी

6.बचुली चौकीदारिन की कढ़ी

8.1.3.नाटक

1.जो राम रचि रखा

2.आदमी मछुआरा नहीं था

3.चोर निकल के भागा

8.1.4. अन्य सृजन

1. देवकी नंदन खत्री के उपन्यास 'काजर की कोठरी' का इसी नाम से नाट्य रूपांतरण।
2. द सबजैक्ट इज़ वूमन (The Subject Is Women) (महिला विषयक लेखों का संकलन) द डॉक्टर्स डॉटर (The Doctor Daughter) (उपन्यास)
3. देवी (उपन्यास रिपोर्ताज)

8.2.मृणाल पाण्डे की नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

8.2.1.जो राम रचि रखा

जो राम रचि रखा (1991) की लोक-कथा प्रेरित कहानी नाटकीय संभावनाओं से भर पूर है। मृणाल पाण्डे ने इन संभावनाओं का कल्पनाशील ढ़ंग से उपयोग करते हुए हिन्दी नाटक के क्षेत्र में एक अलग लीक पकड़ी है। नाटक की कथा वस्तु इस प्रकार है - धन्ना सेठ के बेटे मन्ना सेठ को अपने वर्ग की सामंतवादिता से घृणा हो जाती है। उसकी यह घृणा दिखावटी है। वह दीन-दुखियों के अधिकार और क्रांति की बातें नारेबाजी के ढ़ंग से करने लगता है। एक चोर को हवलदार से पिटता हुआ देखकर चोर को वह शोषित वर्ग का प्रतिनिधि मानकर स्वयं चोरी करने का बीड़ा उठाता है पर धन्ना सेठ के प्रभाव से उसके द्वारा की गयी चोरियों की कोई शिकायत नहीं करता, उल्टे जहाँ-जहाँ वह चोरी करता है उस घर के लोगों को धन्ना सेठ की ओर इतना लाभ होता है कि लोग चाहते हैं कि मन्ना सेठ उनके यहाँ आकर चोरी करे। अपनी योजना कारगर होती न स्वयं चोर होने की घोषणा करता है। तब भी आम गरीब आदमी की तरह व्यवहार न पाकर हत्या करने का इरादा है। जिस कंगाल व्यक्ति की हत्या करता है, उसके परिवार का भाग्य ही खुल जाता है। तब वह भरे दरबार में राजा को अपमानित करने के लिए पहुँचता है पर धन्ना सेठ और मुसाहिब इसकी भी व्यवस्था कर चुके हैं।

नाटक में लोक-कथा के माध्यम से लेखिका ने आज के भारतीय सामाजिक यथार्थ की पड़ताल की है। मन्ना सेठ का क्रांतिकारी बनने का ख्याल सस्ती लोकप्रियता और छिछली नारेबाजी से प्रेरित है। अपने पिता और परिवेश से विद्रोह भी नकली है। इस छद्‌म को लेखिका ने अपनी उपहास करने की तीक्षण प्रवृत्ति से उधेड़ है और इसके लिए सारे पात्रों के लिए एक विशेष प्रकार की भाषा विकसित की है। मन्ना सेठ भैंस से स्वयं दूध दुहने की इच्छा प्रकट करता है। उस समय मुसाहब के साथ उसका संवाद द्रष्टव्य है - क्यों, क्या मैं दुह नहीं सकता भैंस? क्या तुम्हारे दिमाग में शोषक वर्ग की भीड़ में मेरा चरित्र भी इतना धुल-मिल गया है? क्या

भारतीय शोषण वर्ग के दोहन के उस सुंदर प्रतीक भैंस तक मैं जा भी नहीं सकता? हा रे निष्ठुर दुर्दैव।

8.2.2.आदमी मछुआरा नहीं था

आदमी मछुआरा नहीं था (1985) मृणाल पाण्डे का दूसरा नाटक है। उनके पहला नाटक जो राम रचि रखा की तरह यह भी लोक-कथा से प्रभावित है। लेखिका ने मछुआरे से मछली रानी से तीन वर माँगे जाने की पुरानी कथा को एक दम ताजा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और पारिवारिक संदर्भों से जाँचा है। पैंतीस नंददुलारे सत्ता के प्रतीक उनसे वर प्राप्त कर आगे बढ़ता जाता है। उसकी यह प्रगति वास्तव में भीतर से खोखली तथा अंतर्विरोधों से ग्रस्त है। सचिव से निजी सलाहकार बनकर वह सत्ता के गलियारों में मान-सम्मान पाता है। ऊपरी तौर पर चमक-दमक और वैभव का जीवन व्यतीत करता है, पर भीतर ही भीतर टूटता जाता है अपने दादा की मृत्यु के समय उसके पास उपस्थित नहीं हो पाता, गलत लोगों से घिर जाता है।

लेखिका ने लोक-कथा का उपयोग आज के चित्रण में इतनी कुशलता से किया है कि आज के व्यक्ति के भीतर और बाहर के अंतर्विरोध, विडंबनाएँ और विसंगतियाँ कई स्तरों पर एक साथ उजागर हुई हैं। लोक-कथा के द्वारा व्यक्ति के भीतर और बाहर की दुनिया के अत्यंत समकालीन संदर्भों में प्रामाणिक चित्रण प्रयोगधर्मिता के स्तर पर इस नाटक की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

8.2.3.चोर निकले के भगा

चोर निकले भागा (1995) मृणाल पाण्डे जी का श्रेष्ठ नाटक के रूप में माना जा सकता है। जाहिर है कि चोर निकल के भागा की रचना के समय लेखिका के महानगरों की वह युवा पीढ़ी रही है जो कांमिक्स, नॉवल या फिल्मों के माध्यम से मॉफिया के बॉस, सुपरमैन, जैम्स बांड या इसी तरह के तस्करों बदमाशों और अय्यारों के हैरत-अंग्रेज करिश्मों-कारनामों की काल्पनिक दुनिया में डूबे हुए हैं। रमेश,

महेश, रामावतार, सुरेश और नीता पढ़े-लिखे बेरोजगार नौजवान हैं जो एक रंगीले-छबीले बाबा के कहने पर अपनी तकदीर बदलने के इरादे से एक पुरानी फारसी थेटर कंपनी के मास्टर गेंदालाल और भी शरीफों से जा टकराते हैं। इच्छानुसार चीजों को छोटा, बड़ा या गायब कर सकने वाली चमत्कारी भभूत के जरिए वे सब मिलकर दुनिया के आठवें चमत्कार ताजमहल को चुराकर भारी दामों में चुपचाप या नीलामी द्वारा किसी विदेशी खरीददार को बेच देना हथियाने के लिए जाने कौन-कौन से खतरनाक खेल खेलते हैं।

अच्छी बात यह है कि लेखिका हास्य-नाटक को, कुछ असामान्य-असाधारण पात्रों की ऊलजुलूल हरकतों, उनके फूफड़ संवादों और तलीफों, चुटकलों का जमघट मानने के बजाए, विडम्बनापूर्ण हास्य स्थितियों का दिलचस्प संयोजन मानती हैं जिसके माध्यम से चरित्रों एवं स्थितियों की विसंगतियों को हँसते-हँसते हुए देखा, समझा जा सके। हास्य-नाटक लिखना हँसी-मजाक नहीं एक गंभीर रचना कर्म है यह सोच निश्चय ही किसी बड़े नाटक की संभावना का पूर्व-संकेत हो सकती है।

इस प्रकार सृजक के जीवन के दोनों पहलुओं अर्थात व्यक्ति एवं कृतित्व आपस में इतने हिल-मिल जाते हैं कि उनके बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना कष्टसाध्य हो जाता है। आदमी के व्यक्तित्व का विकास उसके जन्मजात गुण, उसका सामाजिक संपर्क, पारिवारिक परिस्थिति, शैक्षिक उपलब्धि आदि पर निर्भर रहता है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के लिए यह सब कुछ अनुकूल थे।

9. मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्ति एवं परिवेश

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवंबर 1944 में आलीगढ़ जिले के सिकुर्रा गाँव में हुआ। बुन्देलखण्ड कॉलेज, झॉन्सी से हिन्दी में एम.ए. किया। परिपक्व अवस्था में अपनी पुत्री की सद्प्रेरणा पर लिखना शुरु किया और 10 साल के भीतर अनुपम ख्याति प्राप्त की और अनके प्रतिनिष्टित सम्मान और पुरस्कार प्राप्त किये। हिन्दी

अकादमी द्वारा साहित्य कृति सम्मान कथा पुरस्कार (फैसला कहानी पर) बेतवा बहती रही को प्रेमचन्द सम्मान 1995 (उ.प्र साहित्य संस्था)। इदन्नमम उपन्यास को नंजनागुडु तिरुमालंबा पुरस्कार (शाश्वती संस्थान बेंगलूर) वीरसिंह देव पुरस्कार (म.प्र.साहित्य परिषद) और सरोजिनी नायुडु पुरस्कार इसके अतिरिक्त अनेक राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

9.1.मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य परिचय

मैत्रेयी पुष्पा जी के समग्र साहित्य को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते है –

9.1.1.उपन्यास

1.स्मृतिदंश

2.बेतवा बहती रही

3.इदन्नमम

4.चाक

5.झूलानट

6.अल्माकबूतरी

9.1.2.कहानी

1.गोमा हँसती है

2.ललमनियाँ

3.चिन्हार

9.1.3.आत्मकथा

1.कस्तूरीकुण्डली बसै

2.खुली खिड़कियाँ

3.फैसला

9.1.4.नाटक

1.मंदाक्रान्ता

9.1.5.अन्य सृजन

1.बसुमति की चिट्ठी (टेलिफिल्म)

2.संक्रान्ति (छायाचित्र)

9.2. .मैत्रेयी पुष्पा के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

9.2.1.मंदाक्रान्ता

मंदाक्रान्ता मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित विन्ध्य के अंचल का जीवन्त चित्रण करने वाला नाटक है। मैत्रेयी ने इस नाटक में सोनपुर तथा श्यमली गाँव के चित्रण के माध्यम से नारी के संघर्ष की कभी न खत्म होने वाली कहानी प्रस्तुत की है। नाटक में चित्रित नारी पात्र किसी न किसी समस्या से संघर्षरत हैं।

नाटक के केन्द्र में मंदा एक लड़की है जो संपूर्ण नाटक में सामाजिक, जैविक, आर्थिक, राजनैतिक मानसिक धरातल पर संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। उसका संघर्ष लेखिका ने अन्त तक क़ायम रखा है, जो नितान्त यतार्थ है। नाटक में मंदा समस्याओं के कारण टूटती या धुकती हुई दिखाई नहीं देती। वह एक सामान्य स्त्री के समान हर समस्या से जूझती हुई दिखाई देती है।

श्यामली एक आदर्श गाँव। छोटे-बड़े जाता-पाँत का भेदभाव नहीं। आपस में स्नेह, प्रेम, भाईचारा ऐसा कि लोग मिसाल दें, लेकिन आज श्यामली के लोग अपनी परछाईं तक पर विश्वास नहीं कर पाते। भाई-भाई के बीच रंजिश, घर-घर में क्लेश। और सोनपुर ग़रीबी, बीमारी, भुखमरी और आपसी कलह से जूझता सोनपुर आज सचमुच सोने-सा दमक रहा है। एकता और आत्मविश्वास से अर्जित स्वाभिमान और खुशहाली की दमक।

नाटक की कथा वस्तु दो हिस्सों में विभाजित हैं। एक मंदा और बउ का श्यामली में वास्तव्य था। वह काल अथवा मंदा का बाल्यकाल तथा दो जब यह दोनों सोनपुर आ जाती हैं, वह काल अथवा मंदा की वुवावस्था का काल। नाटक के आरंभ में बउ मंदा को लेकर सुरक्षाभाव से श्यामली आ पहुँची है। मंदा की माँ प्रेम ने अपने पति महेनदर की हत्या के बाद अपने अधेढ़ उम्र जीजा रतन यादव से विवाह कर लिया है। जिस के सभी विरोधी हैं। विवाह के पश्चात प्रेम ने अपनी बेटी मंदा के लिए पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करके उसका हक़ माँग लिया। यह घटना तथा प्रेम की स्वीकृति यह साबित कर देती है कि प्रेम का अपहरण ना होकर उसने अपनी इच्छा से रतन यादव का साथ स्वीकार किया है। इस घटना से बउ अत्यधिक भयग्रस्त हो गई। उसे गाँव में निरंतर ढ़र लगा रहता कि कब प्रेम मंदा को उससे छीन लेगी। इसी ढर के कारण बउ मंदा को लेकर श्यामली के अपने रिश्तेदार दादा के पास पहुँच जाती है। यहाँ आकर भी वह प्रेम के भय से मुक्त नहीं हो पाती।

श्यामली के आने के पश्चात मंदा के जीवन में ख़ुशी की लहर आ जाती है। जिस मकरंद के प्रति मंदा के बाल मन में प्रेम के बीज बोए गए हैं, उसी के साथ उसकी सगाई हो जाती है। इस बीच दाउ अपने जीवन की अंतिम साँसें गिन रहे है। वे कुसुमा को मिला चाहते है। दादा कुसुमा को बुलाकर अपनी उदारता को साबित करते हैं। परंपरागत रूढ़िवादी पितृसत्ता व्यवस्था से अलग व्यक्तित्व लिए दादा उस वक्त भी आदर्श साबित होते हैं, जब वे कुसुमा को वसीयत का तीसरा हिस्सा देते हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने नाटक के अंत तक मंदा को संघर्षरत दिखाकर कथा को यतार्थवादी बनाया है। आज मनुष्य के जीवन में समस्याओं का शिलसिला निरंतर चलने वाली है। मंदा भी इस सिल सिले की शिकार है। समस्याओं की उपस्थिति, संघर्ष और अंत में समाप्ति और ख़ुशियाँ न दिखाकर लेखिका ने अपने आपको काल्पनिकता से बचाया है। मंदा एक मामूली स्त्री होकर महानगरीय मध्यवर्ग की संघर्ष करती है और पाँवों के नीचे ज़मीन की तलाश करती कथा नारियों के बीच गाँव की मंदा एक अजीव

निरीह, निष्कवच, निश्छल, संकल्पदृढ़ नारी का व्यक्ति लेकर उभरती है।

उपसंहार

इस अध्याय के माध्यम से हिन्दी महिला नाट्य लेखिकाओं के जीवन परिचय के साथ-साथ अपने संपूर्ण साहित्य को संक्षिप्त परिचय दिया गया है। साहित्य परिचय में मुख्य रूप से उनके नाट्य रचनाओं पर बल दिया गया है। नाट्य लेखिकाओं ने अपने नाटकों में नारी के विभिन्न रूपों तथा विविध मुद्राओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। नारी के अनुपम सौन्दर्य को नारी के भाग्य, शोषित, शिक्षिता, स्वावलम्बी, विद्रोही, पोषिता ,अतृप्ता, वीरांगना, माँ, बहन, पत्नी, बोटी आदि अनेक रूपों का चित्रण कर सामाजिक चेतना को उभारा है।

***

अध्याय - तीन

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और तात्त्विक विश्लेषण

तृतीय अध्याय

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और तात्त्विक विश्लेषण

प्रत्येक कला अपने आप में पूर्ण होते हुए रचनाकार की सुविधा के लिए कुछ सर्वमान्य आधारों एवं नियमों पर आधारित होती है। यद्यपि प्रवाहमान परिस्थितियों के परिवर्तन स्वरूप पूर्ण निर्धारित नियमों तथा सिद्धातों में किंचित् परिवर्तन होता रहता है। विशेषकर वर्तमान युग में प्रत्येक कला के रचना-विधान में इतने अधिक नवीन प्रयोग आते जा रहे हैं कि प्राचीन सिद्धांतों की अवहेलना भी होती जा रही है। वस्तुतः यह कोई दोष नहीं है। साहित्य युग जीवन से ही विस्तृत होता है अतः कोई भी साहित्यकार पुरातन परम्पराओं से बाँधकर, उनकी लीक पर चलकर युग-चेतना और जन-जीवन के साथ न्याय नहीं कर सकता। कलाकार द्रष्टा और स्त्रष्टा दोनों है, अतएव बदलते हुए जीवन मानदंडों के अनुरूप उसे अपनी कला को भी नया मोड़ देना होता है किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि कला के आधारभूत सिद्धांत नहीं होते। सिद्धांत होते हैं, उन्हीं में नवीनता का सम्मिश्रण करते हुए रचनाकार रचना करता है। हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में यह स्थिति है। नाट्यकला के अन्तर्गत जहाँ एक ओर संस्कृत आचार्यों ने नाट्य-कला के शास्त्रीय सिद्धांतों का विशद एवं व्यापक विवेचन किया है वहीं दूसरी ओर समय की माँग के अनुसार हमारे हिन्दी नाटककारों ने पश्चात्य नाट्य सिद्धांतों के संपर्क से भी लाभ उठाया है। हम यहाँ संस्कृत में नाट्य शास्त्र संबंधी सिद्धांतों तथा पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों के संदर्भ में आलोच्य कृतियों का विवेचन करेंगे।

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक के मूलभूत रचनात्मक तत्व तीन माने गए हैं - वस्तु, नेता रस। इन तीनों तत्वों का संस्कृत आचार्यों ने अत्यन्त विस्तृत विश्लेषण किया है और इन्हीं के आधार पर रूपकों के भेद-प्रभेद निश्चित किए हैं। दूसरी ओर पाश्चात्य नाट्य शास्त्रियों ने नाटकों के छः तत्व माने हैं और यही आज कल हिन्दी नाट्य-साहित्य में मान्य हैं। ये छः तत्व इस प्रकार हैं - वस्तु, नेता, रस, कथोपकथन, देशकाल वातावरण, और उद्धेश्य। हिन्दी के आलोचक इन्हीं को मुख्य आधार मानकर हिन्दी नाटकों की आलोचना करते हैं। अतः इस अध्याय के माध्यम से संस्कृत और पाश्चात्य आचार्यों से माने गये निम्न तत्वों को नाटक के प्रमुख तत्व मानते हुए विश्लेषण और विवेचन किया जाएगा।

1.नाट्य वस्तु

नाटक का कथानक ही वस्तु कहलाता है। कथानक से तात्पर्य उन घटनाओं के चयन से होता है जिन्हें नाटककार नाट्य-वस्तु के रूप में परिणत करता है। प्रायः कथानक और कथावस्तु को पर्याय रूप में ग्रहण किया जाता है जो कि भ्रामक है। कथानक या कथा तो वह मूल स्थूल सामाग्री है जो सामान्य स्तर पर लोक परिवेशगत होती है। कथावस्तु का अस्तित्व नाटककार के मन में होता है। मनवीय भावों, संवेदनों एवं संभावित सत्य का पुट देकर जो रूप निष्पन्न होता है वही नाटकीय कथावस्तु होती है।

कुसुम कुमार जी का **'सुनो शेफाली'** नाटक की पूरी कथा शेफाली जो एक हरिजन लड़की के केन्द्र में चलती है। नाटक में शेफाली प्रधान भूमिका निभाती है। हरिजन लड़की होने के नाते भी वह सत्यमेव दीक्षित का लड़का बकुल से प्यार करती है लेकिन विवाह करने के लिए तैयार नहीं होती है। शेफाली यमुना के घाट पर आकर बकुल की प्रतीक्षा करती रहती है। घाट पर मनन नाम क ज्योतिषाचार्य वहाँ आनेवाले लोगों का भविष्य सुनाते थे। मनन अक्सर शेफाली को देखने वहाँ आता रहता है। हरिजन लड़की होने पर भी शेफाली की विवेक शक्ति, धैर्य और मानवीयता

की प्रशंसा करते थे। उसकी आधुनिक भावनाएँ आदर्शमय और अनुकरणशील हैं। पढ़ी लिखी होने पर भी और समाज में हरिजन होने के नाते शेफाली को हीन दृष्टि से देखा जाता है। शेफाली अक्सर बकुल के पिता सत्यमेव दीक्षित जो राजनेता थे अँग्रेज़ी पढ़ाने जाती थी। दीक्षित चुनाव में लड़ना चाहता है इसलिए हरिजनों और पिछड़े जातियों के समर्थन के लिए शेफाली के साथ अपने लड़के बकुल का शादी जल्दी करना चाहता है। परंतु शेफाली दीक्षित के पीछे स्वार्थ भावना को समझकर बकुल से शादी करने से इनकार करती है और समाज के उद्धार के लिए अपने प्रेम का लड़के बकुल की त्याग करती है। राजनीति के ख़िलाफ़ अपना कदम उठाती है जिसमें आधुनिक महिला विचार धारा स्पष्ट होती है। मनन भी राजनीति के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठाता है और शेफाली को अपना सुझाव देता रहता है। शेफाली अपने प्रेम का बलिदान देती है। इसलिए यह नाटक पिछड़ी जाति की एक लड़की के प्रेम भंग की कहानी है।

कुसुम कुमार जी का दूसरा नाटक **'रावणलीला'** व्यंग्य नाटक के अंतर्गत आता है। जिगरपुर में हर साल काशीराम के नेतृत्व में रामलीला नाटक का प्रदर्शन होता है। देशी नाटक के कारण पात्रों के बीच संवाद और तालमेल सही ढंग से नहीं होता है। गाँववालों से मिले चंदा की मदद से हर साल यह नाटक खेलते हैं। रावण पात्र करतार सिंह इस नाटक में मुख्य भूमिका निभाता है।

नाटक दो अंकों में है और प्रत्येक अंक में दो दृश्य हैं। नाटक का आरंभ नेपथ्य से आनेवाली आवाज़ों और दर्शकों की सीटियों से होता है जो एक कलाकार के समय पर न पहुँचने के कारण है और सीटियाँ दर्शकों के उतावलेपन को प्रस्तुत करती हैं जो रामलीला देखने के लिए आए हैं। जिगरपुर की रामलीला का आज छठा दिन है। मंच संचालक जगन्नाथ समय गुज़रने के लिए भाषण दे रहा है परन्तु दर्शक रामलीला देखने के उद्देश्य से आए हैं न कि भाषण सुनने के लिए। दर्शक दशरथ की भूमिका करने वाले पुराने कलाकार भगवान दास को देखना चाहते हैं परन्तु भगवान

दास अपने घर में बेटा होने के कारण मंच पर आने में असमर्थ है। जैसे तैसे रामलीला शुरू होती है।

नाटक के पहले दृश्य में शुरुआत की दशा में पात्रों के बीच का संवाद व्यंग्यात्मक एवं प्रत्येक की सहज भावना प्रकट होती है। एक दूसरों के बीच हँसी-मज़ाक़ होता है। पिछले साल खेले नाटक में जो रावण पात्रधार था चंदूलाल वह हरिजन था। अच्छा कलाकार था और अभिनय ख़ूब करता था। दर्शकों के अनुरोध से जगन्नाथ जो नाटक मंडली को बयान देता है कि चंदूलाल के प्रति हमारा सम्मान है एवं हम आभारी है परन्तु वह हमारी मंडली छोड़कर अलग सी नाटक मंडली शुरू की है तो हम क्या कर सकते हैं। इसमें हरिजन लोगों के प्रति सम्मान की भावना भी दिखाई देती है।

नाटक के दूसरे दृश्य के अंतर्गत कई पात्र अपने पार्ट सही ढंग से खेलते हुए नाटक को मनोरंजक एवं दृश्यमय बना देते हैं। बीच-बीच में चुटकुले एवं गीतों द्वारा नाटक में रस एवं नयनानंद भी दर्शकों को होता है। अंत में राम रावण युद्ध से रामलीला नाटक का समापन होता है।

कुसुम कुमार जी का तीसरा नाटक है **‘पवन चतुर्वेदी की डायरी’**। इस नाटक का नायक है पवन चतुर्वेदी जो एक असफल व्यक्ति है। बयालीस साल का पवन चतुर्वेदी गाँधी वाचनालय नाम से एक प्राइवेट लाइब्ररी चला रहा है। वह अपने पिता से अलग रहता है। गाँधी वाचनालय में ही वह रहता, खाता-पीता और सोता है। वाचनालय में भी कुछ पाठक आते हैं। केवल नाम के लिए ही वह वाचनालय है। पवन खाली समय में डायरी लिखता है। वह डायरी में हर मुख्य घटना को लिखना चाहता है। पवन के पिता डॉ. चतुर्वेदी 75 वर्ष के हैं। अपने इकलौते बेटे पवन से ज्यादा पटती नहीं, इसलिए पिता-पुत्र दोनों अलग रहते हैं। दोनों में ज्यादातर बातों में असहमति होने पर भी डॉ. चतुर्वेदी पवन से मिलने कभी कभी गाँधी वाचनालय आते हैं। दोनों के आलोचना स्तर क्षण-क्षण बदलते रहते हैं।

पवन ने अपने कैरीयर के रूप में पहले फिल्म को चुना था। इसके बारे में पवन ने अपनी डायरी में ए रेड लैटर डे नामक शीर्षक में लिखा है। फिल्म निर्माता अग्निहोत्री पवन को स्टार बनाने के बड़े-बड़े सपने दिखाता। पवन इस सपनों के जाल में फंस जाता है। उसे लगता है एक दिन उसकी फिल्म हिट हो जाएगा और उसका नाम चारों तरफ होगा। अपने पिता के नाम से भी बड़ा। इन्ही सपनों को साकार करने के लिए वह बी.एस.सी की पढ़ाई छोड़ मुम्बाई जाता है। वहाँ फिल्म के बैनर तले दो फिल्में करता हैं। दोनों फिल्में प्लाप हो जाती हैं। फिल्म प्लाप हो जाने के बाद भी दो साल तक मुम्बई में रहता है। पवन दो साल फिल्म कम्पनी का मेनेजर बन जाता है। एक दो जगह पर नौकरी भी करता है पर कहीं पर टिका नहीं रहता। पवन एक ऐसे युवकों का प्रतिनिधित्व करता है जो कम मेहनत करके ज्यादा से ज्यादा यश प्राप्त करना चाहते हैं। पवन किसी बात का संकलन नहीं करता है। वह अपनी गलतियों के लिए दूसरों को दोष देता है। उसे सफल आदमियों से चिढ़ है। क्योंकि हर बात में डॉ. चतुर्वेदी अपने सफल जीवन के उदाहरण देते हैं। डॉ. चतुर्वेदी चाहते थे उनकी तरह उनका बेटा भी खूब मेहनत करे और अपने पाँव पर खड़ा रहे। किसी दूसरों की बेसाखी के सहारे अपना जीवन व्यतीत न करे।

पवन की माँ डॉ. चतुर्वेदी से पवन के नये काम के लिए बीस हज़ार माँगती है। लेकिन सिद्धांतवादी पिता इसे देने से इन्कार करता है। डॉ. चतुर्वेदी किसी भी क़ीमत पर पवन को बीस हज़ार तो क्या बीस रुपये भी देना नहीं चाहते हैं। वे पवन की माँ को अपने जीवन का उदाहरण देते हैं। डॉ.चतुर्वेदी अपनी सारी धन-दौलत एक संस्था के दान कर देते है। वे चाहते थे कि पवन अपने बलबूते पर अपना जीवन बनाए। लेकिन पवन का स्वभाव इसके विपरीत है।

जिस पवन को अपना जीवन ठीक तरह से सँभालना नहीं आता, उस पवन ने सुष्मा से प्यार और शादी भी कर ली। इस शादी के ख़िलाफ़ उसके माता-पिता थे। पवन एक बच्चे का बाप भी बन जाता है। दूसरा बच्चा सुष्मा के पेट में है। तीन

महीने की गर्भवती सुष्मा से पवन नौकरी का आवेदन पत्र भरवाना चाहता है। सुष्मा पवन की इस बात से सहमत नहीं है। गर्भवती होकर नौकरी करना सुष्मा को अच्छा नहीं लगता। लेकिन पवन सुष्मा की बात नहीं सुनता है। दोनों के बीच काफ़ी बहस होती है। बच्चा गिराने तक की बात आती है।

पवन और इला की दोस्ती को लेकर सुष्मा भला-बुरा कहती है जो पवन को अच्छा नहीं लगता। थोड़ी देर बाद सुष्मा चली जाती है और सुष्मा के जाने के बाद वहाँ इला आती है। पवन को जीवन में इला का सहारा अच्छा लगता है। इला पवन को समझाती है। पवन सुष्मा से तलाक़ माँगता है। लेकिन सुष्मा तलाक़ के ख़िलाफ़ है। सुष्मा को लगता है, पवन तलाक़ लेकर इला से शादी करेगा।

नाटक के अंत में पवन के पिता डॉ.चतुर्वेदी की मृत्यु हो जाती है। अपने पिता की शवयात्रा को देख कर पश्चात्ताप करता है। डॉ.चतुर्वेदी की मृत्यु होने के बाद भी उनका नाम प्रचलित है। यह सब देखकर उसके मन में एक तरह का बदलाव पैदा होता है। कुछ पल की खामोशी के बाद अपनी डायरी पूरी करते हुए... सारा शहर एक देवता को जानता था... मुकम्मल तौर पर न सही..सिर्फ नाम से मैं आदमी हूँ..मैं आदमी हूँ... यहीं पर आकर नाटक समाप्त हो जाता है।

मन्नू भण्डारी जी का **'बिना दीवारों के घर'** नाटक मध्यवर्गीय परिवार की नारी स्वतंत्रता को लेकर लिखा गया है। नाटक की नायिका शोभा एक कॉलेज में प्राध्यापिका है। विवाह से पूर्व वह बरेली की एक दसवीं पास लड़की थी जिसे साड़ी बाँधना तक नहीं आता था। अजित ने विवाह के बाद शोभा को एम.ए.कराकर कॉलेज में लगवा दिया। नौकरी पर जाने के कारण यह स्वाभाविक ही थी कि जितना समय वह अपने घर और बच्चों को देती थी, उस में कुछ कमी आये। अजित, शोभा के नौकरी करने के बावजूद अपेक्षा करता है कि वह उसे उतना ही समय दे जितना नौकरी से पूर्व दिया करती थी। शोभा के लिए यह संभव नहीं है। इसकी स्वीकारोक्ति

शोभा के शब्दों में इस प्रकार हुई है, यह सच है कि अब मैं तुम्हारी उतनी देखभाल नहीं कर सकती। पहले तुम्हारे और घर के सिवाय कोई काम नहीं था....अब वह सब काम कॉलेज के साथ संभव नहीं होता।"[1]

अजित स्वयं एल.एल.बी.है। इसके पिता चाहते थे कि वह पढ़ाई समाप्त करके परिवार के पुश्तैनी काम को सँभाले। अजित के अहं ने इसे स्वीकार नहीं किया और पिता-पुत्र के संबंध में टूटन आ गयी। पिता से टूटने के बाद अजित नौकरी करता है जिससे वह पूर्णतः असंतुष्ट है। दफ़्तर में काम करते हुए उसमें खीझ और निराशा उभरती है जिसका प्रभाव पति-पत्नी के संबंधों में खिंचाव के रूप में उभरता है।

नौकरी करने के कारण शोभा की अपनी कुछ व्यस्तताएँ हैं जिसके कारण वह जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती है। अजित को यह पसंद नहीं है। वह समझता है कि शोभा अजित मेड़ है अतः उसकी अपनी कोई पहचान है। नौकरी और घर के मध्य झूलते हुए शोभा के लिए यह संभव नहीं है कि वह दोनों के बीच उचित संतुलन रख सके।

कथा का यही मुख्य बिन्दु है जिसे लेखिका ने उभारा है और विभिन्न स्थितियों के माध्यम से आगे बढ़ाया है। इधर नौकरी से असंतुष्ट होकर अजित त्याग पत्र दे देता है और घर में बेकार बैठ जाता है तो दूसरी ओर शोभा, अजित के मित्र जयन्त की सिफ़ारिश से एक महिला कॉलेज की प्रिन्सिपल बन जाती है। जयन्त यद्यपि अजित का पुराना मित्र है परन्तु अपने बढ़े हुए अहं और बेकरी के कारण अजित को जयन्त का अपने घर आना-जाना तथा शोभा से मिलना-जुलना बुरा लगता है।

शोभा अत्यंत योग्यता से प्राचार्य के पद को सँभालती है। उसकी व्यस्थताएँ और बढ़ती जाती हैं। उसे कॉलेज के कुछ काम को घर पर भी करना पड़ता है। एक ओर बेकारी तथा दूसरी ओर जयन्त के प्रति ईर्ष्या के कारण वह जयन्त और शोभा

---

[1] बिना दीवारों के घर - 8

को लेकर ऊलजलूल बातें सोचता हैं। शोभा को अजित की इस प्रकार की बातें सुनकर गहरा आघात लगता है। धीरे-धीरे दोनों के मध्य तनाव और टूटन उभरती है जो नाटक को आधुनिकता के स्तर पर समकालीन है।

अजित और शोभा एक ही घर में और एक ही छत के नीचे रहते हुए एक दूसरे से अजनबी हो जाते हैं। शोभा यद्यपि नौकरी करने के कारण आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो चुकी है परन्तु उसे अनुभव होता है कि वह अजित से कटकर अपनी धुरी से बुरी तरह उखड़ गयी है। शोभा के व्यक्तित्व का विकास तो होता है परन्तु परिवार भी टूटता है। नाटक के अंत में शोभा और अजित दोनों अलग हो जाते हैं। शोभा घर और अजित को छोड़कर अपने अस्मिता को खायम रखने के लिए घर से निकल जाती है। यहाँ आकर नाटक समाप्त हो जाती है।

मृदुला गर्ग जी ने **'एक और अजनबी'** नाटक के माध्यम से स्त्री-पुरुष के प्रेम संबंधों का अनेक पक्षीय रूप उद्‌घाटित किया है। शानी इस नाटक की नायिका है और इंदर खोसला से प्यार करती है। इंदर खोसला के लिए कैरियर का प्रश्न शानी से अधिक महत्वपूर्ण है। इंदर पढ़ाई के लिए अमेरिका चला जाता है। अपने प्रेमी के इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार की प्रतिक्रिया में शानी वोल्टस के सहायक मैनेजर जगमोहन से विवाह कर लेती है।

शानी जगमोहन से विवाह कर लेती है परन्तु उसे घर की चार दीवारों में बन्द रहकर जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं है। वह खुली हवा में जीना चाहती है। लेखिका ने शानी के मनोभावों को प्रकट करने के लिए मुहल्ले में रह रहे स्त्री-पुरुष के उन्मुक्त और खुले जीवन को प्रस्तुत किया है। शानी ऐसा जीवन जीने के सपने देखे थे जिन्हें पूर्णतः समर्पित होने के कारण वह विश्वास की गहन अन्तश्चेतना से लिप्त होकर अपने अहं का विसर्जन कर उससे संशयहीन प्रेम की अपेक्षा करती है।

जगमोहन उसी कंपनी में सहायक मैनेजर है जहाँ इंदर खोसला मैनेजर नियुक्त होकर अमेरिका से लौटता है। जगमोहन चाहता है कि वह इंदर खोसला को अपने घर पर निमंत्रण करे और किसी दूसरी शाखा में मैनेजर बनने की युक्ति निकाले। वह शानी और इंदर के पूर्व संबंधों से पूर्णतः अनक्षिज्ञ है।

शानी जो कभी इंदर से प्यार करती थी, इस समय माँ बनने वाली है। वह इस समय उचित नहीं समझती कि अपने पूर्व प्रेमी के सामने बढ़ा हुआ पेट लेकर जाए। इधर जगमोहन का आग्रह है कि इंदर को शीघ्र ही घर पर निमंत्रित किया जाए।

शानी माँ बनती है और कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो जाती है। इसके स्वस्थ होते ही इंदर को आमंत्रित किया जाता है। जिस दिन इंदर को निमंत्रित किया जाता है, जगमोहन को घर से बाहर जाना है। इस पार्टी के बीच शानी जगमोहन को बताती है कि इंदर उसके साथ पढ़ता रहा। शानी अपने पति के सामने इंदर के साथ शराब पीती है। उससे डांस करना सीखती है। कुछ आपत्तिजनक बातों को जगमोहन अनदेखा भी करता है। इसी बीच जगमोहन के स्टेशन जाने का समय हो जाता है। वह शानी को इंदर की देख रेख के लिए छोड़ कर चला जाता है।

जगमोहन के जाने के बाद शानी और इंदर घर पर रह जाते हैं। इंदर और शानी के मध्य प्यार का दूसरा रूप अर्थात प्यार एक हवस है जो क्षण भर में शान्त हो जाता है। इंदर और शानी के मध्य सेक्स-व्यापार होता हैं उससे शानी निस्संग और भावहीन रहती है। इसी समय इंदर शानी से आई लव यू...आई लव यू... कहता है। उसके प्रत्युत्तर में शानी का यह कहना - यही वह क्षण है जिसे मैंने चाहा था.....। यहाँ आकर नाटक समाप्त हो जाता है।

मृदुला गर्ग जी का दूसरा नाटक है **'जादू का कालीन'** बाल मज़दूरों की दयनीय दशा, उनके पुनर्वास, प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा स्वयं सेवी संस्थाओं से जुड़े हुए लोगों के पाखण्ड को सशक्त रूप में उद्घाटित करता है। गाँव में अकाल और

सूखा पड़ा है। लोगों के पास खाने को अन्न नहीं है। वनों की अँधाधुध कटाई के कारण धरती बंजर हो गयी है। गाँवों की इस दयनीय स्थिति का लाभ उठाने के लिए आते हैं, कालीन कारख़ानों के दलाल। भूखे-प्यासे बच्चों को बँधुआ मज़दूर बनाकर ले जाने के लिए। इन बच्चों की कोमल उँगलियों से निर्मित कालीन डॉलर पैदा करते हैं। कालीन-निर्माता श्रम अधिकारी की मुट्ठी गर्म करते हैं ताकि वह इस समस्या को अनदेखा करता रहे। उन्हें मंत्री जी को भी कमीशन देना पड़ा है।

बाल मज़दूरों के अपहरण करके लाये जाने की बात जब फैलती है तो पत्रकार और स्वयंसेवी संगठन सक्रिया होते हैं। इनका प्रतिनिधिमण्डल जब कालीन -कारख़ाने का निरीक्षण करने आते हैं तो कारख़ाने का मालिक इन बाल-मज़दूरों को किसी कमरे में बन्द कर यह प्रदर्शित करता है कि उनके यहाँ ऐसा कोई मज़दूर नहीं है। बच्चों की चीख पुकार सुनकर जब रहस्य से पर्दा उठता है तो वे लोग इन्हें कारख़ाना मालिकों के बंधन से मुक्त करा देते हैं।

बच्चों के मुक्त होने के बाद उनके पुनर्वास की समस्या उभरती है। जिला कलैक्टर एक अमरीकन कंपनी से सरकार को डोनेट की गयी सरप्लस कुछ गायों को इन्हें देना चाहते हैं। गाँव वालों के पास गायों को खिलाने के लिए चारा नहीं है अतः वे इन्हें लेना पसंद नहीं करते। ऐसे में कलैक्टर लड़कियों को सिलाई मशीनों और लड़कों को गायों देने की बातें करते हैं। महिला पत्रकार और समाज सेविका इसे लड़कियों के साथ भेदभाव कहकर रोक देती हैं। इन बाल मज़दूरों में से केशो पढ़ना चाहता है परन्तु कलैक्टर के पास उसे पढ़ाने का कोई प्रबंध नहीं है। लाखन सोचता है कि वह गाय लेकर उसे बेचा देगा, फिर बँधुआ बनेगा। फिर कोई उसे छुड़ा लेगा, फिर गाय मिलेगा। मूल समस्या की तरफ़ न तो प्रशासकों का ध्यान है और न ही प्रशासन का गाँव के लोग भूख प्यासे क्यों हैं उनके प्रति कोई प्रयत्न है।

गाँव में सूखा पड़ा है परन्तु कलैक्टर के फ़ार्म में ऐसी कोई बात नहीं है। समाज सेविका के घर में शवर, टब, कूलर, गमले, सब हैं। पत्रकार को मुख्यमंत्री के जन्म दिन की पार्टी में जाने की जल्दी है। नगर के लोग गाँव की इस स्थिति से असम्बद्ध हैं।

जिन बच्चों को कालीन के कारख़ाने से मुक्त कराया गया हैं, वे नाकारा हो चुके हैं क्योंकि उनकी ऊँगलियाँ कट कर सख्त हो गई हैं। अब वे महीन काम करने के योग्य नहीं रहे। समाज सेविका केशो को पढ़ाने के लिए लेकर गयी थी परन्तु एक नौकर की भाँति घर का सारा काम कराती रही जिसके कारण वह अनुत्तीर्ण होकर गाँव लौट आया है। लाखन लड़ने, लूटने और आग लगाने को तैयार बैठा है। स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं है। लोग वैसे के वैसे हैं।

शासन में समस्या को दूर करने की राजनीतिक इच्छा का अभाव है, प्रशासन स्थिति से बचना चाहता है, समाज सेविका के लिए बाल-मज़दूर एक मुण्डू के समान है। ऐसे में बँधुआ मज़दूर बन कर जीना ही इनकी नियति बन चुकी हैं। इस प्रकार लेखिका ने बँधुआ बाल-मज़दूरों की समस्या को नाटक में अत्यंत सहानुभूति से उभारा है।

मृदुला बिहारी जी के पाँच नाटक संकलित हैं। नाम हैं – 'भँवर', 'तीसरे रास्ते का राही ', 'वे पाँच शब्द', 'देहरी' और 'अँधेरे से आगे'। ये नाटक नारी-मन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करते हैं। नारी की संवेदनशीलता, उसकी दृष्टि, उसका व्यवहार, ज्ञान और कर्म का क्षेत्र अपना अलग ही होता है। उसकी समस्याएँ कई अर्थों में पुरुषवर्ग की समस्याओं से भिन्न होती हैं। समाजगत मूल्यों और व्यवस्था के बीच उसका जीवन उसके मनोभाव अनेक स्तरों पर पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक आहत होते हैं।

'भँवर' नाटक की नायिका रंजना है। घर और नौकरी के बीच झूलती हुई नारी छटपटाहट को लेकर सृजन किया गया है। रंजना और अपने परिवार के साथ

वीरगंज से दिल्ली में स्थानान्तरण होता है। पति का वेतन कम था परन्तु वीरगंज छोटा सा नगर था जिसके कारण जीवन की आवश्यकताएँ कम थी। परिवार में प्रेम, सुख और शान्ति थी। दिल्ली महानगर है जहाँ पर तड़क-भड़क अधिक है। इस तड़क-भड़क को बनाये रखने के लिए धन चाहिए। सुधीर को अपने वेतन में से कुछ रुपया माँ को भी भेजना पड़ता है। ऐसी स्थिति में रंजना की भेंट अपनी एक पुरानी सहेली मीरा से होती है। रंजना की बातें सुनकर मीरा नौकरी करने के लिए उत्साहित होती है।

सुधीर प्रारंभ में रंजना नौकरी करे यह नहीं मानता है। मीरा के प्रोत्साहन से रंजना नौकरी करने के लिए तैयार हो जाती है। रंजना के नौकरी करने के परिणामस्वरुप घर में आ रहे सुख-सुविधा के उपकरण आते जाते हैं। आर्थिक निर्भरता की ओर बढ़ने के कारण रंजना की हीनता की ग्रंथि भी नष्ट हो जाती है। कभी दफ़्तर जाने में देर भी हो जाती है तो मैनेजर से गालियाँ सुनना पड़ता है। रंजना को मैनेजर की वह गालियाँ अपमानजनक प्रतीत होती हैं। रंजना को लगता है कि वह नौकरी रूपी भँवर में फँस गई है। वह नौकरी को छोड़ने का निश्चय करती है परन्तु सुधीर उसे ऐसा करने से रोक देता है। सुधीर की बातें सुनकर रंजना को लगता है कि नौकरी रूपी भँवर में कूदना तो आसान है परन्तु इस चक्कर से मुक्ति कठिन है। यहाँ आकर नाटक समाप्त हो जाता है।

'तीसरे रास्ते का राही' असफल प्रेम के उदात्त प्रेम के रूप में उन्नयन की कथा पर आधारित है। मामा की लड़की का विवाह है। वे अपनी बहन तथा भांजे-भाजियों को लेने के लिए आये हैं। संजना की परीक्षा चल रही है तथा वीना के प्रैक्टिकल जारी हैं। इन दोनों के कारण इनकी माँ दिल्ली जाने तथा विवाह में सम्मिलित होने में असमर्थ है। अंजना के पेपर हो चुके हैं अतः मामा उसे अपने साथ ले जाते हैं। मामा के पड़ोसियों का एक लड़का अमित है जो उनके घर आता जाता है। विवाह के दिनों में उसकी भेंट अंजना से होती है और दोनों एक दूसरे के प्रेमपाश में बंध जाते हैं। अमित को कांपटिशन में बैठना है अतः वह अंजना को वचन देता है

कि वह एक वर्ष के बाद उसे अपनी जीवन संगिनी बनाकर घर ले आयेगा।

मामा के घर विवाह संपन्न होने पर अमित से वचन लेकर अंजना अपने नगर जहानाबाद लौटती है। अमित और अंजना के बीच पत्रचार जारी रहता है। इधर अमित कांपटिशन में पास हो जाता है तथा घर वालों के दबाव से किसी और लड़की से विवाह कर लेता है। प्रेम और कर्तव्य में कर्तव्य की जीत होती है। दूसरी ओर अंजना के सामने विवाह का प्रस्ताव आता है परन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करती।

प्रेम में असफल होकर अंजना स्कूल में अध्यापिका की नौकरी कर लेती है। जिस स्कूल में अंजना पढ़ाती है, उस स्कूल में एक बालक पढ़ता है प्रसून। उसकी माँ नहीं है तथा स्नेह का भूखा है। अंजना उसे स्नेह तथा प्रेम देती है।

एक दिन प्रसून के पिता स्कूल में आते हैं जो जिला उपायुक्त हैं। अचानक वह अंजना को सामने पाकर आश्चर्य चकित रह जाते हैं। उपायुक्त अमित अपनी भूल का पश्चात्ताप करता है परन्तु अंजना उन पुरानी स्मृतियों को पीछे छोड़कर बहुत आगे निकल आयी है। अंजना के मन में अन्तर्द्वन्द्व चलता है और दो पथ उसके सामने आते हैं। पुरानी बातों को भूलकर अमित द्वारा रखे गये विवाह प्रस्ताव को मान ले या उसे अस्वीकार कर दे। अंजना इन दोनों रास्तों में से किसी को भी नहीं चुनती बल्कि तीसरे रास्ते को लेती है। यह तीसरा रास्ता, अमित के बेटे प्रसून को सदा के लिए गोद ले लेना। यहाँ आकर नाटक समाप्त होता है।

‘वे पाँच शब्द’ मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के आर्थिक अभावों और दबाओं को अभिव्यक्ति दी है। माया नाटक की नायिका है और नौकरी करती है। माया का पति किसी दूसरी कंपनी में नौकरी के लिए आवेदन दिया हुआ है। माया चाहती है कि नौकरी अजित को मिल जाये। माया ने कंपनी के डायरेक्टर के पी.ए. को खाने पर बुलाया है। इसके विपरीत अजीत का विश्वास है कि अच्छी नौकरी सिफ़ारिश से नहीं

बल्कि मेहनत और ईमानदारी से मिलती है। माया का विश्वास है कि आजकल हर काम के लिए पुश-पुल चाहिए। जब अजीत माया के इस कृत्य पर नाराजगी प्रकट करता है तो माया आज के परिवेश को समझाती है।

पी.ए. खाने पर आता है और अजीत को इंटरव्यू के लिए तैयार करते देखकर कहता है कि क्या होता है पढ़कर? यह इंटरव्यू वग़ैरह ढोंग है....एक फार्मिलिटी है..खानापुरी है....मेहनत और योग्यता की बात तो दिखावा है, पर यह नाटक भी ज़रूरी है।"[1] माया अजीत का विवरण नोट कराती है। इंटरव्यू होता है और अजीत को लगता है कि उससे अधिक योग्य उम्मीदवार का चयन होगा।

अजीत इंटरव्यू के बाद घर आकर माया को बताता है कि उसे नौकरी मिलने की बिल्कुल भी आशा नहीं है। ऐसे में माया की निराशा मोची पर आक्रोश बन कर उभरती है। उसे लगता है कि मोची उसे धोखा देकर रुपये ले गयो।

एक दिन माया गंदी बस्ती में कूड़े के ढेर, कचरा, कीचड़ और बदबू पार कर मोची के घर पहुँच जाती है ताकि उसे धोखेबाज़, विश्वासघाती आदि कहकर मन का गुबार निकाल सके। मोची की झोंपड़ी में पहुँच कर माया को पता चलता है कि उसकी पत्नी कुछ दिन पहले मर चुकी है और वह स्वयं बीमारी और भूख के कारण दुःखी है। मोची की बातें सुनकर माया का सारा आक्रोश बह जाता है। वह मोची के लिए बिस्कुट आदि मँगवाकर देती है। झोंपड़े से बाहर मोची उसे आशीर्वाद देता है - आपको मेरी दुआ लग जाये। घर पहुँच कर माया को पता चलता है कि इतने दिग्गजों के बीच अजीत को नौकरी मिल गयी है। माया सोचती है कि यह उस ग़रीब मोची की शुभ कामनाओं का ही फल है, उसके पांच शब्दों का फलितार्थ है। यहाँ पर नाटक समाप्त होता है।

[1] वे पाँच शब्द -77

'देहरी' नाटक में विधवा -पुनर्विवाह के प्रश्न को उठाया है। नाटक की नायिका हीरा, विवाह के तीन वर्ष बाद विधवा हो जाती है। छः माह मायके में रहने के बाद उसे ससुराल जाना है। हीरा की माँ चाहती है कि उसे ससुराल न भेजा जाये क्योंकि ससुराल वाले इस छोरी से बेजुबान जानवर की भाँति काम करवाएँगे। वह चाहती है कि किसनपुर वाले पारसनाथ से हीरा का पुनर्विवाह कर दिया जाए। हीरा के पिता को यह अच्छा नहीं लगता क्योंकि पारसनाथ की पहली पत्नी से पाँच बच्चे हैं और हीरा उसके पिता के समान है। अंततः हीरा को उसके ससुराल भेज दिया जाता है।

प्रतापगढ़ वालों का परिवार संयुक्त परिवार है जिसमें सास-ससुर जेठ जेठानी तथा उनका एक बच्चा है। देवर-देवरानी इस परिवार में रहते है फिर भी वे नगर से गाँव आते रहते हैं। हीरा को विधवा होने के कारण ग्रामीण समाज से उपेक्षा और तिरस्कार ही मिलता है। मायके से चलते समय हीरा के पिता ने जो शिक्षा दी थी अपने आचरण से सबको खुश रखना। उसकी शिक्षा का पालन करते हुए वह परिवार की दिन-रात सेवा करती है और परिवार से मिलने वाले प्यार के कारण हीरा को पग-पग पर सहारा देकर उसे टूटने से बचाती है। घर और परिवार से पूर्णतः जुड़ जाने के बावजूद भी हीरा के मन में एक खालीपन और एकाकीपन विद्यमान रहता है। इस खालीपन को वह डायरी लिख कर भरने का प्रयास करती है।

प्रभावती के भाई चेतन की नियुक्ति हीरा के गाँव में पटवारी के रूप में होती है। गाँव में नया घर लेने से पूर्व उसे इस संयुक्त परिवार में अपनी बहन प्रभावती के पास रहना पड़ता है। चेतन एक आधुनिक चेतना संपन्न युवक है। इस घर में रहते हुए वह हीरा की दशा देखता है। अतः चेतन सोचता है कि हीरा को अपने जीवन को पुनः शुरू कर लेना चाहिए। चेतन को लगता है कि भारतीय समाज में विधवा को विधवाओं की कहानियाँ सुन-सुना कर उसके मन में वैराग्य भाव को भर देते हैं। दया और सहानुभूति दिखाकर उन्हें बेचारी बना देते हैं। हीरा ने भी अपने चारों ओर एक

दीवार बना ली है अतः जिसे आसानी से तोड़ा जा सकता है।

चेतन का दृढ़ विश्वास है कि भाग्य को दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा बदला जा सकता है। परिस्थितियाँ बदली जा सकती हैं और अन्याय से लड़ा जा सकता है। वह अपने विचारों को कार्य-रूप देने के लिए अपनी बहन प्रभावती तथा जीजी को अपने माता-पिता के पास भेजता है ताकि हीरा से विवाह की बात को वे आगे बढ़ा सकें। माता पिता की सहमति, हीरा की स्वीकृति तथा बहन और जीजी की सहायता से चेतन नाटक के अन्त में हीरा को सामाजिक कुरीतियों की देहरी से बाहर निकालकर विधावा-पुनर्विवाह का मार्ग प्रशस्त करता है।

'अँधेरे से आगे' बाल विवाह की कुप्रथा से उत्पन्न समस्याओं को लेकर लिखा गया है। नाटक की नायिका जानकी का विवाह बचपन में ही किया जाता है। उसका पति पढ़ लिख कर एक उच्च अधिकारी बन जाता है। रामलाल, जानकी के समस्त गहने उतराकर उसे घर से बाहर निकाल देता है। पति से तिरस्कृत होकर जानकी विष खा कर या गले में फाँसी लगा कर जान लेने की सोचती है। इस लज्जा और ग्लानि का बोझ उससे उठाया नहीं जाता है। मायके आकर वह प्रतीक्षा करती है कि शायद रामलाल उसे वापिस ले जाने के लिए आ जाये परन्तु वह नहीं आता। पति की प्रतीक्षा करते -करते जानकी को लगता है कि उसका शरीर जकड़ने लगा है, वह अहिल्या की भाँति पत्थर की होने लगी। उससे सहानुभूति प्रकट करने वाले झूठे हैं। उस पर झूठी दया दिखाकर वे उसे बेसहारा बना रहे हैं। माँ का दुख तथा पड़ोसियों की ताने उसे और व्यथित करते हैं।

जानकी का भाई इंदर गाँव में आता है। इंदर जानकी को अपने साथ गाँव से नगर ले आता है। धीरे-धीरे जानकी भाभी के घर के समस्त कार्य सँभाल लेती है। आराम पाकर भाभी उसे स्वीकार कर लेती है। बच्चों को स्कूल छोड़ने आती-जाती जानकी को स्कूल की अध्यापिका मिलती है जो स्वयं इस प्रकार के अन्याय और अत्याचार का शिकार रह चुकी है। अध्यापिका कल्याणी का पति भी उससे इस प्रकार

का दुर्व्यवहार कर उसे घर से निकाल देता है। कल्याणी जानकी को पढ़ने की प्रेरणा देती है। उसमें हिम्मत और साहस भरती है तथा उसके आत्मविश्वास को जगाती है। कल्याणी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से जानकी बी.ए. कर लेती है तथा गाँव वापिस लौटती है।

दूसरी ओर जानकी के पति की प्रेमिका उसे छोड़कर किसी दूसरे से विवाह कर लेती है। रामलाल जानकी को घर वापस ले जाने के लिए आता है। इस समय जानकी अपने जीवन को दूसरी दिशा की ओर मोड़ चुकी है अतः वह रामलाल से बारह वर्ष का हिसाब माँगते हुए कहती है कि भगवान राम ने सीता का परित्याग करने के बाद जब सीता को पुनः अयोध्या लौटने को कहा था तो वह नहीं गई बल्कि सतीत्व की रक्षा के लिए धरती में समा गई। आखिर मेरा नाम भी जानकी है अतः वह भी नहीं कि जीवन जीने के लिए मुझे किसी का सहारा नहीं चाहिए। यहाँ आकर नाटक समाप्त होता है।

हिन्दी की प्रमुख कथाकार **मृणाल पाण्डे** जी के नाटक 'जो राम रचि राखा', 'आदमी मछुआरा नहीं था' और 'चोर निकल के भागा' जैसे अभिमंचित एवं चर्चित नाटकों की नाट्य लेखन के क्षेत्र में केवल सतत सक्रियता की दृष्टि से ही नहीं बल्कि रंगमंच से प्रत्यक्षतः जुड़कर गंभीरता पूर्वक रंग-नाटक लिखने की कोशिश करने की दृष्टि से भी एक उल्लेखनीय नाटक हैं।

मृणाल पाण्डे का नाटक **'जो राम रचि राखा'** उच्च या अभिजात्य वर्ग से आनेवाले तथाकथित विद्रोहियों और क्रान्तिकारियों के आंतरिक द्वैत या खोखलेपन को हमारे सामने रखना चाहती है। नाटक का नायक नवयुवक मन्ना सेठा धन्ना सेठ का अति उत्साही आदर्शवादी पुत्र है जो जनता और समता के रूमानी ख़्वाब देखता और क्रान्ति के गीत गाता है। परन्तु विडम्बना यह है कि जब वह अपने अभिजात्य वर्ग के संस्कारों से मुक्ति पाने और सामान्य जन के हित साधन के लिए चोरी करता है तो पकड़े जाने के बजाए सात-सात कमरे सम्पदा से भर जाते हैं, डाका डालता है तो

शहर जयजयकार करने लगता है, दीवान साहब अशर्फियों का तोड़ा भेंट करते हैं। राजा को घसीट कर अपमानित करता है तो अवतारी पुरुष माना जाता है और सारे आम राजा के सिर से उसकी पगड़ी उतार कर जूते मारता है तो उसे जीवन रक्षक मान कर बदले में राजकुमारी से ब्याह का उपहार दिया जाता है। मन्ना सेठ न केवल राजकुमारी से सप्तपदी ही करता है बल्कि महल और राजसिंहासन भी स्वीकार कर लेता है। यहाँ आकर नाटक समाप्त हो जाता है।

मृणाल पाण्डे का **'आदमी जो मछुआरा नहीं था'** नाटक लोक कथा से प्रभावित है। लेखिका ने मछुआरा से मछली रानी से तीन वर माँगे जाने की पुरानी कथा को एक दम ताज़ा सामाजिक, आर्थिक संदर्भों में जाँचा है।

लेखिका ने लोक-कथा का उपयोग आज के जीवन के चित्रण में इतनी कुशलता से किया है कि आज के व्यक्ति के भीतर और बाहर के अंतर्विरोध, विडंबनाएँ और विसंगतियाँ कई स्तरों पर एक साथ उजागर हुई हैं। लोक-कथा के द्वारा व्यक्ति के भीतर और बाहर की दुनिया के अत्यंत समकालीन संदर्भ में सामाजिक चेतना का उल्लेख किया गया है। लेखिका ने स्वयं अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा है - आदमी जो मछुआरा नहीं था - एक दुखांत नाटक लिखने का मेरा पहला अनुभव है। एक निहायत निजी पारिवारिक माहौल में उगता इसका कथानक अततः बाहरी दुनिया के विशाल समुद्र में जा मिलता है। कुछ बंधुओं को नाटक की शुरुआत के इस घरेलूपने को लेकर आपत्ति थी पर जैसे कि मैं एकाधिक जगहों पर एकाधिक बार कहती रही हूँ, बाहर की दुनिया में जो कुछ भी है, वहीं है, इसलिए हम चाहे घर के भीतर की स्थिति को परख रहे हों या घर-बाहर की, उन्हें अलग कर ही नहीं सकते"[1]

[1] आदमी जो मछुआरा नहीं था. प्राक्कथन - पृ -1

एक जनकथा के अनुसार मछुआरा न होने के कारण वह आदमी स्वभाववश उस मछली को जो वास्तव में मछली नहीं समन्दर की रानी थी, वापस समन्दर में फेंक कर नव-जीवन प्रदान करता है। रानी खुश होकर तीन वरदान देती है। शुरू में हिचकिचाता हुआ आदमी दो वरदान पाकर तरक्की करता है और बाद में मछली रानी के सत्त-खेल का खिलाड़ी बनकर स्वयं को मछुआरा समझने लगता है। तीसरे वरदान के समय वह खुद रानी के जगमग करते ताज पर ही हाथ डालने की कोशिश करता है। लेकिन रानी मुस्कान के साथ अपने आकार को विराट कर एक खतरनाक लपट में बदल जाती है; जिसे देखकर वह आदमी जो मछुआरा नहीं था डर से काठ हुआ, काठ से कोयला, कोयले से राख और रानी के सर पर का ताज जगमग करता रहा।

लेखिका के अनुसार - इस रचना का पूरा घटना-लोक और पात्र अति परिचित होने की भयावहता लिए हैं तो यह अनायास नहीं, और ना हीं यह बात कि उन पात्रों के विकास और बाहरी जीवन का नाल अनिवार्यतः उनके घर के अन्धेरे से ही जुड़ी हुई है। इसे अस्वीकार की नाल इस नाटक अनिवार्य की त्रासदी से कम बड़ी त्रासदी न होगी।"[1]

व्यक्ति और समाज तथा घर और बाहर के अन्दरूनी अटूट रिश्ते को देखते हुए बेशक नाटक की शुरुआत के घरेलूपन को लेकर आपत्ति करना बहुत सही और सार्थक नहीं होगा। - पर परिवारों से ही बह-बह कर बाहर भी जाता है, जो धीरे धीरे जड़ों को कुतर खाता है।"[2] नन्ददुलारे और उसके परिवार की त्रासदी के बुनियादी कारणों को जाने-समझे बिना आगे बढ़ना भी मुमकिन नहीं है। हम देखते हैं कि पहले अंक के दूसरे दृश्य के अन्त में 'नन्ददुलारे का काम हो गया है' यानी वह सत्ताधारी की कृपा से राजपत्रित कर्मचारी बन गया है। व्यक्तिगत स्तर पर खासशाही सलाहकार बन कर वह अपने घर परिवार के लिए तमाम सुख-सुविधाएँ और मान-

[1] आदमी जो मछुआरा नहीं था. प्राक्कथन - पृ -2
[2] आदमी जो मछुआरा नहीं था - पृ -22

सम्मान जुटाता है तो राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार का उन्मुलन करने के साथ-साथ शहरों में कला-दीर्घएँ खुलवाने लोक कलाकारों के अनुदान दिलवाने आम लोगों को रोटी, कपडा, मकान स्कूल और अस्पताल उपलब्ध करवाने तथा शहरों में दूध की नदियाँ बहा देने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करता है।

इस प्रकार लेखिका ने नन्ददुलारे और उसके परिवार की त्रासदी के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक चित्रण को सशक्त और सजीव रूप में अभिव्यक्ति की है।

'चोर निकल के भागा' एक हास्य प्रधान नाटक है। लेखिका मृणाल पाण्डे इस में मानव -मूल्यों के बारे में प्रस्तुत करती हैं। इस में जो पात्र है रामऔतार, रमेश, महेश, सुरेश और नीता आदि बेरोजगार हैं। वे अपनी रोज़गारी के लिए कई प्रकार के काम करते हुए अपने जीवन गुज़ारते हैं। पहले वे एक नाटक कंपनी में नाटक खेलते हुए दिन चलाते रहते हैं। वहाँ से निकलने के बाद वे काम का तलाश में भटकते रहते हैं। जब इन का मुलाक़ात बाबा से होती है तब इन चारों बाबा के सम्मुख अपने अपने दुःख का प्रस्ताव रखते हैं तो बाबा उन के दुःख को दूर करने के लिए दो प्रकार की चीज़ भभूत देते हैं - एक का नाम है अणिमा, दूसरी गरिमा है। और इन्हें समझ बूझकर काम करने के लिए आग्रह करते हैं। वे चार -रमेश महेश, सुरेश और नीता मिलकर गेंदुलाल के घर पहुँचते हैं। साथ ही उनकी पत्नी शरीफ़ा से भी मिलते हैं। गेंदुलाल जो पहले नाटक कंपनी में नाटक खेलते थे बाद में वहाँ से निकलने के बाद वह खुध दि न्यू अल्फेरड दिलकश बैण्ड ऑफ़ बाब्बे को शुरू करते हैं और हारमोनियम बजाते हुए अपने जीवन चलाते हैं। वह कहते हैं कि बाबा भी पूर्वाश्रम में नाटक कंपनी के मालिक थे। धोखेबाज़ों के हाथ वह धोखा खाकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं और बाद में बाबा बनकर घूमने लगते हैं। इस के बाद कलाकारों की दुःखद स्थिति के बारे में वार्तालाप होता है। अपनी गरीबी को दूर करने के लिए ताजमहल को चोरी के विचार भी करते हैं। इस नाटक में युवा पीढ़ी के आक्रोश

आक्रन्दन की भावना दिखाई देती है।

वास्तव में यह एक फांटसी भी है। जिस के सहारे लेखिका उन मानव मूल्यों पर मँडराते ख़तरों को रेखांकित करती है, जिनकी सफलता मनुष्य जाति की तमाम कलात्मक उपलब्धियों को निरर्थक कर देंगी। साथ ही वह कलाओं के उस जनतंत्र को भी लक्षित करती हैं। इस प्रकार लेखिका ने युवा पीढ़ी के बेरोज़गारी, और कलाक्षेत्र में होने वाली धोखेबाजी को हमारे सामने रखने की कोशिश की है।

मंदाक्रान्ता मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित विंध्या के अंचल का जीवन चित्रण करने वाला नाटक है। मैत्रेयी ने इस नाटक में सोनपुरा तथा श्यामली गाँव के चित्रण के माध्यम से नारी के संघर्ष की कभी न ख़त्म होने वाली कहानी प्रस्तुत की है। नाटक में चित्रित नारी पात्र किसी न किसी समस्या से संघर्षरत हैं।

नाटक के केन्द्र में मंदा नामक एक लड़की है, जो संपूर्ण नाटक में सामाजिक, जैविक, आर्थिक, राजनैतिक, मानसिक धरातल पर संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। मंदा सर्वप्रथम गाँव के अस्पताल में डॉक्टर लाने के प्रयास करती है। शहर जाकर मात्र अर्ज़ी देने से कोई डॉक्टर नहीं आने वाला, यह उसे अच्छी तरह पता है। वह गाँव के प्रधान के साथ हर रोज़ अफ़सरों के पीछे चक्कर लगाती है। हर शाम निराश होकर गाँव लौटना उसकी नियति बन चुकी है। अंत में उसे यह समझा जाता है कि जब तक वह इन अफ़सरों को घूस नहीं देगी तब तक काम पूर्ण होना असंभव है। लेकिन आगे महाराज के प्रोत्साहन से मंदा फिर से खड़ी होती है और मज़दूरों को शोषण से मुक्त कराने का संकल्प करती है

स्वाभिमानी मंदा सोनपुरा में आकर सामूहिक संघर्ष और सामाजिक आंदोलन के मार्ग को अपनाती है। यहाँ उसका अलग व्यक्तित्व सामने आता है। अपने जीवन को नया मोड़ देकर गाँव की भलाई का लक्ष्य सामने रखकर वह आगे बढ़ती है। उसके द्वारा स्वीकृत यह मार्ग उसके होने का नया अर्थ प्रदान करने वाला है। अरविंद

जैन के अनुसार -शरीर सौन्द्रर्य और विवेकहीन प्रतिशोध के दोनों अतिवादी रास्तों के बजाए मंदा सामूहिक संघर्ष और सामाजिक आंदोलन की पगडंडी पर निकल पड़ती है। उसे व्यक्तिगत दुखों से उभरने का यही विकल्प बेहतर लगता है। मान सम्मान या अपमान की चिंताओं को छोड़ अपने होने और जीने को एक गहरा अर्थ देने की कोशिश में मंदा व्यक्ति चेतना को विलीन कर देती है।

अल्प शिक्षित लड़की मंदा का सामाजिक चेतना से परिपूर्ण रूप अभिलाखसिंह से संघर्ष करते समय तीव्र दिखाई देता है। अभिलाख सिंह के द्वारा घटित मज़दूरों के शोषण के विरोध में दृढ़ता से खड़ी रहकर उन्हें उनका हक़ दिलवाने की क़सम पूर्ण करना उसके जीवन का लक्ष्य बन गया है। अभिलाख सिंह के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए गाँव वालों की सहायता से टैक्टर ख़रीदने का प्रयास आरंभ करती है।

मंदा को अपनी अपेक्षा सगुना की माँ की चिन्ता है। दूसरे दिन मंदा के सामने दो मार्ग हैं एक मकरंद को मिलने के लिए रुकना और जीवन की वह खुसियाँ प्राप्त करना जिनका वह कई सालों से इन्तजार कर रही है। सगुना की माँ को जमानत पर छुड़वाने के लिए मकरंद का मोह त्यागना। कर्तव्य और प्रेम इस द्वन्द्व से वह कर्तव्य को अपनाती है। नाटक के अंत में वह बस में बैठकर अपने उद्धेश्य की पूर्ति के लिए निकल पड़ती है। अपनी खुशी की अपेक्षा उसे गाँव के लोगों की चिंता है। अपने जीवन की आहुति देकर गाँव को सँवारना उसका लक्ष्य बन जाता है। अपना जीवन भी अपना न मानकर गाँव के लोगों के प्रति समर्पित करती है।

2. पात्र और चरित्र चित्रण

नाटक में पात्र महत्वपूर्ण योगदान रखते हैं। नाटक की सफलता असफलता इन्हीं के ऊपर निर्भर होती है। डॉ. शर्मा ने पात्र के विषय में लिखा है कि - वे व्यक्ति जिन के द्वारा नाटक में कथा की घटनाएँ घटित होती हैं अथवा जो उन घटनाओं से

प्रभावित होते हैं, पात्र कहलाते हैं।"[1]

समकालीन हिन्दी महिला नाटक नारी के अनेक रूपों को प्रस्तुत करता है परन्तु प्रगतिशील-चेतना की उसमें प्रमुखता है। समकालीन महिला नाटककारों की यह मान्यता है कि चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए ज़रूरी नहीं कि वह निर्दोष हो। महान-से महान चरित्र में भी कमज़ोरियाँ होती हैं। चरित्र को सजीव बनाने के लिए कमज़ोरियों का दिग् दर्शन करने से कोई हानि नहीं होती, बल्कि वही कमज़ोरियाँ उस चरित्र को मनुष्य बना देती हैं। निर्दोश चरित्र तो देवता हो जाएगा और हम उसे समझ नहीं सकेंगे। ऐसे चरित्र का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों के सभी पात्र अपने चारित्रिक गुण-दोषों सहित उपस्थिति हुए हैं इसलिए अधिक प्रभावशाली और विश्वासनीय हैं।

कुसुम कुमार जी के **'सुनो शेफाली'** नाटक में पात्र इस प्रकार हैं - शेफाली, बकुल, मनन आचार्य, सत्यमेव दीक्षित, गेरू, शेफाली की माँ, मिस् साहिबा, स्त्री-पुरुष ,पुजारिन युवती, भजन मंडली, अँग्रेज़ी फ़ोटोग्राफ़र और शिवालय का पूजारी आदि।

शेफाली नाटक की मुख्य पात्र है शेफाली जो उच्च व्यक्तित्व और अच्छी स्वभाव वाली हरिजन लड़की है। बकुल जो उच्च जाति के लड़के से प्यार करती है पढ़ी-लिखी होने के नाते भी समाज में कई कटु अनुभवों का सामना करती है। फिर भी अपनी हिम्मत ना खोकर समाज के उद्धार के लिए और निम्न जाति के उद्धार के लिए कोशिश करती है। वह बकुल के पिता से अपनी शादी करने का इरादा बदल देती है और अपने प्रेम का त्याग करती है और मनन ज्योतिषी से सुझाव भी लेती है तथा समाज के प्रति अपना आधुनिक विचार अटल बना देती है। उदाहरण के लिए -
शेफाली : (दुःख से कानों पर हाथ रखकर चिल्लाती है) बस करो, अम्मा, बस करो।

---
[1] हिन्दी गीती नाट्य स्वरूप और विकास - डॉ. श्याम किशोर - 16-17

तुम अभी जात-बिरदारी के सपने देख रही हो.... बचपन से लेकर अब तक जिन जात-बिरादरियों के लिए मेरी आँखों से क्षोभ का लावा निकलते तुमने देखा है, उसी को फिर तुम उन दमघोंटू दायरों में खड़ा करके देखने लगती हो?...शायद तुम कुछ और सोचती हो....तुम सोचती हो अम्मा, मेरे झूठे हुए शरीर का क्या होगा?....इसका कुछ नहीं बिगड़ा..कुछ नहीं...कुछ नहीं बिगड़ा है अगर तो मेरे अन्दर ..मेरे अन्दर बहुत कुछ बिगड़ गया, माँ। जो इतनी जल्दी बिगड़ता शायद तो अच्छा था।"[1]

बकुल उच्चवर्ग का लड़का है। शेफाली से प्यार करता है। अपने पिता की बातों पर चलता है। पिता के राजनीति उद्धार एवं चुनाव में हरिजन जाति को अपने पक्ष में लेने के स्वार्थपूर्ण विचार का समर्थन करता है। शेफाली से इसी कारण शादी करने के लिए तैयार होता है। उनके सामने अपना स्वतंत्र विचार नहीं रखता है - बकुल - सिर्फ आजकल ही तो थोड़ी मसरूफियत है, आली....तुम जानती हो बाबा के चुनाव लड़ने के दिन हैं....हजारों तरह के काम हैं...दौड़-धूप है...मगर बाबा का बेटा तो एक ही है..... सब कुछ उसी के ऊपर ही तो है... ।"[2]

'रावणलीला' नाटक में पात्र इस प्रकार मौजूद हैं - रावण, काशीराम, मारीच, चेताराम, शूर्पनखा, धरमचंद, सीता, लक्ष्मण, जगन्नाथ, हनुमान, मेघनाथ, पहरेदार, विभीषण और वज्रदंत आदि।

रावण पात्रधारी **करतार सिंह** अच्छा कलाकार और खूब अभिनय करता है। जब नाटक मंडली से चंदूलाल चला जाता है तब करतारसिंह जिगरपुर गाँव में रामलीला नाटक खेलने आता है। करतारसिंह को अच्छा अभिनय के साथ अपने आप पर अभिमान भी है। अपने निजी अवसर के लिए नाटक मंडली के मालिक काशीराम से झगड़ा करता है और अपनी मांग के अनुसार प्रतिदिन के हिसाब से पूछता है ....मुझे आज अभी पैसों की ज़रूरत हैं, दिलवा दीजिये। दूसरी बात यह है

[1] सुनो शेफाली - 39
[2] सुनो शेफाली - 21

कि इस बार की रामलीला में रावण का पार्ट करने के पैसे पचास रुपये प्रतिदिन के हिसाब से लूँगा।"[1] काशीराम के इनकार से नाटक के बाकी पार्ट करने के लिए तैयार नहीं होता है। तब समझाने के बाद अभिनय जारी रखता है। नाटक के अंतिम दृश्य में राम रावण के युद्ध के समय राम के हाथ से रावण को मरना था लेकिन नहीं मरता और अपनी उंगलियों के इशारे से फीस की मांग करता है। पचास रुपये से अस्सी रुपये की मांग पर जोर देता है। इस प्रकार करतार सिंह समकालीन संदर्भ में कलाकारों की दयनीय स्थिति का प्रतीक है।

काशीराम रामलीला नाटक मंडली का मालिक है। इस मंडली को कई मुसीबतों को सहते हुए आगे बढ़ाता है। हर साल जिगरपुर गाँववालों के चंदा से नाटक चलाते हैं। नाटक कलाकारों को कम वेतन देकर अपना उल्लू सीधा करता है। करतारसिंह जैसे प्रमुख कलाकार की मांगे पूरा करता है। सेठ धरमचंद जी की सहायता से नाटक को मजबूत करने का प्रयत्न करता है।

'पवन चतुर्वेदी की डायरी' नाटक में पहला पाठक, दूसरा पाठक, डॉ. चतुर्वेदी, पवन चतुर्वेदी, पवन की माँ, पवन की पत्नी, अग्निहोत्री, इला मेहता, पहला शवयात्री और दूसरा शवयात्री आदि पात्र मौजूद हैं।

डॉ. चतुर्वेदी अपने जीवन में सफल इन्सान रहे हैं। उनकी उम्र पचहत्तर के आस-पास है। वे उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त डॉक्टर हैं। इस समय वे रिटाइर हैं और काफ़ी वृद्ध भी हैं। वे सिद्धांत प्रिय हैं। अपने कार्य के लिए समाज में जाने जाते हैं। डॉ. चतुर्वेदी अपने जीवन में काफ़ी परिश्रम किये हुए इन्सान हैं। उनकी सफलता के पीछे सिद्धांत और परिश्रम ही है। उन्होंने अपने सिद्धांतों का पालन मरते दम तक किया है। अपनी सफलता के लिए दूसरों पर कभी निर्भर नहीं रहते हैं। वे समाज के लिए भी कार्य करते थे। इसलिए समाज में उनकी इज्जत है। इस संदर्भ में डॉ. चतुर्वेदी

---

[1] नटरंग- 34 -23

का पत्नी उनके बारों में इस प्रकार कहती है - पिता का नाम, पिता की प्रतिष्ठा भी हर किसी के नसीब में नहीं होती। तेरे बाबू का शहर में इतना नाम है ....।[1]

डॉ. चतुर्वेदी अपनी संतान से कुछ अपेक्षा करते हैं कि उनकी तरह उनकी संतान भी सफलता के शिविर छुए। डॉ. चतुर्वेदी की संतान उनकी कसौटी पर खडे नहीं उतरते। उनकी बेटी ने एक पेइन्टर से प्रेम विवाह किया है जिससे डॉ. चतुर्वेदी का विरोध था। कुछ समय तक अपनी बेटी से मिलने को भी नहीं जाते थे।

डॉ. चतुर्वेदी अपने बेटे पवन से बहुत नाराज़ रहते हैं। चाहते हैं कि बेटा अपने पैरों पर खड़ा होकर अपना जीवन सफल करे। उनकी चाह है कि पवन उनकी मदद के बिना कुछ कर दिखलाए। वे अपनी सिद्धांत प्रियता के कारण पवन की मदद नहीं करते थे। इससे उनका बेटा हमेशा नाराज रहता है। दोनों के बीच इस मुद्दे को लेकर बहस होती है। वे चाहते हैं कि उनका बेटा भी उनकी तरह समाज में पैसे के साथ नाम भी कमाए।

पवन चतुर्वेदी नाटक का नायक और एक असफल युव पीढ़ी का प्रतीक है। इसे सफल व्यक्तियों से चिढ़ है। पवन ऐसे युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जो संकल्प विहीन हैं। पवन ने जीवन में ऊँचाइयों को छूना चाहा लेकिन उस के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया है। हर बार वह दूसरों की बातों में विश्वास रखता है। इस संदर्भ में डॉ. चतुर्वेदी कहते हैं कि - ज्यादा मुखालफत नहीं करूँगा, लेकिन तुम्हारे बेटे से कुछ भी आशा की जा सकती है....वह सुबह से शाम तक निराश लोगों की संगति में रहता है...किसी दिन कोई गंदी मिसाल कायम करेगा।"[2]

पवन ने अपनी जिंदगी में अनेक प्रकार के काम किए हैं लेकिन कोई भी कार्य दिल लगाकर नहीं किया है। वह चाहता है कि थोड़े ही समय में पैसा और नाम

---

[1] पवन चतुर्वेदी की डायरी - 30
[2] पवन चतुर्वेदी की डायरी - 35

कमाकर उच्च वर्ग का प्रतिनिधि बन जाय। पवन कई प्रकार के काम करने के लिए कोशिश करता है लेकिन कुछ ही दिनों में उसे छोड़ा देता है। इस प्रकार पवन एक संकल्प विहीन युवक है जो अनेक उलझनों में फँसे जीवन से झूझ रहा है।

'बिना दीवारों के घर' नाटक में अजित, शोभा, जयन्त, मीना बंसी, डॉक्टर, सेठ अमृतलाल, शुक्ला, श्रीमती शुक्ला, चावला, श्रीमती चावला, चौधरी और श्रीमती चौधरी आदि पात्र मौजूद हैं।

अजित नाटक के मुख्य पात्र के रूप में सामने आता है। शोभा की पति होने के बाद भी शक्की इन्सान के रूप में नाटक में दिखाई देता है। अपनी पत्नी शोभा पर हमेशा शक करते हुए अपने ज़िंदगी को और घर के महौल को व्यर्थ ही ख़राब करता है। जब शोभा महिला विद्यालय में नौकरी जयन्त द्वारा हासिल करती है तो अजित शोभा को शक की नज़र से देखना शुरू करता है।... देखो अजित दो महीने से जो कुछ भी तुम्हारे मन में उमड़-घुमड़ रहा है उसे कह डालो....आज कुछ भी मन में मत रखो। मैं भी तो देख लूँ कि किस स्तर तक तुम उतर सकते हो...."[1] शोभा और जयन्त के बीच में अवैध संबंध को जोड़ता है। अजित के कारण शोभा घर छोड़कर चली जाती है। इस कारण से अजित अपने प्रिय दोस्त जयन्त से नफ़रत करता है। इस प्रकार अजित का चरित्र क्रोधी एवं शक्की व्यक्तित्व के रूप में चित्रित होता है।

शोभा एक पढ़ी-लिखी आधुनिक स्त्री है। नाटक की नायिका शोभा अजित की पत्नी है और महिला कॉलेज में प्राध्यापिका है। नौकरी पर जाने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि जितना समय वह अपने घर और बच्चों को देती थी, उसी में कुछ समय अजित को भी देती थी। नौकरी के कारण शोभा की अपनी कुछ व्यस्तताएँ हैं जिसके कारण वह जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती है। शोभा नौकरी करने के कारण आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो चुकी है नौकरी के कारण उसके व्यक्तित्व

---

[1] बिना दीवारों के घर - 87

का विकास तो होता है परन्तु परिवार भी टूटता है। इस प्रकार शोभा समाज में विकास की ओर बढ़ती हुई आधुनिक नारी वर्ग की प्रतीक है। इस संदर्भ में जीजी शोभाके बारे में इस प्रकार कहती है कि - .....आज उसका अपना अलग व्यक्तित्व है। उसमें प्रतिभा है... ।[1]

नाटक के अन्य सभी पात्र गौण हैं। किन्तु सभी पात्र सहज, स्वाभाविक और सजीव प्रतीत होते हैं।

'एक और अजनबी' नाटक में सानी, मणि, चार पाँच स्त्रियाँ, माँ, बूढ़ी दादी, रूई धुननेवाला, कान्ता, दो पुरुष, नौकरानी, स्त्री, पुरुष, जगमोहन, इंदर खोसला और जगदीश आदि पात्र मौजूद हैं।

शानी इस नाटक की नायिका है और जगमोहन की पत्नी। वह अत्यंत सुन्दर है और इसलिए सौन्दर्य प्रेमी पति की प्यारी भी। शानी जगमोहन से विवाह कर लेती है परन्तु उसे घर की चार दीवार में बन्द रहकर जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं है। वह खुली हवा में जीना चाहती है। ... अगर में कहूँ तो खुली हवा में जीना चाहती हूँ.... ।"[2] शानी ने ऐसा जीवन जीने के सपने देखे थे जिन्हें पूर्णतः समर्पित होने के कारण वह विश्वास की गहन अन्तश्चेतना से लिप्त होकर अपने अहं का विसर्जन कर उससे संशयहीन प्रेम की अपेक्षा करती है।

शानी और इंदर के मध्य प्यार का दूसरा रूप अर्थात् प्यार एक हवस है जो क्षण भर में शान्त हो जाता है। शानी का यह कहना कि वह क्षण है जिसे मैंने चाहा था, उसकी उस मानसिक दशा को प्रस्तुत करता है जो इंदर से विवाह न होने के कारण विकसित हो गयी थी। इस प्रकार जब मातृत्व में ही स्त्री जीवन की पूर्णता है, वही अंतिम सत्य होता है, तो पूर्ण के प्रति मोह या सत्य का सबल होना भी स्वाभाविक है। शानी विघटित व्यक्तित्व तथा संत्रास से गुज़रकर आधुनिक नारी के

---

[1] बिना दीवारों के घर - 38

[2] **एक और अजनबी - 45**

निकट आ जाती है।

इंदर खोसला पढ़ी लिखी आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतीक पात्र है और कंपनी मौनेजर के रूप में नौकरी करता है। शानी से प्यार करता है और अपने कैरियर को शानी से अधिक महत्वपूर्ण मसझता है। इंदर पढ़ाई के लिए अमेरिका चला जाता है इंदर जगमोहन के द्वारा आमंत्रित किया जाता है। पार्टी में अपनी भूतपूर्व प्रेमिका को पहचानता है और फिर से उससे संबंध स्थापित करना चाहता है। जगमोहन के बाहर जाने के बाद शानी की प्रोत्साहन से उससे शारीरिक संबंध स्थापित करता है। इंदर पाश्चात्य प्रभाव से ग्रस्त युवा पीढ़ी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। **....** इंदर : अरे अमेरिका की बात ही कुछ और है। क्या जान है वहाँ, क्या जिंदगी ! यहाँ लौटकर तो लगता है, जेल में घोट दिया गया हूँ.....।**"**[1]

'जादू का कालीन' नाटक में दादी रमई, केशो का बाप, माई, केशो की माँ संतों, लक्खी, मालिक, लेबर, ऑफ़िसर, कलेक्टर, समाज सेविका, पत्रकार आदि पात्र मौजूद हैं।

दादी - गाँव के अकाल एवं सूखे के कारण अपने घर की संतों से जंगल से लकड़ी लाने की आग्रह करती है। जब संतों इनकार करती है तो वह गुस्सा हो जाती है। माई कहती है कि जंगल के लकड़े पूरा काट दिया जाता है। दादी में भूख की प्रस्तुत स्पष्ट होती है।

कोशो का बाप - अपने बच्चों को सूत के मिल वालों से पैसे दिलवाता है। अपने परिवार की बात न सुनते हुए बच्चों को मज़दूर बना देता है। बाप का कर्तव्य निभाने में वह असमर्थ निकलता है।

संतों, कोशो, लाखन - ये बच्चे मिल में काम करते करते अधमरे हो जाते हैं। जब मिल में लेबर ऑफ़िसर, समाज सेविका, पत्रकार इन्स पेक्शन करते है तो इन बच्चों को खोजकर इन्हें मिल से रिहा करते हैं। बदले में इन बच्चों के जीवन के

---

[1] **एक और अजनबी - 93**

सुधार के लिए गाय दी जाती है। लाखन में विद्वेष की भावना अपनी ग़रीबी के प्रति होती है और स्थितियों के प्रति समझदारी भी रखता है।

मृदुला बिहारी जी के पाँच नाटक हैं – 'भँवर', 'तीसरे रास्ते का राही', 'वे पाँच शब्द', 'देहरी' और 'अँधेरे से आगे'।

भँवर नाटक में रंजना, सुधीर, मीरा, सुनन्द, दीपा, मिसेज चन्द्रा, मैनेजर और बाबू आदि पात्र मौजूद हैं।

रंजना - 'भँवर' नाटक की नायिका है। रंजना का चरित्र अत्यंत परिवर्तनशील है। आरंभ में रंजना मध्यवर्ग की एक ऐसी सीधी साधी गृहिणी के रूप में सामने आती है, जो मेहनत ईमानदारी और योग्यता में विश्वास रखती है। दिल्ली महानगर जहाँ तड़क-भड़क अधिक है वहाँ रंजना अपना घर सँभालना है और परिवार की आर्थिक स्थिति को देखकर उसे दबाव या स्थगित करना पड़ता है। रंजना आज तक घर की चार दीवारों में रहती है। लेकिन अपने घर की आर्थिक स्थिति को सँभालने के लिए नौकरी करना चाहती है। उसके लिए मीना से सहायता माँगती है। लेकिन सुधीर को उसका नौकरी करना पसंद नहीं है तो वह स्पष्ट कहती है घर की चार दीवारों ही तो औरत को एक सीमा में बाँध देती है यही सीमा बंधन है इस सीमा के ख़िलाफ़ बगावत्त है। **...** आज हजारो औरतें नौकरी कर रही हैं....नौकरी ने उन्हें इकनॉमिक इनण्डिपेडेंस ही नहीं कुछ घण्टों के लिए घर के घुटन से मुक्ति भी दी है....।"[1]

इस प्रकार रंजना महानगर की आत्मविश्वास से पूर्ण नारी, नारी के अस्तित्व ,आर्थिक आत्मनिर्भरता आदि की प्रतीक पात्र मानी जा सकती है।

सुधीर नाटक में नायक के रूप में प्रस्तुत होता है। सुधीर रंजना के पति है और एक कंपनी में नौकरी भी करता है। वह मिले हुए वेतन से अपनी परिवार को संतुष्ट करने की कोशिश भी करता है। स्त्री के बाहर जाकर नौकरी करने के विषय

---

[1] भँवर - 23-34

पर अपनी सोच अलग रखता है। ... क्या तुम्हारे पति भी नहीं चाहते थे कि तुम नौकरी....रंजना : नहीं वे क्यों चाहेंगे भला? घर में अच्छी-खासी एक दासी है, क्यों आजाद करें उसे ?......”[1] अपने परिवार में सुख और शान्ति रखने के लिए हमेशा कोशिश करता रहता है। लेकिन रंजना को नौकरी करने से शुरुआत में मना करता है आर्थिक विकास के कारण अपने घर में आ रहे सुख-सुविधा के उपकरण को देखकर रंजना को नौकरी छोड़ते वक्त मना कर उसे रोक देता है। इस प्रकार सुधीर एक मामूली मध्यवर्गीय पुरुष मानसिकता का प्रतीक है।

‘तीसरे रास्ते का राही’ नाटक में अंजना, अमित, संजना, बीनू माँ, मामा, मामी, मौसी, मधु और प्रसून आदि पात्र मौजूद हैं।

अंजना - अंजना पढ़ी -लिखी लड़की है। सुन्दर है, स्पष्ट वक्ता है, निडर है और जीवन को खुली आँकों से देखने और जीवन से जूझने में अटल विश्वास रखती है।.....मैं तो अपने पैरों पर खड़ी हूँ.... ।”[2] अमित से प्यार करती है और दोनों विवाह करने के लिए वचन लेते है। अमित का वचन लेकर अंजना अपने घर लौटती है। लेकिन अपने घरवालों की बात सुनकर अमित अंजना के जगह पर दूसरी लड़की से विवाह कर लेता है। अंजना यह सुनकर बहुत व्यथित होती है।

अंजना पहले अमित के साथ विवाह करके अपनी पहचान बनाना चाहती थी परन्तु भाग्य ने इसे होने नहीं दिया। अब वह अपने जीवन में किसी पुरुष को जोड़े बिना अपनी पहचान बनाना चाहती है जिसे उपायुक्त अमित के व्यक्तित्व में विलीन करके खोना नहीं चाहती।... क्या स्त्री की पहचान किसी पुरुष का सन्दर्भ जोड़े बिना नहीं हो सकती?....अपने भरोसे जीना आसान है संजू....।”[3] अंत में अमित के

---

[1] भँवर - 22
[2] **तीसरे रास्ते का राही - 56**
[3] **तीसरे रास्ते का राही - 63**

बेटे प्रसून को सदा के लिए गोद ले लेना ही तीसरा रास्ता है। इस प्रकार अंजना को समकालीन नारी की आर्थिक निर्भरता का प्रतीक माना जाता है।

अमित इस नाटक का नायक है। वह प्रारंभ से ही उत्साही, संघर्षशील और दृढ़ चरित्र है। वह अंजना से प्रेम करता है और उसके साथ विवाह करके घर बसाना चाहता है। लेकिन उनके कैरियर के लिए कांपिटीशन परीक्षा केलिए कुछ दिन तक कहीं दूर चला जाता है। कांपिटीशन पास हो जाने के बाद अपने माँ-बाप द्वारा तैय की गयी लड़की से शादी कर लेता है। अमित जिला उपायुक्त पद प्राप्त करके एक दिन स्कूल चक करने के लिए जाता है जिस स्कूल में उसका बेटा प्रसून पढ़ रहा है। अचानक स्कूल में अंजना से मुलाक़ात होती है अंजना को देखकर अपनी भूल का पश्चात्ताप करता है।

'वे पाँच शब्द' नाटक में माया, अजीत, संजू, टीना, मोची और चेतू पात्र मौजूद हैं।

माया इस नाटक की नायिका है और नौकरी करती है। वह एक दयाशील, क्षमाशील संघर्षशील, गृहणी और अर्धांगिनी है। पति को जीवन-प्राण माननेवाली माया चाहती है कि पति की मनोकामन पूरी हो, वह भी समाज इज्जत से जी सके। इस लिए माया ने उस कंपनी के मालिक के पी.ए. को खाने पर बुलाया है। माया का विश्वास है कि हर काम के लिए पुष-पुल होता है।**...** मुझे खुद यह सब पसन्द नहीं, पर इस व्यवस्था और परिस्थिति ने हमें कुछ इस तरह का बना दिया है कि हम जहाँ समझौता नहीं करना चाहते वहाँ भी समझौता करना पड़ता है.... ।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि संघर्षशीलता उसके व्यक्तित्न का अभिन्न अंग है। कोई ओढ़ा हुआ मुखौटा नही

[1] वे पाँच शब्द - 81

अजीत नाटक के नायक के रूप में सामने आता है। अजीत एक पढ़ा लिखा युवा पीढ़ी का प्रतीक है। किसी दफ्तर में नौकरी करता है लेकिन अपने आर्थिक स्ववलंबन के लिए दूसरी नौकरी के लिए आवेदन देता है। माया अजीत की पत्नी है और चाहती है कि उस कंपनी के डाइरेक्टर के पी.ए से शिफारिश करवाने से नौकरी मिल जाएगी। लेकिन अजित मानता है कि अच्छी नौकरी के लिए सिफारिश से नहीं बल्कि मेहनत और ईमानदारी की जखरत है। नाटक के अंत में उसी कंपनी में नौकरी पाता है जिस कंपनी के लिए आवेदन दिया है। इस प्रकार अजीत आज के युवा पीढ़ी का प्रतीक है।

'देहरी' नाटक में हीरा, माँ बाबु, प्रभुदयाल, प्रभावती, मँझली, सोनू, अम्माँ जी और चेतन पात्र मौजूद हैं।

हीरा नाटक की नयिका है। विवाह के बाद तीन वर्ष बाद विधवा हो जाती है। कुछ दिनों के बाद वह ससुराल जाती है। हीरा सास-ससुर की सेवा करने में दिन-रात भूल जाती है। लेकिन अपने वैधव्य के कारण पग-पग टूटती है। हर वक्त अपना खालीपन और एकाकीपन नहीं भूलती। इस की अभिव्यक्ति डायरी में लिख कर भरने का प्रयास करती है। हीरा हमारे समाज में फैले हुए अँधविश्वासों और आचारों से ग्रस्त विधवा स्त्री के जीवन का सशक्त उदाहरण है।

चेतन इस नाटक का नायक और पढ़ा -लिखा युवक है। आधुनिक चेतना संपन्न युवक है। हीरा की वैधव्य और दीन हीन दशा को देखकर पिघल जाता है। चेतन के माध्यम से हमारे समाज में विधवा स्त्री को किस प्रकार का आदर मिलता है जैसे तथ्य को हमारे सामने रखा गया है। चेतन का दृढ़ विश्वास है कि भाग्य को दृढ़ इच्छा एवं शक्ति के द्वारा बदला जा सकता है। इस प्रकार चेतन आधुनिक युवा मानसिकता को दर्शाते हुए विकासोन्मुख युवापीढ़ी का प्रतीक बनता है।

'अँधेरे से आगे' नाटक में जानकी, राधा, इंदर, भाभी, रामलाल, जानकी की माँ, कल्याणी, बीस्सा, आई, नीरसु, मुनिया और राजन आदि पात्र हैं।

जानकी - नाटक की नायिका जानकी है। रामलाल की पत्नी। इस का चरित्र प्रणनाथ की अपेक्षा अधिक दृढ़ है। वह मुसीबतों की मारी है। लेकिन अपना संयम और आत्मसम्मान नहीं खोती। भावुकता में बहकर प्राणनाथ प्रेम प्रस्ताव उसके सम्मुख रखता है। पति से तिरस्कृत जानकी का मन करता है कि वह मर जाये। जानकी इस प्रकार घर और बाहर झूठी सहानुभूति को सहते हुए जीती है। कल्याणी की प्रेरणा से जानकी बी.ए. पास कर लेती है तथा अपने आत्मविश्वास को भी जगाती है। जानकी के पति रामलाल उसे वापस ले जाने के लिए आता है। लेकिन इस समय जानकी अपने जीवन को दूसरी दिशा की ओर मोड़ चुकी है। वह कहती है.... भगवान राम ने सीता का परित्याग करने के बाद जब सीता को पुनः अयोध्या लौटने को कहा तो वह नहीं गई बल्कि सतीत्व की रक्षा के लिए धरती में समा गई। उस का नाम जानकी है अतः जीवन जीने के लिए उसे किसी का सहारा नहीं चाहिए। आखिर मेरा नाम भी जानकी है।"[1] इस प्रकार वह आधुनिक नारी के स्वावलंबन की प्रतीक पात्र मानी जाती है।

'जो राम रचि राखा' नाटक में मन्ना सेठ, धन्ना सेठ, नंदी, शिव, पार्वती, दीवानजी, मुसाहब, उपमुसाहब, फटेहाल आदमी और महाराज आदि पात्र हैं।

मृणाल पाण्डे का नाटक **'जो राम रचि राखा'** नाटक का नायक नवयुवक मन्ना सेठ है चोरी करता है जो जनता और समता के रूमानी ख़्वाब देखता और क्रान्ति के गीत गाता है। परन्तु विडम्बना यह है कि जब वह अपने अभिजात्य वर्ग के संस्कारों से मुक्ति पाने और सामान्य जन के हित साधन के लिए चोरी करता है, राजा को घसीट कर अपमानित करता है तो अवतारी पुरुष माना जाता है। मन्ना सेठ न केवल राजकुमारी से सप्तपदी ही करता है बल्कि महल और राजसिंहासन भी स्वीकार कर लेता है।

---

[1] अँधेरे से आगे - 139

'आदमी मछुआरा नहीं था' नाटक का प्रमुख पात्र है नन्ददुलारे। यह मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। आधुनिक औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप एक विशिष्ट वर्ग पैदा हुआ - मध्यम वर्ग। इस वर्ग के व्यक्ति के जीवन में विडम्बना यह है कि इस्तेमाल करने और इस्तेमाल होने की। नन्ददुलारे एक काबिल व्यक्ति इन्सान होने के बावजूद वह कहीं स्थिर रहना चाहता है परन्तु नहीं हो पाता कारण अस्तित्व की चाह। अपने परिवार की उन्नति के लिए अपना अस्तित्व खो बैठता है।...पर परिवारों से ही बह-बह कर बाहर भी चला जाता है, जो धीरे-धीरे जड़ों को कुतर खाता है।"[1] नाटक के अंत में नन्ददुलारे की त्रासदी के बुनियादी कारणों को जाने-समझे बिना भी मुमकिन नहीं है।

राज्य और राज कर्मचारी के रिश्ते, संवेदनशीलता और महत्वाकांक्षा के संबंध तथा वरदान और अभिशाप के आन्तरिक तंतुजाल का त्रासदी का शिकार नन्ददुलारे बन जाता है। नाटक के सभी पात्र सहज, स्वाभाविक और सजीव प्रतीत होते हैं।

'चोर निकल के भागा' नाटक में महेश, सुरेश, रमेश, नीता रामऔतार, बाबाजी, मास्टर गेंदुलाल, शरीफा बेगम आदि पात्र हैं।

महेश, सुरेश, रमेश और नीता नाटक के मुख्य पात्र हैं और अपनी जीविका के लिए नाटक खेलते हैं। ...यार ये जरा ज्यादती है। पहले तो अपने मित्र को यहाँ बुलाकर उसे टू-इन-सिक्स चाय पिलाओ, ऊपर से वर्ग संघर्ष..... ।"[2] अपने जीवन के सुधार के लिए कई प्रयत्न करते हैं ताकि कुछ काम मिल सके फिर भी कहीं से भी काम न मिलने के कारण अचानक बाबा से मुलाकात होती है। फिर उनसे दिया गया अणिमा और गरिमा को लेकर गेंदुलाल से मिलते हैं जो कुछ मदद के लिए फिर भी वहाँ उन्हें रूखी-सूखी रोटियों के अलावा और कुछ मदद नहीं मिलती। वे अंत में

---

[1] आदमी मछुआरा नहीं था - 22

[2] चोर निकल के भागा – 10

ऊबकर ताजमहल की चोरी के लिए विचार करते हैं। इस नाटक में कलाकारों की वास्तविकता की दयनीय स्थिति प्रस्तुत होती है।

नाटक के अन्य पात्र गौण हैं फिर भी वर्गगत विशेषताओं और व्यक्तिगत अस्मिताओं का एकसाथ परिचय देनेवाले नाटक के सभी पात्र सहज, स्वाभाविक और सजीव प्रतीत होते है।

'मंदाक्रान्ता' नाटक में मंदाक्रान्ता, मंदा की माँ, पहला आदमी, दूसरा आदमी, तीसरा आदमी, महेन्द्र, बउ, अभिलाख, रजन यादव, गनपत, देवगढ़वाली, गोविन्द सिंह, दादा, मोदी,चीफ, शकील,अनवर, मकरंद, वकील पहला, वकील दूसरा, विक्रम सिंह, कुसुमा, मामा, मामी, कैलाश, पप्पू, सियाराम, द्वारिका, सुगुना, राउतीन, महाराजा आदि पात्र हैं।

मंदाक्रान्ता नाटक में मंदा एक मामूली युवती है जो हर जगह शोषण का शिकार होती है। औरत होने के बावजूद वह जिस संकल्प को पूर्ण करने के लिए खड़ी है, वह हर एक की परेशानी का कारण है। मंदा अपने इरादों की इतनी पक्की है कि वह हर शोषण के खलाफ खड़ी रहकर उस पर समाधान ढूँढ़ने का प्रयास करती है।

मंदा विभिन्न संकटों की आग में जलकर निकल हुआ सोना है, जिसने अपनी चमक से समस्त सोनपुर को प्रकाशित किया है। यह एक ऐसा चरित्र है जिस पर गहराई से न सोचा जाए तो काल्पनिक लगता है लेकिन उसकी सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर शान्ति से सोचा जाए तो यह एक स्वाभाविक तथा यथार्थवादी चरित्र है। बाल्यकाल की मंदा से लेकर नाटक के अन्त में प्राप्त होनेवाली कर्तव्यपारायण मंदा तक का लंबा सफ़र विभिन्न संघर्षों एवं शोषण की कड़ी है। जिनका सामना करते-करते मंदा का संकल्पबद्ध रूप हमारे सामने आ जाता है। मंदा एक यथार्थवादी पात्र है। उसका संघर्ष नाटक के अंत तक समाप्त नहीं हुआ है।

परंपरागत मान्यताओं के विरोध में वह है। अत्याधुनिक संतुलित विचारों की मंदा के औरत के संदर्भ में आधुनिक विचार हैं। जैसे - मंदा के संदर्भ में महाराज के शब्द इस प्रकार हैं - मुझे आज यह देखकर बहुत प्रसन्नता हो रही है कि पूरे इलाके में मंदा का कितना प्रभाव बै, लेकिन में यह भी कहना चाहता हूँ कि लोगों के मन पर प्रभाव उसी का होता है, जो मन वचन कर्म से लोगों की और तरक्की की बात सोचता है, करता है।"[1]

3.नाटक तथा रसानुभूति

भारतीय मान्यतानुसार नाटक का चरम लक्ष्य है रसानुभूति। यदि संपूर्ण नाटक के अभिनय के उपरान्त नाटककार उस रसात्मकता को सहृदय प्रेक्षक के हृदय में निष्पन्न करवाने में समर्थ हो जाता है, तो उसकी सम्प्रेषण-शक्ति अपनी चरम सार्थकता प्रमाणिक कर पाती है और यही नाटक तथा उसके अभिनय की सफलता है। रस की यह स्थिति जहाँ एक ओर कथा-संयोजन से सम्बद्ध है वहाँ दूसरी ओर अभिनेताओं की अभिनय कुशलता से भी इसका घनिष्ठ संबंध है। अतः स्वयं नाटक में ही वह शक्ति, रसमयता तथा गाम्भीर्य संगुंफित होना चाहिए कि सहृदय स्वतः रसविभोर हो सके। यद्यपि नाटक के पाठन से भी रसान्वित संभव है तथापि उसका अभिनय अपनी अतिरिक्त कलात्मकता से संयुक्त होकर रससंचार करने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थ हो सकता है। अभिनय नाटक को सार्थक करता है। वस्तुतः रस की कला अथवा काव्य के निमित्त से भाव के आस्वाद का नाम है रस। नाटक अपनी समग्रता में काव्य एवं कला का पुंजीभूत रूप है, अतः रसनिष्पत्ति इसका धर्म है। स्वयं आचार्य भरत ने सर्वप्रथम नाटक के सन्दर्भ में ही रस सिद्धान्त की स्थापना की। अतः अभिनय के माध्यम से व्यक्त भाव एवं विचार द्वारा दर्शक को रससिद्ध कर देने की शक्ति के अनुरूप ही नाटक की श्रेष्ठता के स्तर का मूल्यांकन अपेक्षित है।

---

[1] मंदाक्रान्ता - 116

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में रस सिद्धि का प्रयोग अत्यंत सहज एवं सटीक ढंग से हुआ है। उदाहरण के लिए - मन्नू भण्डारी जी के 'बिना दीवारों के घर' में कई प्रकार के भावोद्रेक हैं। घृणा, क्रोध, द्वेष, दुःख, आश्चर्य, जुगुप्सा आदि का प्रयोग हुआ है। इस भाव के कारण दर्शक या श्रोता के अन्तः करण में रस निष्पत्ति होती है। भारतीय नाटकों की यह परम्परा रही है कि अन्त में सुखद घटनाओं का संयोजन करके नाटककार प्रायः श्रृँगार-रस की सृष्टि करते रहे हैं परन्तु समकालीन हिन्दी महिला नाटककार ने परम्परा से हट कर तथा पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर दुःखद घटनाओं की सृष्टि की है। शोभा और अजित एक ही घर और एक ही छत के नीचे रहते हुए एक दूसरे से अजनबी हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों के मध्य कटाव और तनाव उभरता है। नाटक के अंत में शोभा जयन्त को छोड़कर घर से निकल जाती है।

कुसुम कुमार जी के सभी नाटकों में हास्य एवं करूण रस का प्रयोग हुआ है। जैसे 'सुनो शेफाली' नाटक में बकुल और शेफाली के वर्तालाप इस प्रकार है -

शेफाली : वहाँ...कोने में....जाकर खड़े हो जाओ, बकुल...

बकुल क्या हम जान सकते हैं यह आज सरकार हमें सजा देने के मूड में क्यों हैं?

शेफाली : (व्यंग्य) सजा और तुम्हें?"[1]

कुसुम कुमार जी के 'पवन चतुर्दी की डायरी' नाटक में कहीं व्यंग्य, कहीं करुणा और कहीं हास्य रस का प्रयोग हुआ है। जैसे -

पवन - (व्यंग्य से) यह भी इस चिट्ठी में लिखा है?

डॉ. चतुर्वेदी : नहीं। चिट्ठी में लिखा है....

पवन :कि थोड़ा दान हमारी सोसइटी के लिए और भेज दीजिए।

---

[1] सुनो शेफाली-20

डॉ. चतुर्वेदी : नहीं, यह नहीं लिखा। लिखा है, आपको हम अब अपना चेअरमैन बनाना चाहते हैं। कृपया अपनी रजामंदी हमें लिख भेजें।

पवन (थोड़ा व्यंग्य से) वाह, बाबू ! फिर देर किस बात की है ! अभी लिख भेजिए ना, अपनी रजामंदी।"[1]

इसी नाटक में पवन और उनकी माँ के वार्तालाप में करुण रस का प्रयोग अत्यंत सहज एवं सटीक ढंग से प्रयोग किया गया है। जैसे -

माँ : नहीं पवन मैं चाहती हूँ तू बाबू जी से ज्यादा बड़ा आदमी बने। लेकिन तू जो भी बने, रहेगा तो डॉ. चतुर्वेदी का ही बेटा न?"[2]

पवन चतुर्वेदी नाटक के अंत में दुःखी प्रतीत होता है। यहाँ नाटककार ने दर्शक को दुःखात्मक रसानुभव प्राप्त कराने की चेष्टा की है। पवन अपनी बाबू डॉ. चतुर्वेदी की शवयात्रा के संदर्भ में दुःख का अनुभव करता है। जैसे - पवन : बाबू जी..बाबूजी... आपका चश्मा मिला... लेकिन देर से...आसपास का कुछ दिखाई नहीं दे रहा...और दूर देखने की इच्छा ही मर गयी........।"[3]

मृदुला गर्ग जी के 'एक और अजनबी' नाटक में श्रृँगार रस का चित्रण बहुत सहज रूप से किया गया है। नाटक के अंत में शानी और इंदर के बीच जो शारीरिक क्रियाएँ होती है वह श्रृँगार रस का अनुभव प्रतीत होती हैं। जैसे - शानी : (टूटे स्वर में) नहीं, ऐसे नहीं। मैंने कुछ और चाहा था। इंदर में कामुक उफान बढ़ता जाता है. वह शानी को कस लेता है। और घिसेपिटे शब्दों में अपना प्यार जतलाता है...।"[4]

मृणाल पाण्डे जी के 'चोर निकल के भागा' नाटक में हास्य एवं व्यंग्य रसानुभव प्रतीत होता है। महेश, सुरेश, रमेश, और नीता चाय का ऑर्डर देते हैं

---

[1] पवन चतुर्दी की डायरी - 25
[2] पवन चतुर्दी की डायरी - 30
[3] पवन चतुर्वेदी की डायरी – 94
[4] पवन चतुर्वेदी की डायरी – 105

लेकिन एक ही चाय के लिए उनके पास पैसा होता है। इसलिए एक कप चाय ऑर्डर देता है लेकिन धीरे धीरे और लोग आते हैं। चाय ऑर्डर देने के लिए पैसा नहीं है फिर भी उनको भी चाय पिलाना चाहते हैं इसलिए रामऔतार को चाय के बिना चाय का प्याला लाने के लिए बोल देते हैं। इस संदर्भ में रामऔतार और महेश के बीच वार्तालाप इस प्रकार होता है - (रामऔतार का एक और प्याला लिये प्रवेश, प्याला रखकर दूसरे हाथ से एक ड्रापर भी देता है महेश को.....) महेश : यह क्या है? रामऔतार : मालिक ने भेजा है कि दो-तीन लोग और आ गए तो उनकी जीभ पर इससे टपका देना।" [1]

मृदुला बिहारी जी के 'भँवर' नाटक में कहीं-कहीं हास्य रस प्रतीत होता है जैसे - सुनन्द और मीरा के बीच वार्तालाप इस प्रकार है - सुनन्द : कहा हो.... मीरा, तुम यहाँ हो और....

मीरा : छोड़ो ये बातें...बड़े बुद्धिमान बनते हो और मेरी....

सुनन्द :बुद्धिमान होने का सबसे आसान तरीका है अपने से ज़्यादा मूर्ख के साथ रहो..."[2]

कही कहीं क्रोध या आक्रोश का भाव भी प्रतीत होता है जैसे.... कोई क्या कहेगा, क्या सोचेगा, इससे मुझे कोई लेना-देना नहीं... इतनी ही दूसरे के सोच की परवाह है तो सोचा है कि लोग हमारी फटेहाली पर क्या सोचते हैं....."[3]

मृदुला बिहारी जी के 'तीसरे रास्ते का राही' नाटक का अंत दुःखांत होता है। अंजना और अमित दोनों प्यार करते हैं बाद में शादी करना चाहते हैं लेकिन नहीं करते। अंत में अमित के बेटे को गोद में लेकर अपने प्यार की प्यास और दुख को शान्त करना चाहती है। जैसे ...अमित स्तब्ध है। अंजना और प्रसून जाने के लिए

---

[1] चोर निकल के भागा - 10
[2] भँवर - 27
[3] भँवर - 30

आगे बढ़ते हैं। प्रसून खुश है और अंजना शान्त है।"[1] इस प्रकार नाटककार ने अंत में शान्त रस का प्रयोग किया है।

4.संवाद योजना

नाटक में साहित्य के अन्य रूपों की तुलना में ,संवादों का प्राधान्य होता है। जीवन के घटनाक्रम को उपस्थित करनेवाले साहित्य के अन्य स्वरूप, तथा कहानी खण्ड-काव्य आदि को पठन या सुनने के लिए लिखे जाते हैं। लेकिन नाटक की रचना रंगमंच पर प्रदर्शन के लिए ही होती है। इसलिए उसे दृश्य काव्य कहा गया है। नाटक के संवाद ही विभिन्न चरित्रों की अलग-अलग विशेषताओं का अध्ययन करते हैं। संवादों द्वारा ही कथावस्तु को गति मिलती है, देशकाल की जानकारी होती है। रचना शैली का आभास होता है, और जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति होती है। नाटक की अभिव्यक्ति भी उसकी संवाद-योजना से ही निर्धारित होती है।

नाटकीय संवाद रंगमंच पर विभिन्न चरित्रों की भूमिका में अवतरित अभिनेताओं द्वारा बोलने के लिए लिखे जाते हैं। नाटक के विभिन्न चरित्रों की अपनी अलग-अलग परिस्थितियाँ अलग-अलग विशेषताएँ अलग-अलग विचार आदि होते है। नाटक के प्रदर्शन में ,संवाद योजना के इन सभी की बातों का अच्छी तरह ध्यान रखा जाता है।

नाटक में संवाद का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। संवादों के अभाव में नाटक की शरीर की सृष्टि भी करना एक दुष्कर एवं असंगत कार्य है। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य, आवश्यक पात्र, व्यक्ति स्थिति के अनुरूप भाषा में जो बातचीत करते हैं उसे नाटकीय संवाद करते हैं। नाटक में हर क्षण या समय क्या हो रहा है इस का पता हमें संवाद द्वारा ही पता चलता है। इस संदर्भ में जयदेव तनेजा लिखते हैं कि प्रत्यक्ष वक्ताओं का चरित्र उद्‌घाटित करते हुए नाटक के कार्य को प्रतिपल

---

[1] तीसरे रास्ते का राही - 69

अग्रसर करती चलती है, अतः संवाद कहलाता है।"[1]

4.1 स्वगत कथन

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में संवाद योजना अत्यंत नाटकीय ढंग से प्रस्तुत है। प्रसंग और अवसर के अनुसार स्वगत कथन तथा चरित्रों के विकास में पूर्णतः सहायक दिखाई देते हैं। संवादों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग भी मिलता है। उदाहरण के लिए मृणाल पाण्डे के सभी नाटकों में इस प्रकार के स्वगत कथन देखने को मिलते हैं। जैसे कुसुम कुमार जी के 'सुनो शेफाली' नाटक में शेफाली और उनकी माँ के वार्तालाप में इस प्रकार का स्वगत कथन देख सकते हैं – **शेफाली :** (स्वगत - अधिकांशतः प्रलाप है) अम्मा कहती है सब ठीक हो जाएगा.... अच्छा..हाँ...हम अगर एक दूसरे की सहूलियत बन जाएँ तो कैसा रहे?....फिर जैसे इस पूरे समाज के दिल बदल जाएँगे - दिमाग बदल जाएँगे...लहू एक होकर बोलेगा..किसने कहा यह? किसने?....अम्मा ने? (हँसती है। व्यंग्य से) अम्मा की इच्छा भर से लिपटती रही...पल..पल.... उसकी बाँहों में....उसकी बातों में.....सबसे पेच ही पेच....अम्मा से भी ज़्यादा मैं समझती रही.....सब ठीक हो जाएगा....(एक क्षण ख़ामोशी)...अम्मा दुःखी है- बाबा के दुःख से ..मेरे दुःख से....और मैं...(गर्दन झटककर) इस बात के सुख से मरी जा रही हूँ...बकुल बाबू को झटका मैंने दिया ! मैंने दिया !! हाँ, मैंने !!!"[2]

कुसम कुमार जी के अन्य नाटक 'रावणलीला' में पृष्ठ संख्या 34 नटरंग 34 में और 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पृष्ठ संख्या - 15, 47, 88 में इस प्रकार के स्वगत कथन को देख सकते हैं।

मृदुला गर्ग जी का 'एक और अजनबी' नाटक में भी इस प्रकार के स्वगत कथन को नाटककार ने बहुत सहज रूप से प्रस्तुत किया है। जैसे –

---

[1] समसामयिक हिन्दी नाटक में चरित्र सृष्टि - जयदेव तनजा – 46

[2] सुनो शेफाली - 41

शानी : (स्वगत, नैराश्य से) यही वह क्षण है जिसे मैंने चाहा था?

इंदर : शानी...यू लवली वूमन...

शानी : (स्वगत) जीवन क्षण-क्षण करके बनता है?...।"[1]

मृदुला बिहारी जी के 'भँवर' नाटक में सुधीर और रंजना के बीच जो वार्तालाप होता है उसमें इस प्रकार के स्वगत कथन देख सकते हैं –

सुधीर : (बेमन से) अच्छा, लाओ दो...

(सुधीर जाता है, रंजना दरवाज़ा बन्द करती है)

रंजना : (स्वगत) सफ़ाई की शुरुआत बेडरूप से....(फिर एक-एक कर सफ़ाई करना खाना बनाना और अन्त में खुद नहा-धोकर तैयार होना। टेप ऑन कर के पासी ही कुर्सी पर बैठ जाना। आँखें मूँद कर सुनना) ....ये सुख अब मेरे मुकद्दर में कितनी मुश्किल से नसीब........रंजना आँखें बन्द किए बोलती है।"[2]

'तीसरे रास्ते का राही' नाटक में संजना और अंजना के वर्तालाप में इस प्रकार का स्वगत कथन देखने को मिलता है -

अंजना : (स्वगत) नाक वही, नक्स वही, रंग वही, फिर अब क्यों सुन्दर लगने लगी हूँ..? (तेरे बिना जी ना सकेंगे सनम प्रेम गीत गुनगुनाती हुई अंजना कमरे से निकलती है तो देखती है कि एक पत्र दरवाजे के नीचे से ज़मीन पर पड़ा है। वह पत्र उठाती है। (स्वगत) मेरे नाम से? किसका हो सकता है? (पत्र खोलकर देखती है) (स्वगत) अमित का... (अंजना पत्र पढ़ती है, पत्र में से अमित की छवि उभरती है....)।"[3]

---

[1] एक और अजनबी -105

[2] भँवर - 14-15

[3] तीसरे रास्ते का राही - 48

'वे पाँच शब्द' नाटक में भी स्वगत कथन मिलता है - माया और अजित के वार्तालाप इस प्रकार के हैं -

माया : (स्वगत, पूरी आन्तरिक सद्भावना के साथ) प्रभु इन्हें सफलता दे....माया अन्दर आती है। अजित के फैलाए सामान. तौलिया, चप्पल आदि ठीक करती है। बच्चों की पढ़ाई की मेज़ साफ़ करती है। पर यह सब करने में उसका मन नहीं लग रहा है। वह एक किताब लेकर पढ़ने बैठ जाती। उसका सारा ध्यान अजीत के इन्टरर्व्यू की ओर है। इसी समय कॉल-बेल बजती है।...

माया : (स्वगत) कौन हो सकता है इस वक्त? (उठकर दरवाज़ा खोलती है। सामने दीन-हीन कातर अवस्था में वही मोची खड़ा है।"[1]

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में स्वगत कथन को बहुत सहज और जीवन्त बनाने की चेष्टा की है।

4.2 संक्षिप्त संवाद

कथोपकथन या संवाद योजना पर भी नाटक की सफलता निर्भर होती है। नाटक की कथा को विशिष्ट गति मिलने के लिए संवादों की ही आवश्यकता होती है। कथोपकथन के बल पर ही नाटक के पात्रों का उद्घाटन होता है। जिस नाटक की संवाद योजना चुस्त और चुटीली होती है वही नाटक रसमयता प्रदान करने में सफलता प्राप्त कर सकता है। अतः सफल नाटक के लिए नाटक के संवादों का छोटे तथा स्वाभाविक होना आवश्यक होता है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में अधिकांश संवाद संक्षिप्त, चुटीले एवं सार गर्भित बने हैं। जैसे - मृदुला गर्ग जी का 'एक और अजनबी' नाटक में शानी और जगमोहन के बीच इस प्रकार के संक्षिप्त वार्तालाप होते हैं -

---

[1] वे पाँच शब्द - 81-82

शानी : (उठकर)बड़ी देर कर दी।

जगमोहन : (कुर्सी पर बैठकर) अरे क्या करूँ, पूरी मुसीबत आ खड़ी हुई है।

शानी : (निरुद्वेग) क्यों, क्या हुआ? (दूसरी कुर्सी पर बैठती है)

जगमोहन : वह पिछले हफ़्ते नया मैनेजर आया है न ! बस...आते ही उछल-कूद शुरू कर दी है। यह ठीक नहीं है, वह ठीक नहीं है। एरियर्स क्यों हैं? डिस्पोजल स्लो है। आज सुबह जाकर पिछला सब काम निबटाकर आया हूँ।"[1]

उनके इस नाटक में और एक जगह पर भी इस प्रकार के छोटे संवाद को देख सकते है। जैसे इंदर और शानी के बीच वार्तालाप इस प्रकार होता है -

इंदर : क्या सोच रही हो, वहाँ खड़ी हुई?

शानी : कुछ नहीं। तुम क्या सोच रहे हो?

इंदर : (खड़ा हो जाता है) यहाँ आओ न।

शानी : (उसके साथ ही) खड़े क्यों हो गये?

इंदर : तुम्हारा इंतजार कर रहा हूँ।

शानी : ओह, मैंने सोचा, जा रहे हो।

इंदर : (हँसकर) तुम बिलकुल नहीं बदली। वही मेरी वंडरफुल शानी। अच्छा, एक बात बताओ।

शानी : क्या?

इंदर : तुम खुश हो?....."[2]

मैत्रेयी पुष्पा का 'मन्दाक्रान्ता' नाटक में भी इस प्रकार के छोटे एवं चुटीले संवाद देखने को मिलते हैं। मंदा एवं मकरंद के बीच इस प्रकार का वर्तालाप होता है –

[1] एक और अजनबी – 39
[2] एक और अजनबी - 201

मकरंद : बाहर आओ न !...तुम तीन दिन से बाहर नहीं निकली ?

मंदा : नहीं।

मकरंद : आओ तो।

मंदा : क्यों

मकरंद : ऐसे ही।

मंदा : मुझसे डर नहीं लगेगा?

मकरंद : नहीं।

मंदा : सच?

मकरंद : हाँ सच।"[1]

मन्नू भण्डारी जी का 'बिना दीवारों के घर' नाटक में जयन्त और शोभा के बीच के वर्तालाप सहज एवं सारगर्भित लगते हैं और छोटे भी हैं। जैसे -

जयन्त : यह क्या, तुम रो रही हो?

शोभा : नहीं, यों ही जरा !

जयन्त : बात क्या है ? अजित क्या ऑफ़िस से आ गया?

शोभा : आए थे, फिर चले गए !

जयन्त : कहाँ? क्या किसी काम से गये है?

शोभा : नहीं नाराज़ होकर

जयन्त : क्यों, क्या बात हुई? "[2]

कुसम कुमार जी के 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में डॉ. चतुर्वेदी और पवन चतुर्वेदी के बीच इस प्रकार के संक्षिप्त वार्तालाप होते हैं –

डॉ. चतुर्वेदी : कहाँ चला गया था?

पवन : यूँ ही, किसी से मिलना था

---

[1] मंदाक्रान्ता - 29

[2] बिना दीवारों के घर - 47

डॉ. चतुर्वेदी : लायब्रिरी खुली छोड़कर?

पवन : (झेंप जाता है) पास ही जाना था।

डॉ. चतुर्वेदी : कहाँ बच्चों से मिलने?

पवन : बच्चों से? बच्चे कब आये यहाँ?

डॉ. चतुर्वेदी : मैं तुमसे पूछ रहा हूँ।

पवन : मुझे उनके आने की कोई ख़बर नहीं।

डॉ. चतुर्वेदी : इधर कभी मिले हो उनसे?

पवन : नहीं

डॉ. चतुर्वेदी : कितनी अरसा हुआ उनसे मिले?

पवन : याद नहीं।

डॉ. चतुर्वेदी : बच्चों से मिला करो, कभी-कभी।

पवन : हां।"[1]

मृदुला बिहारी जी के 'अँधेरे से आगे' नाटक में भी इस प्रकार के छोटे संवाद कहीं कहीं देखने को मिलते हैं जैसे -

बीनू :लाल किला कैसा है दीदी?

अंजना :बहुत अच्छा !बहुत तुम्हें भी अच्छा लगेगा....

बीनू : और कुतुब मीनार ?

अंजना :बहुत ऊँचा....

बीनू : जन्तर - मन्तर ?

अंजना : आँ....वो कहाँ देखा?

बीनू :क्यों ?

अंजना : फुरसत कहाँ थी?"[2]

---

[1] पवन चतुर्वेदी की डयारी - 23

[2] अँधेरे से आगे - 48

4.3 दीर्घ और लम्बे संवाद

कहीं कहीं नाटक के संवाद निश्चित रूप से दीर्घ एवं लम्बे हो गये हैं। अतः दर्शन विवेचन के हेतु लम्बे संवाद अनिवार्य होते हैं। ऐसे होकर समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में अधिकांश संवाद बोलचाल की भाषा में रख कर नाटककारों ने स्वाभाविक बनाया है। संवाद आरंभ से अंत तक भावुक हैं। ये जीवंतस्पर्शी संवाद पाठकों के लिए ज़रूर पसंद आयेगें। समूचे नाटकों में एक ऐसी भाषा को रख कर नाटककार ने एक रास्ता अपनाया है। सारे संवाद विचारप्लवित होने के कारण सूक्तरूप धारण करते हैं। उदाहरण के लिए -

शोभा : हलो- । हाँ जयन्त मैं बोल रही हूँ। कल की सारी बातचीत के लिए माफ़ी माँगना चाहती हूँ। ऐं -? मुझे बीच में बोलने का कोई अधिकार नहीं है ? - है जयन्त, है ! मैंने कभी स्वप्न में भी सोचा था कि ये इस स्तर पर उतर आएँगे। सारी रात क्या गुजरी है मुझ पर कि बता नहीं सकती। किस बात की यह कुंठा? क्या नहीं है अजित के पास? क्या... में नहीं समझ सकूँगी? हाँ सच, अब तो यही लगने लगा है कि मैं अजित को बिलकुल नहीं समझती। इतने साल साथ रहने के बाद भी नहीं। क्या सोच रहे होगे तुम भी...कुछ नहीं सोच रहे? सच कह रही हूँ जयन्त, अभी ये बेकार नहीं होते न, तो मैं भी बता देती इन्हें कि ऐसी ऊलजलूस बातें सोचने का क्या फल होता है? क्या... बात की थी विलियम्स से? यह सब सुनने के बाद भी? मैं होती तो कभी नहीं करती। अच्छा तो अड़वानी से कहलवाओगे? वह कह देगा तो उम्मीद है? तुम्हारी जो मर्ज़ी हो करो। मेरा तो गुस्से और अपमान से रोम-रोम जल रहा है। यह बात तुम बिलकुल छिपा गए? मैं भी सोच रही थी कि सारे पुराने खुले, यह बात नहीं आई। सच कह रहे हो? मेरी बात तुमने मान ली ! क्या कहूँ जयन्त, तुम सचमुच महान हो। कल तो बराबर मन में यही डर बना रहा - (एकाएक दरवाज़े की घंटी बजती है) कोई आया है, अभी रखती हूँ, तुम इधर नहीं आ रहे? क्या कहा, अब इस घर में कभी नहीं आओगे? मेरे पास

भी नहीं ? (फिर घंटी बजती है) अच्छा फिर बात करूँगी।(फ़ोन रख देती है।)"[1]

मृदुला गर्ग जी का 'एक और अजनबी' नाटक में भी इस प्रकार के दीर्घ एवं लम्बे संवाद दो तीन जगहों पर देखने को मिलते हैं। जैसे -

इंदर : हो सकता है, पर हम लोगों में कोई एक कमी नहीं। वे लोग जो काम हाथ में लेते हैं, करके दिखाते हैं। और यहाँ? हर काम करना पड़ता है, कराना कोई नहीं चाहता। दफ्तर चलाना तो ऐसा है जैसे धोबी के गधे को हाँकना। हुश-हुश करते चलिए और (सहसा जगमोहन पर नज़र पड़ती है) मेरा मतलब, मरे मतलब.. नीचे के लोग जो हैं, काम ही नहीं करना चाहते, यानी-यानी....(बात नहीं बनती। उसकी परेशानी पर शानी हँस पड़ती है। उसको देखकर) यू नो...(गिलास की बाकी शराब एक घूँट में पीकर) मे आई हैव एनदर?"[2]

कुसुम कुमार जी के 'सुनो शेफाली' नाटक में भी इस प्रकार के दीर्घ एवं लम्बे संवाद बकुल और शेफाली के वार्तालाप में देख सकते है -

शेफाली : (व्यंग्य और आक्रोश की मुद्रा में वाक्य पूरा करती है) हम कहाँ से एक जीप पर रवाना होते हैं...शहर भर में हम लाउडस्पीकर पर बोलते हैं..... वोट दीजिए हमें..बहनों और भाइयों, वोट ! (उत्तेजना से शेफाली का स्वर कुछ और ऊँचा हो जाती है) तुम मुझसे ऊँचे खड़े हुए हो। कहते जो रहे हो... वोट फॉर दीक्षित.... वोट फॉर....लोग सड़क के दोनों ओर अपने -अपने मकान की ओर बढ़े जा रहे हैं। उनका ध्यान तुम कुछ और आकर्षित करना चाहते हो, इसलिए जीप एक चौराहे के ऐन बीच रोककर शरू करते हो - बहनों और भाइयों..अपना वोट हमें देकर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाइए....यह

[1] बिना दीवारों के घर - 62-63
[2] एक और अजनबी -95

बात आपसे आज यहाँ इस जीप में मौजूद एक हरिजन लड़की कह रही है। इस लड़की को मैं आज ही अभी अभी ब्याहकर रहा हूँ। गरीबी का हटाया जाना इस देश के लिए जितना ज़रूरी है...(बकुल तिलमिलाने लगता है) उतना ही...(जोर-जोर चिल्लाकर) उतना ही हरिजनों का उद्धार भी। अब तक इस दिशा में हमने जितने प्रयास किए वे सब असफल रहे....(बकुल कानों पर हाथ रखकर सिर नीचे लटका लेता है) अछूतोद्धार की इस दिशा में सभी प्रयत्न असफल होते देखकर मैंने निराशा की स्थिति में पहले इस हरिजन लड़की से प्रेम किया फिर शादी कर ली....लीजिए भाइयों और बहनों, अब तो आप हमें ही देंगे ना अपना कीमती वोट। यही था न वह तुम्हारा सपना?"[1]

इस प्रकार समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने अपने नाटकों में दीर्घ एवं लम्बे संवादों के बहुत सहज एवं सुंदर ढ़ंग से प्रयोग किया हैं।

4.4 वर्णनात्मक एवं भावात्मक संवाद

नाटक में कही-कहीं संवाद वर्णनात्मक हैं, पर इनमें रोचकता पूरी तरह विद्यमान है। ऐसे संवाद समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में एक दो स्थलों पर ही हैं। लेकिन इनमें भी अभिनेय-तत्व की कमी नहीं है। इनके नाटकों में छोटे संवादों में भी कहीं-कहीं वर्णनात्मकता मिलती है, पर उनमें कुछ ऐसे उतार-चढ़ाव रहते हैं कि वे नीरस नहीं प्रतीत होते। मृदुला बिहारी जी के 'अँधेरे से आगे' नाटक में इस प्रकार के वर्णनात्मक एवं भावात्मक संवाद कहीं कहीं देखने को मिलता है। जैसे -

राधा : (आश्चर्य से) क्या...? नहीं जाएगी..? पागल हुई है क्या जानकी ?

जानकी :...और वह पिछले बारह वर्षों का हिसाब कौन चुकाएगा, राधा?

---

[1] सुनो शेफाली - 54

राधा : जो सलूक तेरे पति ने तेरे साथ किया, क्या वहीं तू भी दोहराना चाहती है?...खुद को तकलीफ देना तुझे अच्छा लगता है क्या ?...खुद को और उनको....जो तुम्हें सुखी देखना चाहते हैं?

जानकी : (अपने आप से)......एक हथौडे से ऐसा आघात हुआ कि होश आने में एक युग बीत गया.....

राधा : तो क्या तू रामलाल को भूल गयी?

जानकी : हाँ कुछ मजबूरी से, कुछ उस आदमी के लिए मन में कोई आकर्षण नहीं।

राधा : तो तू सचमुच....

जानकी : एक बार व्यक्ति का अपनी आत्मा के साथ संबंध जुड़ जाता है तो सारे काम बहुत आसान हो जाते हैं। न अन्दर कोई तृष्णा रहती है, न चिन्ता, न ही व्याकुल कर देने वाली इच्छाएँ....

राधा : (प्रभावित होकर) जानकी !

जानकी : (अपनी ही भावना के प्रवाह में) राम ने सीता का परित्याग कर दिया। बाद में जब राम ने सीता से अयोध्या चलने को कहा तो वह नहीं गयीं, चाहतीं तो महारानी बनकर सुख भोग सकती थीं, पर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए धरती में समा गयीं। नाम तो मेरा भी जानकी है राधा ! इतनी शक्ति तो नहीं कि धरती में समा जाऊँ....लेकिन...

(राधा बहुत प्रभावित होकर सुन रही है।)

राधा : तुम्हें अब मैं क्या समझाऊँगी जानकी ! तूने तो तप किया है...तूने अपना स्थान बहुत ऊँचा कर लिया।.....अच्छा, अब चलती हूँ।”[1]

कुसुम कुमार जी का ‘सुनो शेफाली’ नाटक में भी इस प्रकार के वर्णनात्मक एवं भावात्मक संवाद कहीं कहीं देखने को मिलते हैं। जैसे -

---

[1] अँधेरे से आगे -139

मनन : मैं जानता हूँ...मैं जानता हूँ सिर्फ इतना कि तुम एक पढ़ी-लिखी, सुशील, सुजान लड़की हो....

शेफाली : (रोती है) और मैं भावुक कितनी हूँ....यह आप नहीं जानते...?

मनन : यह भी जानता हूँ....लेकिन भावुक होना तो अच्छा है...इसमें बुरा क्या है भावुक आदमी ही ठोकर खाता है एक पल और दूसरे पल योद्धा बना खड़ा दिखाई देता है...इन्सानियत की खुशबू भावुक आदमी के लहू में ही सबसे ज्यादा होती है....तुम भावुक हो, तभी गर्वीली हो....तभी तुम्हारा मन उज्ज्वल है और शायद तभी तुम कायर नहीं हो...बीच भँवर में खड़ी रहकर भी किसी काठ की नाव के लिए चीख-पुकारा नहीं की तुमने।

शेफाली : सोचती हूँ...दादा कि अगर इस समाज के सोचने का ढंग नहीं बदल सकता तो मैं....

मनन : तुम किसी के सोचने के ढंग पर निर्भर ही क्यों करो ? देखो शेफाली, जीवन काट देने में जो अर्थ है वह जीवन कट जाने में नहीं...(एक क्षण रुककर) मेरी तरफ देखो....मेरी जिन्दगी के कोई माने तुम्हें जान पड़ते हैं ?

शेफाली : (श्रद्धा और आश्चर्य से मनन की ओर देखते हुए) हाँ....आप...मुझे...दादा आप मुझे कोई साधारण इन्सान नहीं लगते.....पर आप यह (मनन के सामान की ओर संकेत करके) सब मिथ्याडंबर करते क्यों बैठते हैं?

मनन : इस आडंबर के माने पूछती हो ? पगली, यह आडम्बर जिन्दगी को माने देने के लिए है।"[1]

इस प्रकार समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में कही संवाद वर्णनात्मक हैं, और कहीं भावात्मक भी हैं, पर इनमें रोचकता पूरी तरह विद्यमान है। ऐसे संवाद समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के अन्य नाटकों में भी एक दो स्थलों पर ही हैं।

---

[1] सुनो शेफाली - 48

5.देश, काल और वातावरण

देश, काल और वातावरण नाटक में आद्यन्त रहने वाला प्रभावोत्पादक तत्व है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने इनका मसुचित विन्यास किया है। उनमें युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक आदि के परिवेश जीवन्त हो उठे हैं। वे समाज की मनोवृत्ति का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हैं। नाटकों से सामाजिक परिवेश से जुड़े विविध समस्याओं का बोध होता है। यहाँ समाज की दुर्बलताओं और सबलताओं का भी सम्यक निरूपण हुआ है।

कथा वस्तु और देश काल वातावरण का अविन्छिन्न संबंध होता है। इनके अभाव में कथानक का प्रस्तुतीकरण संभव नहीं हो सकता है। ये सामाजिक सुख-दुःखमयी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। रंगमंच पर परिस्थिति का अंकन आवश्यक होता है। इससे यथार्थ जीवन का अभास होता है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककार के नाटक इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। उनके नाटकों में वर्तमान समाज का बहुआयामी स्वरूप जीवन्त हो उठा है। वे वर्तमान समय में आए विविध परिवर्तन, रिश्तों के रिसाव, नैतिक अवमूल्यन, संवेदन-शून्यता, प्रदूषित मनःस्थिति, अनर्थकारी अर्थ की अन्धी दौड़, शैक्षिक क्षेत्र की भयावह स्थिति, बेरोजगारी स्थिति, नारी शोषण, महानगरों की आवासीय समस्या, पूँजीपतियों की शोषण-प्रवृत्ति एवं युगीन परिवर्तन का सूक्ष्म अंकन करते हैं। अपने सामयिक प्रशासनिक स्थिति, धार्मिक, राजनीतिक वातावरण आदि का भी कथ्य के अनुरूप सजीव चित्रण किया है। ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों में प्राचीन प्रायः मौन और समकालीन देश,काल एवं वातावरण अधिक मुखर हुआ है।

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों का साध्य वर्तमान है। इसलिए वर्तमान काल की प्रत्येक स्थिति का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। सभी नाटक युग-सापेक्ष्य परिवेश का साक्षात्कार कराते हैं। जैसे 'सुनो शेफाली' नाटक की शेफाली सत्ता के भ्रष्टाचार और व्यवस्था की सुदृढ़ चट्टान के विरुद्ध अकेली नारी के संघर्ष को

अभिव्यक्ति दी है। 'रावण लीला' के करतार सिंह के माध्यम से निम्न मध्य वर्ग की संकटपूर्ण आर्थिक स्थिति का ध्योतक है। 'बिना दीवारों के घर' की शोभा अपनी पति अजित से आपेक्षा करती है कि वह नौकरी करके अपनी अस्मिता को बना ले। 'एक और अजनबी' नाटक की शानी अपेक्षा करती है कि इंदर के साथ अपना प्रेम और यौवन व्यवहार सफल हो जाए। 'जादू का कालीन', 'अँधेरे से आगे', 'भँवर', 'तीसरे रास्ते का राही', 'वे पाँच शब्द', 'देहरी', 'जो राम रचि राखा', 'आदमी मछुआरा नहीं था', 'चोर निकल के भागा' आदि नाटकों में भी आज के व्यक्ति के अतिशत स्वार्थ और संवेदनशून्य स्वरूप का मार्मिक चित्रण किया गया है। समसामयिक वातावरण की मनः स्थिति को प्रतिबिम्बित करता यह चित्रण उद्धरणीय है – **अजीत :** हाँ, इन्टरव्यू की तैयारी तो कर रहा हूँ...

कुमार : कैसी तैयारी?

अजीत : पढ़ रहा हूँ...

कुमार : (बात काटते हुए) बन्धु! पढ़कर क्या करोगे? क्या होता है पढ़कर? (भेद भरे स्वर में) यही तो आप नहीं जानते बन्धु! यह इण्टरव्यू वगैरह सब ढोंग है...एक फार्मेलिटी है...खानापूरी। नहीं जानता आप! मेहनत और योग्यता की बात तो दिखावा है, पर यह नाटक भी ज़रूरी है। मुझे तो सीधी बात मालूम है, चुने जाने वाला कैण्डिडेट पहले से तय होता है....सेलेक्शन बोर्ड पहले ही... ।"[1]

इसी प्रकार वर्तमान काल की कार्यालयों में नारी शोषण को रूपायित करता नाटककार का यह चित्रण द्रष्टव्य है -

रंजना : मेरा मैनेजर छोटी-छोटी बात पर इन्सल्ट करता है, समझता ही नहीं कि हमारी भी कोई रेस्पेक्ट है... ।"[2]

---

[1] वे पाँच शब्द – 77
[2] भँवर - 34

इस प्रकार समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में चित्तवृत्ति और संवेदनाओं में आए देश कालानुरूप परिवर्तन के प्रभावपूर्ण चित्रण के कारण नाटक सफल हो गये हैं। कथा वस्तु के अनुकूल सम्यक स्थान और वातावरण के अंकन से तत्कालीन युग का सम्यक बोध हुआ है। आधुनिक परिवेश के धरातल पर जीकर समकालीन महिला नाटककार इतनी अधिक ख्याति आर्जित कर सके हैं। देश काल और वातावरण की सम्यक अभिव्यक्ति उनके नाटकों की विशेष उपलब्धि हैं।

6.उद्धेश्य

प्रत्येक नाटक की रचना के मूल में कोई न कोई उद्धेश्य निहित होता है। यह उद्धेश्य अनेक प्रकार हो सकता है, यथा कहीं सामाजिक मूल्य, कहीं नैतिक आदर्श की स्थापना, कहीं व्यक्तिगत मूल्य, कहीं, कहीं पारिवारिक मूल्यों की स्थापना का आदर्श स्थापना, कहीं देश या जाति के उत्थान-पतन के चित्रण करना , जीवन की किसी समस्या या उसके समाधान को प्रस्तुत करना, यथार्थ एवं आदर्श का समन्वय आदि। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में कुसुम कुमार जी का 'सुनो शेफाली' नाटक विशुद्ध राजनीति को विषय बनाकर रचनेवाला नाटक है। इस नाटक में रचनाकार का मूल उद्धेश्य सत्तारूढ़ सिंहासन की लालस, सत्ता को बनाये रखने की घिनौनी साजिशें, इससे त्रस्त जनता के संघर्ष को साकार करता है। सत्ता की पिपासा ही सत्यमेव दीक्षित को जीवित कर देती है। 'रावणलीला' लोक शैली का अत्यंत सशक्त और सजीव नाटक है। लेखिका रामलीला के माध्यम से कला साधना के क्षेत्र में फैली अनैतिकता को लोककथा के रूप में दिखाना चाहती है। और 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' नाटक में जीवन स्थितियों से ऊबकर जीवन से पलायन करनेवाला आज के युवा पीढ़ी की मानसिकता को रहस्योद्घाटन करने का प्रयास किया गया है।

मन्नू भण्डारी जी का 'बिना दीवारों के घर' निरंतर शोषण का शिकार होती नारी की जागरूकता हेतु संदेश देते हैं। शोभा के माध्यम से नाटककार ने स्त्री के विभिन्न मनोभावों को, उसके आंतरिक संघर्ष को नारी शोषण के ख़िलाफ़ उसकी लड़ाई को प्रकाशित करने की सफल कोशिश नाटक का मुख्य उद्धेश्य रहा है।

मृदुला गर्ग जी का 'एक और अजनबी' नाटक के माध्यम से स्त्री पुरुष के प्रेम संबंधों का अनेक पक्षीय उद्घाटन किया है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में मोह के क्षण की उपस्थिति अनिवार्य है। उसे जीकर उससे गुजरकर सांसारिकता से मुक्ति पायी जा सकती है। और वर्तमान महानगरीय समाज की विकृतियाँ समकालीन समाज में परिचय करना ही नाटककार का मुख्य उद्धेश्य है। 'जादू का कालीन' नाटक में बाल मज़दूरों की दयनीय दशा उनके पुनर्वास प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा स्वयं सेवी संस्थाओं से जुड़े हुए लोगों के पाखण्ड को सशक्त रूप में उद्घाटित किया गया है।

मृदुला बिहारी जी के सभी नाटक स्त्री-पुरुष विषय बनाकर लिखे गये नाटक है। 'अँधेरे से आगे' नाटक में जानकी बाल विधवा होती है। उसका पति रामलाल पढ़ लिखकर एक उच्च वर्ग की युवती से शादी करना चाहता है। कल्याणी की प्रेरणा पाकर जानकी अपनी आत्मविश्वास को जगाती है और जीवन की दूसरे मोड़ पर आने के लिए कोशिश करती है। पति द्वारा तिरस्कृत जानकी का स्वावलंबन के लिए संघर्ष चेतना को प्रकट करती है। जानकी का यह संघर्ष केवल उसका ही नहीं बल्कि उन अनेक पीढ़ितों और व्यथित स्त्रियों का है जो जीवन में आई निराशा से घबराती नहीं बल्कि अपने सोये हुए आत्मविश्वास को पुनः जागृत कर स्वावलंबन की ओर बढ़ना चाहती है। 'भँवर' नाटक का मूल उद्धेश्य है कि घर और नौकरी के बीच झूलती हुई नारी की छटपटाहट को प्रस्तुत करती है। रंजना के माध्यम से कार्यालयों में होने वाले नारी शोषण को दिखाना दूसरी ओर उनका इज़्ज़त का महत्व को बताना चाहती है। 'तीसरे रास्ते की राही' नाटक का मूल उद्धेश्य दो समस्याओं को उठाया हैं।

आधुनिक प्रेम संबंधों में संकीर्णता की समस्या और दूसरी कस्बई नगरों और महानगरों की समस्या के अन्तर को स्पष्ट करना है। 'वे पाँच शब्द' नाटक में मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के आर्थिक अभावों और आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति करना है और नौकरी के लिए किस प्रकार का गिरे हुए पद्धतियों को अपनाकर नौकरी प्राप्त करना चाहते है। इस प्रकार की आधुनिक युवा पीढ़ी की मानसिकता को हमारे सामने रखने का ही लेखिका का मुख्य उद्धेश्य रहा है। 'देहरी' नाटक के माध्यम से संयुक्त परिवार में ससुराल की घर पर होने वाली सभी प्रकार के नारी शोषण और ग्राम्य परिवार की मानसिकता, नगरीय बोध लिए मंजली की चतुराई, नारी पुनर्विवाह के चेतना जैसे युवा मानसिकता को प्रस्तुत करना ही नाटक का मुख्य उद्धेश्य रहा है।

मृणाल पाण्डे का 'जो राम रचि राखा' उच्च या अभिजात्य वर्ग से आनेवाली तथाकथित विद्रोहियों और क्रांतिकारियों के आन्तरिक द्वौत या खोखलेपन को हमारे सामने रखना ही लेखिका का मूल उद्धेश्य रहा है। 'आदमी मछुआरा नहीं था' विचार पूर्वक और चिंतन प्रधान नाटक है। इस नाटक का मूल उद्धेश्य है समाज में व्याप्त इस्तेमाल करने और इस्तेमाल होने की स्थिति को स्पष्ट करना है। मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिकता को अभिव्यक्ति करते हुए नाटककार ने यह स्पष्ट करना चाहती है कि किस प्रकार हर आदमी विशेष बनने की कोशिश करता है। विशेष बनने के लिए किन किन घिनौने मार्गों को अपनाता है। आज हमारी व्यवस्था में इस प्रकार की व्यक्तियों की तथ्य को दर्शाना ही नाटककार का मुख्य उद्धेश्य है। 'चोर निकल के भागा' हास्य प्रधान नाटक है। नाटककार ने कला और आदर्श और सिद्धांत के प्रति एकनिष्ठ कलाकार के जीवन संघर्ष को रेखांकित किया है। इस के अतिरिक्त मध्यवर्गीय सुशिक्षित युवकों की बेरोज़गारी की समस्या को पर्दाफाश किया है।

मैत्रेयी पुष्पा का 'मंदाक्रान्ता' नाटक ने सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनुद्घाटित अंशों का उद्घाटन किया है और साथ ही विशुद्ध राजनीति पर आश्रित

नाटक की रचना की है। राजनीति के विशक्त जीवाणु सामाजिक जीवन को मैला और दूषित बना देते हैं। राजनेताओं की सत्तापिपासा आम आदमी का जीवन किस कदर नरकतुल्य बनाती है और विवश होकर उसे कैसे विद्रोह करना पड़ता है इसका मार्मिक चित्रण किया है। नाटककार ने सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के विभिन्न विषयों को नाटक में स्थान देकर नाटक को व्याप्त और प्रभावी बनाया है।

इस प्रकार समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से अनेक प्रकार की समकालीन समस्याओं का हमारे सामने पर्दाफाश करने की चेष्टा की हैं।

***

अध्याय - चार

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और सामाजिक चेतना

चतुर्थ अध्याय

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और सामाजिक चेतना

सामाजिक चेतना के पक्षों को ढूँढे इससे पूर्व यह जरूरी है कि 'सामाजिक चेतना' के अर्थ को विस्तार से स्पष्ट किया जाए तथा समाज और साहित्य के अटूट संबंध पर विचार किया जाए। भगवतीचरण वर्मा के अनुसार – "साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जो युगीन परिवर्तनों को आत्मसात करता हुआ शाश्वत प्रवाहमान है।"[1]

सामाजिक चेतना के अर्थ में समाज एवं चेतना संबंधी उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सामान्य परम्पराओं, रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों की पद्धतियों के कारण परस्पर संगठित व्यक्तियों के समूह तथा उसके विभिन्न वर्गों, उपवर्गों के जीवन, उनकी गतिविधियों, विविध क्रिया-कलापों, अभावों एवं विवशताओं, आशाओं एवं आकाक्षाओं, न्यूनताओं एवं उपलब्धियों के संबंध में जागरूकता बोध एवं सदासद्य विवेक तथा तज्जन्य प्रतिक्रिया सामाजिक चेतना कहलाता है। डॉ.शिवकुमार मिश्र ने कहा कि – "साहित्य तथा सामाजिक जीवन दोनों एक-दूसरे को प्रभावित तथा अनुकूलित करते हैं कि सामाजिक आधार से विच्छिन्न साहित्य या कला के

---

[1] डॉ. बैजनाथ शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग-चेतना, पृ .40

अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।"[1] मानवीय चेतना में ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक चेतना का समावेश होता है। चेतना का विकास सामाजिक वातावरण में ही होता है। वातावरण के प्रभाव से मनुष्य नैतिकता, औचित्य और व्यवहार कुशलता प्राप्त करता है जिसे चेतना का विकास कहा जाता है। डॉ.त्रिभुवन सिंह जी कहते है कि – "साहित्य का पहला अंग है भाव, जिसके लिए कल्पना का योगदान अपेक्षित है परन्तु कल्पना ऐसी अनुभूति के आधार पर निर्मित हो।"[2]

इन सब विचारों को देखते हुए कहा जा सकता है कि सामाजिक पीठिका के अभाव में साहित्यकार तिलस्मी महल में टंगें बेजुबान परिन्दों का ही निर्माण कर सकता है, जिसमें प्राणों का स्पन्दन तो दूर रहा सांस तक लेने की चेष्टा नहीं होती। साहित्य और समाज के संबंधों के विवेचनोपरांत यदि हम सामाजिक चेतना को भी स्पष्ट करने का प्रयास करें तो **सर्व प्रथम हमें समाज एवं चेतना के अर्थ** को विभिन्न शब्दकोशों या विद्वानों के मतों की सहायता से स्पष्ट करना होगा।

1.समाज और उसका स्वरूप

हम समाज की सरल परिभाषा यही दे सकते हैं कि समाज मनुष्य की समिष्टि का दूसरा नाम है। समाजशास्त्र के अनुसार मनुष्यों के अपने भिन्न-भिन्न व्यापारों के कारण उनमें परस्पर उत्पन्न हुई व्यवस्था का नाम समाज है, जिसमें व्यक्ति का महत्व सर्वस्वीकृत है। व्यक्ति के अभाव में समिस्टी की स्थिति या अस्तित्व आकाश कुसुमवत है, अर्थात व्यक्ति ही समाज के केंद्र में है। समाज को व्यक्ति से पृथक देखना या परखना एक भ्रांति है। यह बात दूसरी है कि समाज के नियम व्यक्ति के नियमों से भिन्न हो सकते हैं परन्तु व्यक्ति अपने व्यक्तिगत नियमों को समाज सापेक्ष रख कर ही समाज की इकाई बन सकता है। इससे विपरीत चलने से व्यक्ति स्वेच्छाचारी और

---

[1] डॉ. शिवकुमार मिश्र, साहित्य और सामाजिक संदर्भ, पृ. 9

3. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी साहित्य और यथार्थवाद, पृ. 31

समाज विहीन हो जाता है। समाज से विच्चिन्न होकर व्यक्ति का जीवित रहना कठिन है। इसलिए मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा जाता है। यह प्रश्न उभरता है कि आखिर मनुष्य क्या है?

इस संसार में जन्म लेनेवाला कोई भी व्यक्ति अपने जन्म के समय एक जैविकीय प्राणी (Biological being) होते हैं। दूसरे शब्दों में एक शारीरिक स्वरूप को छोड़कर उसमें कोई अन्य विशेषता नहीं होती। माता-पिता यदि अपनी संस्कृति तथा समाजिक नियमों के अनुसार बच्चे का पालन पोषण आरंभ से ही न करे तो उसका कोई भी व्यवहार सामाजिक नहीं बन पाएगा। ऐसा बच्चा न तो मनुष्य के समान चल सकेगा न ही यह सीख पाएगा कि समूह में दूसरे व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार किया जाए। बच्चे में इन सभी गुणों का विकास सामाजिक सीख द्वारा होता है। जिसे समाजशात्रीय सामाजिकीकरण की प्रक्रिया कहते हैं। व्यक्ति तथा समाज के संबंधों को इसी प्रक्रिया द्वारा समझा जा सकता है।

हिन्दी के विभिन्न शब्द कोशों में 'समाज' शब्द को निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है, समाज- सम-अज, मीटिंग विथ, फालिंग इनविथ, ए मीटिंग असंब्ली।"[1] अंग्रेजी भाषा में समाज शब्द के समानार्थक शब्द Society का अर्थ है, संस्कृति संप्रदाय, धर्म, राजनीति, विज्ञान और देशभक्ति या अन्य उद्धेश्यों हेतु परस्पर संबंध व्यक्तियों का संघटित समूह।"[2] समाज का अर्थ डॉ. श्यामसुंदर दास के शब्दों में – "एक ही स्थान पर रहनेवाले या एक ही प्रकार का व्यवसाय करने वाले, वे लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते हैं।"[3] डॉ. शंभूरत्न त्रिपाठी ने भी समाज को ऐसे परिभाषित किया है – "समाज का सामान्य अर्थ व्यक्तियों का समूह है। मनुष्य मनुष्यों से पृथक रहकर अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ होता है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने हेतु उसे अपने आसपास के व्यक्तियों से संबंध स्थापित करना

[1] Sir Monior William - a Sanskrit English dictionary - p.1153
[2] The random house dictionary of English language p. 1351
[3] डॉ. श्यामसुंदर दास - हिन्दी शब्दसागर (दसवाँ भाग), पृ. 4968

आवश्यक है। व्यक्तियों के इन सामाजिक संबंधों को समाज कहा जाता है।"[1]

इसके अतिरिक्त कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस शब्द को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। राइट के अनुसार – "मनुष्यों के समूह को समाज नहीं कहा जाता अपितु समूह के अंतर्गत व्यक्तियों के संबंधों की व्यवस्था का नाम समाज है।"[2] समाज के बारे में गिडिग्सं कहते हैं कि – "समाज एक संघटन है, पारस्परिक संबंधों का ऐसा समुच्चय है जिसके कारण उनके अंतर्गत व्यक्ति के एक दूसरे के साथ संबंध रहते है।"[3] सेम्युअल कोइंग के अनुसार – "समाज ऐसे लोगों का एक समूह है जो सामन्य परंपराओं, रिवाजों तथा जीवन पद्धतियों तथा संस्कृति के कारण संघटित होते हैं जिसके सदस्यों में संतृप्ति की भावना भी बनी रहती है।"[4] आर.एम.मेकाइवर के मतानुसार – "मनुष्यों में जो चलन है, जो कार्य विधाएँ है, पारस्परिक सहायता की जो प्रक्रिति है, शासन की जो भावना है, जो अनेक समूह और विभाग विद्यामान हैं, मानव व्यवहार के संबंध में जो स्वतंत्रताएँ है, उनकी व्यवस्था को ही समाज कहते है।"[5]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से यह कहा जा सकता है कि मानव समाज ऐसे व्यक्तियों का समुदाय है जो संस्कृति, परंपराओं, जीवन मूल्यों तथा जीवन व्यवहारों की समानता के कारण परस्पर संबंद्ध रहते हैं।

1.1.मनुष्य एक सामाजिक प्राणी

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है क्योंकि सामाजिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज उसे जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है। जिस प्रकार हमारे शरीर का निर्माण असंख्य कोशिकाओं से होता है, उसी प्रकार समाज

[1] डॉ शंभूरत्न त्रिपाठी - समाजशास्त्र के आधार पृ.33
[2] Right - Elements of sociology - p.5
[3] गिडिग्सं - समाजशास्त्र - पृ. 29
[4] Samuel cooing - sociology p. 21
[5] R.M. Mechaior - society an introductory analysis p.5

का निर्माण भी असंख्य व्यक्तियों द्वारा होता है। इस प्रकार व्यक्ति और समाज में व्यक्ति पहले है और समाज बाद में। समाज का अस्तित्व इस लिए है कि व्यक्ति स्वस्थ संबंधों का निर्माण करके उसे व्यवस्थित बनाते हैं। वास्तव में व्यक्ति समाज और दोनों ही एक दूसरे के विकास के लिए आवश्यक है। समाज के बिना व्यक्ति और व्यक्ति के बिना समाज का विकास कठिन है। दोनों एक दबसरे पर निर्भर है।

यह बात अलग है कि व्यक्ति के धर्म समाज के धर्म नहीं हो सकते, लेकिन समाज के धर्म व्यक्ति के धर्म हो सकते हैं और होनी चाहिए। समाज से टूटकर व्यक्ति का जीना संभव नहीं है। समाज से अलग रहनेवाले व्यक्तियों में या तो विक्षिप्त लोग आते हैं या साधू सन्यासी। ऐसे लोगों का व्यक्तित्व अंतर्मुखी होता है। ये लोग भी पुस्तकों, पूर्वकालिक स्मृतियों, पत्र-पत्रिकाओं तथा रेडियो आदि साधनों से कहीं-न-कहीं समाज से जुडी ही रहते हैं। इस प्रकार का समाज हितौषि व्यक्ति ही सर्वाधिक जागरूक या चेतना संपन्न होता है। समाज का पूरा ढ़ाँचा ऐसे व्यक्तियों पर स्थित है। दूसरे शब्दों में जैसे व्यक्ति वैसा समाज। व्यक्ति यदि चेतना संपन्न है तो समाज भी चेतना संपन्न होगा। व्यक्ति की चेतना का प्रमाण समाज में प्रवर्तमान विभिन्न क्षेत्रों में उसके अपने संबंधों की प्रभलता या निर्भलता पर निर्भर है। यह समाज के लिए भी सही है। समाज का संबंध भी किसी देश काल में प्रवर्तमान परिस्थितियों, प्रवृत्तियों से जितना अधिक प्रगतिशील होगा व्यक्ति भी उतना ही चेतना संपन्न होगा। यही पर समाज में व्याप्त परिस्थितियों तथा घनिष्ठ संबंधों का प्रश्न सामाजिक चेतना का प्रेरणा श्रोत होता है।

1.1.1.राजनीतिक संदर्भ

समाज स्वयं में मनुष्यों की पूर्णता अथवा समान व्यवस्था का बोधक है परन्तु उस व्यवस्था की पूर्णता राजनीति के कारण ही संभव होती है। राजनीति का समाज से गहरा संबंध है। समाज को सुचारू रूप से चलने के लिए सामाजिक नीति नियमों

को दृढ़ करने का कार्य राजनीति ही करती है। देश और काल के अनुसार राजनीति के नियमों तथा नीतियों में परिवर्तन होता रहता है परन्तु फिर भी सामाजिक नियमों की अपेक्षा राजनीतिक नियम अधिक बंधनकारी होते हैं। किसी जाति या समाज का अपराध राजनीतिक दृष्टि से दंडनीय है परन्तु सामाजिक व्यवस्था के नियामक लक्ष्य उसे ठहरा सकते हैं।

सामाजिक प्रगति में बाधक कार्य राजनीतिक दृष्टि से अपराध है। इसके साथ ही सामाजिक परिवर्तनों में राजनीतिक क्रांतियों का भी योगदान होता है। फ्राँस की राज्यक्रांति तथा रूस की लाल क्रांति वहाँ के लोगों के सामाजिक परिवर्तनों पर दूगामी प्रभाव डाला था। कोई भी राज्य व्यवस्था तब तक प्रभाव और अस्वीकृत रहती है जब तक उसके पीछे विशाल मानव समाज की सम्मति और सहमती न हो। चुनाओं द्वारा आज भी जनता के मत को सिरोधार्य किया जाता है। नेताओं द्वारा कनून की सहायता से किए गए सामाजिक सुधार उनके पक्ष या विपक्ष में पडकर बडे-बडे आन्दोलनों का रूपधारण करते हैं। विज्ञान के नये आविष्कारों ने संसार के मनुष्यों को एक समाज के रूप में निकट ला दिया है। आज किसी भी देश की राजनैतिक हलचल का प्रभाव दूसरे देशों पर शीघ्रता से पड सकता है। समाज और राजनीति का यह अविच्छिन्न संबंध किसी भी चेतना संपन्न साहित्यकार की उपेक्षा का विषय नहीं हो सकता।

1.1.2.आर्थिक संदर्भ

बीसवीं शताब्दी के बृहद् विश्वरूपी समाज की आधारशिला आज अर्थशास्त्र है। महान अर्थशास्त्री कौटिल्य का मत है कि – “धर्म, अर्थ और काम इन तीनों में अर्थ प्रधान है। धर्म और काम अर्थ पर निर्भर है।”[1] अर्थ के अभाव में मनुष्य के अंदर संकोच, लज्जा, सत्वहीनता, पराभव, खेद-ग्लानि आदि भाव अधिकार करते हैं जिसके कारण समाज में दास-मनोवृत्ति, नैतिक पतन, जड़त्व, अज्ञान छा जाता है। इन सभी

---

[1] अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्य - अर्थ मूलौ हि धर्मकामविति - अर्थशास्त्र - कौटिल्य पृ.१.३.६

पक्षों को ध्यान में रख कर नीतिकार कहता है – "मृतो दरिद्रहः पुरुषो अर्थात अर्थ से विहीन पुरुष की बुद्धि एवं धारण शक्ति नष्ट हो जाती है और उसकी सभी क्रियाएँ उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में बरसाती नदियाँ।"[1] दरिद्र पुरष के अन्यान्य गुण भी प्रकाशित नहीं होते। अतः व्यक्ति स्तर से लेकर समाज स्तर तक धन का महत्व स्वीकारणीय है। अर्थ की महत्ता स्वीकारते हुए कौटिल्य ने धनभोग और उपार्जन की सीमा रेखा भी खींची है।

आचार्यों की यह भावना आधुनिक मनुष्यों को ग्राहय नहीं हुई। आज के मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने उसे अधिकाधिक धन लोलुप बना दिया है। विगत युगों के जीवन स्तर और आज के जीवन स्तर में आये अंतर के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धन की आवश्यकता है। इस प्रकार आज का एक मात्र आधार अर्थ ही हो गया है और सामाजिक चेतना का मानदंड अर्थतंत्र और उसकी प्रभलता ही है।

आज समाज उच्च,मध्य और निम्न वर्गों में विभाजित है। इसका आधार भी अर्थ है। अर्थ के ही कारण समाज में अनेक आन्दोलन, समस्याएँ और विषमताएँ दिखाई देती हैं। संसार के बड़े देशों की आर्थिक स्पर्द्धा आज के विश्व समाज की कठिन समस्या है। मार्क्सवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, ये सभी अर्थ निर्भरवाद हैं। अर्थ के कारण ही और समाज संपन्न और विपन्न दो भागों में विभाजित है। इस प्रकार आर्थिक समस्या हिन्दी नाटक में अनिवार्य चेतना के रूप में उभरती हुई दृष्टिगोचर होती है।

1.1.3.धार्मिक और सांस्कृतिक संदर्भ

धर्म और संस्कृति समाज का अभिन्न अंग होते हैं। धर्म श्रद्धा का विषय है। विज्ञान धर्म की उसी बात को स्वीकार करता है जिसमें सत्य की सत्ता है। कपोल कल्पना या आडंबरों पर आधारित धर्म के इस रूप से विज्ञान का कोई संबंध नहीं है। विज्ञान हर बात को तर्क की कसौटी पर कस्ता है और उसे सिद्ध करता है। वस्तुतः

---

[1] अर्थेन च विहीनस्य पुरूषास्या ल्पमेंधसः
उच्छिधन्ते क्रियाः सर्वाग्रीष्मे कुसरितो यता।। पृ.९२

सभी धर्मों की भावना में समता और एकता है और उनका साध्य लोक-कल्याण है। इसे सिद्ध करने के साधन भिन्न-भिन्न होते हैं। साधनों की भिन्नता तथा विषमता समाज में भेद-भाव को जन्म देकर सामाजिक संघर्ष का मूल कारण बनती है। विभिन्न देशों - कालों के संघर्षों - क्रान्तियों का कारण भी जाति, वर्ग और धर्मगत भाव-वैषम्य ही है। जिस देश में या काल में धर्म के नाम पर जितने अधिक पाखण्ड और आडम्बर होंगे, वह देश और उसका समाज उतना ही पिछड़ा हुआ होगा। दूसरे शब्दों में उस देश और काल की सामाजिक चेतना उतनी ही पन्गु होगी।

ऊपर से सभ्यता और संस्कृति समानार्थक प्रतीत होते हैं परन्तु इन में मूलतः अन्तर हैं। वास्तव में सभ्यता भी संस्कृति का एक अंग है। हमारे दैनिक व्यवहार सभ्यता के अन्तर्गत आते हैं। हमें किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका ज्ञान हमें शिष्टाचार से होता है। शिष्टाचार और अनुशासन का अभाव व्यक्ति को असभ्य, जंगली या वहशी बना देता है। वास्तव में सभ्यता व्यक्तिनिष्ठ होती है। इसके साथ साथ यह भी कहा जा सकता है कि जिस देश के व्यक्तियों का व्यवहार जितना संयता होगा वह देश या समाज उतना ही महान जागरुक या चेतना संपन्न होगा। संस्कृति का अर्थ व्यापक होने के कारण उसे परिभाषित करना कठिन हैं। इसे लक्षणों के द्वारा जाना जा सकता है। रामधारी सिंह दिनकर सभ्यता और संस्कृतिक में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - अँग्रेजी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृतिक वह जो समाज में व्याप्त है। मोटर, महल, सड़क, हवाई जहाज, पोशाक और अच्छा भोजन तथा इनके समान सारी अन्य स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नहीं सभ्यता के समान हैं। मगर पोषाक पहनने और भोजन करने में जो कला है वह संस्कृति की चीज है। इसी प्रकार मोटर बनाने उसका उपयोग करने, महलों के निर्माण में रुची का परिचय देने और सड़कों तथा हवाई जहाजों की रचना में जो ज्ञान लगता है, उसे अर्जित करने में संस्कृति अपने को व्यक्त करती है। हर सुसभ्य आदमी सुसंस्कृति ही होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अच्छी पोषाक पहनने वाला भी तबीयत से नंगा हो सकता है और तबीयत से नंगा होना संस्कृति के

खिलाफ बात है।"[1] हिन्दी साहित्य कोश में भी सभ्यता और संस्कृति में कुछ ऐसा ही अन्तर करते हुए कहा गया है - सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं से समझना चाहिए जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन-यात्रा सरल एवं स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त होता हैं। इसके विपरीत संस्तृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएँ समझनी चाहिए जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली हैं। इसी दृष्टि से हम विभिन्न शास्त्रों, दर्शन आदि में होनेवाले चिंतन, साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहित-साधन आदि नैतिक आदर्शों तथा व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा दोंगे।"[2]

निर्कर्षतः किसी भी देश की संस्कृति का अर्थ है, उस देश या भूखण्ड के सभ्यतागत एवं साहित्यक-कलात्मक लक्षणों या विशेषताओं का समाहार। सभ्यता के लक्षणों के अन्तर्गत वहाँ के रीति-रिवाज खान-पान, आहार-विहार, यातायात आदि तथा कलात्मक लक्षणों के अन्तर्गत वहाँ की परम्परागत मान्यताओं, उत्सव-त्योंहारों, उद्योग-धन्धों, कला-कारीगरी आदि को रखा जा सकता है। संस्कृति का स्थायित्व कूप-मण्डूक वृत्तित्व के त्याग, दृढ़ लोक आस्था और आदान-प्रदान की प्रक्रिया पर निर्भर करता है। आदान-प्रदान की प्रक्रिया तो संस्कृति की जान होती है। ये गुण भारतीय संस्कृति में विद्यमान है। दिनकर जी लिखते है कि - सांस्कृतिक दृष्टि से वह देश और वह जाति अधिक शक्तिशालिनी और महान समझी जानी चाहिए जिसे विश्व के अधिक से अधिक देशों, अधिक से अधिक जातियों की संस्कृतियों को अपने भीतर जज़्व करके, उन्हें पचा करके, बड़े से बड़े समन्वय को उत्पन्न किया है। भारत देश और भारतीय जाति इस दृष्टि से संसार में संबसे महान है क्योंकि यहाँ की सामाजिक संस्कृति में अधिक से अधिक जातियों की संस्कृतियाँ पची हुई हैं।"[3]

---

[1] राधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ ६५१
[2] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा और डॉ. देवराज - हिन्दी साहित्य कोश, पृ. ८०१.सं.
[3] रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ.६५४

1.1.4.साहित्य और मानव जीवन

विश्व की समस्त कलाओं का आधार मानव जीवन है। यह मान्यता साहित्य के संबंध में ही अक्षरशः सही है। साहित्य मानव संस्कृति का अटूट अंग है अतः साहित्य सामाजिक चेतना का भी एक अनिवार्य तत्व है। यदि इससे आगे बढ़कर कहे कि साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित है तो इस में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। किसी भी देश की संस्कृति उसके साहित्य में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण अथवा समाज का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। समाज के उत्थान पतन में साहित्य का अत्यधिक योग्दान रहता है। इस बात का साक्षी देश में क्रांति की चिंगारी फूकने और अग्नि प्रज्वलित करने का कार्य साहित्यकारों ने किया है। फ्रांस और रूस के साहित्यकार इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

इस प्रकार साहित्यकार यदि सामाजिक है तो उसकी कृति भी सामाजिक होने को बाध्य है। साहित्य हमारे जीवन का यथार्थ और जीवंत इतिहास ही है जिसमें स्थितियों को छोड़कर शेष सब कुछ सत्य होता है। साहित्य विधा के रूप में नाटक मानव जीवन के अत्यधिक निकट होने के कारण समाज जीवन को अत्यधिक सशक्तता से प्रस्तुत करता है।

सामाजिक चेतना समाजगत होने के कारण समाज के साथ और उसके अभिन्नांग जैसे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि के परस्पर संबंधों का आध्ययन करना आवश्यक होता है।

2.सामाजिक चेतना का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

सामाजिक चेतना शब्द का संबंध मनोविज्ञान से है। मनोविज्ञान के अनुसार चेतना मानस की प्रमुख विशेषता है, अर्थात् वस्तुओं, विषयों तथा व्यवहारों का ज्ञान। चेतना की परिभाषा देना कठिन है पर इसका वर्णन किया जा सकता है। चेतना की प्रमुख विशेषताओं में निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह है। इस प्रवाह के साथ-

साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन एकता और साहचर्य भी है। चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव की विचित्रता तथा चेतना की अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्यक अनुभव से प्रमाणित होते हैं। यह चेतना व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार की हो सकती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सी.जी. युंग का कहना है कि – "सारी चेतना जो व्यक्ति की न होकर एक ही काल में अनेकानेक व्यक्तियों अथवा समुदाय-समाज, राष्ट्र अथवा संपूर्ण मानवजाति की संपत्ति हो, सामूहिक चेतना है। राज्य, धर्म, विज्ञान आदि विषय व्यापक धारणाएँ भी सामूहिक चेतना के अन्तर्गत आती हैं। समाज में नए मूल्यों की स्थापना के समस्त प्रयासों को सामाजिक चेतना से टकराना पड़ता है। प्रायः यह देखने में आता है कि समाज विशेष की दार्शनिक, राजनीतिक, साहित्यिक मान्यताएँ तो परिवर्तित हो जाती हैं परन्तु सामाजिक चेतना स्थाई बनी रहती है। इसके परिणामस्वरुप कालान्तर में नई मान्यताएँ या तो अत्यंत निर्बल होकर नष्ट हो जाती हैं या उनका क्रान्तिकारी रूप लुप्त हो जाता है और वे सामूहिक चेतना द्वारा ग्राह्य रूप में परिणत हो जाती हैं।"[1]

मानव प्रकृति की सर्वोत्तम चेतना प्राणी है। चेतना मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है, जिसका संबंध ज्ञान से है। वर्तमान में व्यक्ति के सामने उपस्थित उद्दीपकों का तुरंत स्पष्ट ज्ञान ही चेतना है। 'चेतना' में ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक प्रतिक्रियाएँ परस्पर मिलजुलकर काम करती हैं। 'चेतना' शब्द का शाब्दिक अर्थ संज्ञानार्थक चित् धातु में ध्रुव प्रत्यय से बना हुआ है। हिन्दी साहित्य कोश में 'चेतना'' शब्द को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि चेतस् मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है। अर्थात् वस्तुओं, विषयों एवं व्यवहारों का ज्ञान।"[2] मानक हिन्दी कोश के अनुसार चेतना मन की वह वृत्ति या शक्ति है, जिससे जीव या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि और बाह्य घटनाओं तत्वों या बातों का अनुभव होता

[1] हिन्दी साहित्य कोश - सं.डॉ. धीरेन्द्र वर्मा - पृष्ठ - 843
[2] धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश, प्र.सं. पृ. 289

है।"[1]

चेतना के संदर्भ में पहले यह सवाल उठता है कि आख़िर ये चेतना है क्या? इससे पहले चेतना शब्द का प्रयोग अचेतनता के विरोध में किया गया है। चेतना में - किसी बोधात्मक क्रिया के अन्तर्गत विषयी और विषय के पारस्परिक संबंध का ज्ञान निहित है, क्योंकि कोई भी कभी भी अनुभवमूलक रूप से स्वयं अपने स्व के अहं प्रत्यय के प्रति भी चेतन हुए बिना चेतन नहीं होता। चिंतनशील स्वभावना चेतना के जगत को अचेतनता के जगत से तीक्षणता के साथ पृथक कर देती है।"[2]

चेतना परंपरागत रूप से आनेवाली समस्त रूढ़ियों के प्रति विद्रोह भावना व्यक्त करना है। चेतना समाज की जागृति की ओर चलाती है। राम भरत पाली के शब्दों में चेतना एक संघर्ष है जड़ता के ख़िलाफ़ और उनके भी जो शोषण और मानवीय मूल्यों के हनन की अपनी नियति माने सदियों से स्पंदन हीन है।"[3]

विजयेन्द्र के शब्दों में मनुष्य की चेतना उसके इंद्रिय बोध से निर्मित होती है। संसार में रहते हुए अपनी ज्ञानेन्द्रियों को सदा खुला घटते हुए कि अपने चेतन से ग्रहण करने के लिए सजग रखा जाना चाहिए ताकि हमें इन्द्रियों, कल्पना और सहज ज्ञान के सहारे तत्परता और सक्षमता से जीवन और संसार के सूक्ष्मतम क्रिया व्यापारों का रचनात्मक अनुभव में बदल सके।"[4]

एम.एम अग्रवाल का कहना है कि - यह चेतना की उपस्थिति ही थी जो मानव को अन्य भौतिक प्रकृति से अलग करने का सबल कारण प्रस्तुत कर सकता है। निश्चित ही चेतना का एक रूप मानवेतर प्राणियों में निहित है। पर जहाँ तक आत्मा-चैतन्य का सवाल है, मानवेतर प्राणियों की चेतना की स्थिति की प्रकृति मानव की

---

[1] सं. रामचन्द्र वर्मा - मानक हिन्दी कोश, खण्ड-2, पृ.274
[2] भारतीय दर्शन में चेतना का स्वरूप- श्रीकृष्ण सक्सेना, पृ.3
[3] युद्धरत आम आदमी. जुलाई-सितंबर - 1995, पृ.20
[4] वश्वनाथ प्रसाद तिवारी, आठवें दशक की हिन्दी कविता, पृ.1

चेतना की स्थिति से अलग है।"[1]

मानव चेतना मानव के अनुभव संसार की चीज़ है जीवन में घटित हो रहे युग और परिवेश के आकर्षण- विकर्षण घात प्रतिघात से चेतना प्रभावित होती है तथा इन्हीं के बीच मानव चेतना का विकास भी होता है। मनुष्य की चेतना को जीवन प्रक्रिया के संदर्भ में ही देखा जा सकता है। मुक्तिबोध इस प्रक्रिया को मानव संबंधों के साथ जोड़ते हुए कहते हैं कि – "न केवल वर्तमान मानव संबंध चेतना के भीतर प्रवेश कर उसके निजतत्व बन जाते हैं, बल्कि यह है कि चेतना की प्रवृत्तियों के रसायन नियम भी वे ही करते हैं।"[2]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सामान्यतः परम्पराओं, रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों की पद्धतियों के कारण परस्पर संगठित व्यक्तियों के समूह तथा उसके विभिन्न वर्गों, उपवर्गों के जीवन, उनकी गतिविधियों, विविध क्रिया - कलापों, अभावों एवं विवशताओं आशाओं एवं आकांक्षाओं एवं उपलब्धियों के संबंध में जागरुकता बोध सामाजिक चेतना कहलाती है। प्रत्येक युग अनेक स्तरों पर परिवर्तन करता है। जैसे समाज बदलता रहता है, वैसे मानव-संबंध भी बदलेंगे और निश्चित रूप से चेतना पर भी प्रभाव अवश्य पड़ता है।

साहित्य का क्षेत्र भी युगीन जीवन के साथ बदलता रहा है, साहित्य की चेतना युगीन परिस्थितियों के साथ परिवर्तित होती है। जैसे हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की प्रवृत्तियों को देखे तो हमें पता चलता है कि साहित्य की चेतना भी युगीन परिस्थितियों के साथ बदलती रहती है। यह परिवर्तन परंपरा को आगे बढ़ाता है।

इस प्रकार चेतना मन की वह शक्ति है जो हमें मनोजगत के सूक्ष्मभावों का विचारों के साथ-साथ बाह्य जगत के पदार्थों, विषयों और व्यवहारों का ज्ञान कराती

---

[1] Thus it is the presence of Consciousness that provides the strongest reason for distinguishing man from the rest of the material nature. Though Consciousness of a man form is obviously present in animals, its existential nature in human being is characteristically different from them at least in so far as in human it involves self-Consciousness. - Consciousness and the integrated being, page-5

[2] मुक्तिबोध - नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पृ. 117

है, अतीत का स्मरण कराती है, भले बुरे ही पहचान कराती है और निरन्तर गतिशील रहते हुए भी विच्छिन नहीं होती।

सामान्यतः सामाजिक चेतना से हम किसी देश एवं काल विशेष से सम्बद्ध मानव-समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील जागृति समझते हैं जो प्रतिक्रियात्मक भी हो सकती है। जन-जीवन में लक्षित यह जगृति या सामाजिक चेतना तत्कालीन जीवन में पैदा हुए गतिरोध और गतिशीलता से जन्म ले सकती है। इसकी पृष्ठभूमि में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ हो सकती है।

3. सामाजिक चेतना और साहित्य

साहित्य समाज का दर्पण है, उसमें एक ओर एक व्यक्ति की भावनाओं को मूर्त रूप मिलता है तो दूसरी ओर युग धर्म भी झॉकती दिखायी देता है। साहित्य में युग की आत्मा का चित्रण हो तभी वह स्थायी साहित्य होता है। किसी भी साहित्यिक रचना में तत्कालीन सामाजिक अवस्था की प्रतिच्छाया अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। साहित्य में युग की आत्मा का स्पष्ट आभास भी मिलना चाहिए। साहित्य और इतिहास इस बात का सबूत है कि समाज हमेशा एक जैसा नहीं रहता बल्कि बदलता रहता है। यह परिवर्तन की प्रक्रिया सदैव कार्यशील रहती है। कोई भी साहित्यकार समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया का संवाहक होता है समय अपने भीतर अनेक कारणों को समाये रहता है। समय का रथचक्र निरन्तर वेग से घूमता रहता है जिसके साथ-साथ समाज भी गतिशील बना रहता है।

साहित्य अपने व्यापक रूप में जीवन और जगत का रसात्मक अभिलेख है। साहित्य की रचना करते समय साहित्यकार जीवन के महान संदेशों की झलक देखता है। साहित्य और सामाजिक चेतना का गहन संबंध होता है। साहित्य विशेष रूप से दृष्टिसंपन्न होने, उद्धेश्यपूर्ण होने अवस्था के विरुद्ध प्रश्न खड़े करने की आवश्यकता पर बल देती है, ये सभी तत्व उसे सामाजिक चेतना से जोड़ते हैं। सामाजिक चेतना सबसे पहले किसी रचना के विचार दर्शन को प्रभावित करती है।

कोई भी लेखक या लेखिका अपने परिवेश की उपज होती है। अतः वह अपने समाज एवं परिवेश पर ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रचना करती है। ऐसा हुए बिना वह अपने धर्म का पालन नहीं कर सकती। अतः प्रत्येक साहित्यकार यदि सच्चे अर्थों में साहित्यकार है तो उसके प्रत्येक शब्द में परिवेश की धड़कन सुनी जा सकती है। यह साहित्य का सामाजिक चेतना से जुड़ होने का स्पष्ट प्रमाण है। समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। अतः लेखिका के व्यक्तित्व निर्माण में एवं एक अच्छे साहित्य की रचना में सामाजिक चेतना एवं परिवेश का ज़्यादा सहयोग रहता है। भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसमें धार्मिक भाओं की प्रचुरता है।

साहित्य मानव की सबसे रमणीय एवं सशक्त मानसी अनुभूति है। मानव चेतना समाज सापेक्ष होती है, अतः साहित्य भी नितांत समाज निरपेक्ष नहीं होता। साहित्य केवल असामाजिक व्यक्ति का आत्माभिव्यंजन या विस्फोट मात्र नहीं होता वरन समाज के प्रभावों से उद्भूत होते हुए अपनी जीवनी-शक्ति के कारण बहुधा सामाजिक चेतना का प्रेरक एवं प्रसारक होता है। मानव के विचार दर्शण के निर्माण में एक ओर उन संवेदनाओं का महत्व होता है जो उसे वैयक्तिक, पारिवारिक तथा व्यापक सामाजिक परिवेश से प्राप्त होती है दूसरी ओर उसके विचार दर्शण के निर्माण में परंपरा से चली आती हुई विचार धाराओं का भी योग होता है। किसी भी साहित्यकार के साहित्य में जो सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक मान्यताएँ दिखाई देती हैं वे उनके विचार दर्शन को स्पष्ट करती हैं। उनकी सामाजिक चेतना उन्हें अपने समकालीन अन्य लोगों से भिन्न स्तरों पर सोचने और रचना करने की प्रेरणा देती है। संभवतः इसी प्रेरणा का प्रतिफल साहित्य है। कहना न होगा कोई रचनाकार विभिन्न श्रोतों से प्राप्त अनुभवों तथा संवेदनाओं के आधार पर जिस सामाजिक चेतना को प्राप्त करता है वह परिपक्व होकर उसका विचार दर्शन बनती है। समाज में होने वाले परिवर्तन का साहित्यकार गहरा प्रभाव पड़ता है। साहित्य भी समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। मानव की परिस्थितियों एवं मनोंवृत्तियों का संघर्ष मात्र

दिखाकर ही आज के साहित्यकार का उत्तरदयत्वपूर्ण नहीं होता। अपितु निरंतर बदलते हुए बाहरी और भीतरी परिवेश से प्राप्त अनुभव के फलस्वरूप जो परिवर्तन उत्पन्न होता है, उन्हें भी साहित्यकार को चित्रित करना पड़ता है। साहित्य मानव के हितों का सबसे बड़ा रक्षक होता है, क्यों कि साहित्य में उन समस्याओं एवं बुराइयों का चित्रण होता है जो समाज में व्याप्त है। साथ ही उन समस्याओं का समाधान भी उसी साहित्य में मिलता है।

इसी प्रकार साहित्य स्वतंत्रता का समर्थन करता है। साहित्य मनुष्य केलिए आवश्यक स्वतंत्रता की सच्ची परिभाषा प्रस्तुत करता है। साहित्य, व्यक्ति की स्वतंत्रता और रूढ़ियों से समाज की मुक्ति की पक्षधर हैं।

4. समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना

प्रत्येक युग की अपनी विशेषता होती है जिसका बोध संकेतों व प्रतीकों के द्वारा होता है। समकालीन सामाजिक चेतना साहित्य की सामग्री बनती है और साहित्यकार मानवीय मूल्यों का उद्घाटन करता है। किसी भी वस्तु का साक्षात्कार उसके संपूर्ण अंगों से करते हैं, इसी प्रकार कृति का अध्ययन संपूर्ण युग से करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. सुमन राजे का कहना है कि – "जिस प्रकार हम अंगों का साक्षात्कार न कर अंगी का साक्षात्कार करते हैं, उसी प्रकार एक काल- खण्ड में रचित विभिन्न साहित्यिक रचनाओं को एक समग्र अंग के रूप में ग्रहण करते हैं। समग्र (युग) जिसका निर्माण स्वायत्त और स्वतन्त्र कृतियों के अंतः संबंध से होता है, वास्तव में समकालीन के भान में कृतियों की स्वायत्तता का भान तिरोहित नहीं तो स्थापित अवश्य हो जाता है।"[1]

साहित्य के इतिहास में समकालीन की कल्पना इस आधार पर ही संगत सिद्ध हो सकता है कि उसमें साहित्यिक आदर्श की कोई परिपाटी सर्वातिशयी हो। साहित्य

[1] हिन्दी साहित्य में मध्य युगीनता की अवधारणा - डॉ. पूर्णदास - पृ.16

के इतिहास का प्रत्येक काल स्पष्ट साहित्यिक आदर्शों की प्रधानता से अभिज्ञान होगा।

समकालीन सामाजिक चेतना साहित्य आदर्शों व कृतियों से प्रभावित होती है। साहित्यिक कृति किसी वर्ग संपूर्ण का लेखा नहीं बल्कि उसका संक्षिप्त वर्णन मात्र होती है जो दूसरी कृतियों के साथ-साथ युग की धारणा व परिचय का आधार बन जाती है।

व्यक्ति और समाज जीवन के परिवर्तन हर युग में होते हैं और उन्हीं परिवर्तनों के आधार पर जीवन मूल्य विकसित होते हैं। सामाजिक चेतना एक निरंतर परिवर्तनशील, प्रवाहमान तथा विभिन्न एकता और साहचर्य में समाहित होती है। चेतना के कारण ही व्यक्तियों में विकास व संघर्ष की स्थिति जन्मती है। किसी भी युग विशेष की मौलिक चेतना हुआ करती है, जो युगानुसार अपना चोला बदलती रहती है। काल या समय के साथ युग चेतना बदलती रहती है। युग चेतना के माध्यम से ही साहित्य और समाज की समानांतर रेखाएँ मिलती हैं।

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन में सामाजिक चेतना के विविध आयाम दृष्टिगोचर होते हैं। उनके नाटकों में सामाजिक चेतना के कई उपस्कारक हमें दिखायी देते हैं।

4.1 .सुनो शेफाली

'सुनो शेफाली' कुसुम कुमार जी के द्वारा लिखा गया नाटक है। प्रस्तुत नाटक में लेखिका ने सत्ता के भ्रष्टाचार और व्यवस्था की सुदृढ़ चट्टान के विरुद्ध अकेली नारी के संघर्ष को अभिव्यक्त किया गया है। शेफाली इस नाटक की नायिका है। वह एक हरिजन लड़की है और उसने किसी प्रकार बी.ए. की है। नगर के एक समाजसेवक ने अंग्रेजी पढ़ने के लिए उसे अपने घर में ट्यूटर रखा हुआ है। नगर सेवक के उसे नौकरी देने के दो उद्देश्य हैं। एक तो यह कि उसे अंग्रेजी का अच्छा

ज्ञान हो जाएगा और दूसरे यह है कि हरिजन लडकी के पढ़ने के कारण समाज में उसकी ख्याति बढ़ेगी। इस ख्याति के फल स्वरूप वह समाजयोग से राजयोग तक सीढ़ी लगा सकेगा। समाजसेवी दीक्षितजी ब्राह्मण हैं। निर्यात का उनका कारोबार है परन्तु इसके साथ-साथ उन्हें समाज सेवा का शौक भी है। समाज सेवा के माध्यम से दीक्षित राजनीतिक उड़ान भरने की महत्वकांक्षा भी अपने मन में फैलाए हुए है। इसी बीच दीक्षित का लड़का बकुल शेफाली से प्रेम कर बैठता है। दीक्षित बेटे के इस प्रेम को भी अपना सौभाग्य समझते हैं और चुनाव होने से पूर्व इन दोनों का विवाह कर देने को इच्छुक हैं। इन सभी प्रसंगों के माध्यम से लेखिका ने समाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्ति दी है।

शेफाली एक नव शिक्षित युवती है। वह जानती है कि एक गरीब हरिजन लड़की पर ब्राह्मण परिवार की कृपा का क्या अभिप्राय है। वह विवाह को टालना चाहती है। लेकिन दीक्षित तथा वकुल उसकी बात से सहमत नहीं है। वे इस विवाह को तत्काल सम्मान करके चुनाव में उसे भुनाना चाहते हैं। इस संबंध में अपनी जागरूकता का परिचय देते हुए शेफाली कहती है कि - बहनो और भाइयों ... अपना ओट हमें देकर अपना भविष्य उज्वल बनाइए यह बात आपसे इस जीव में मौजूद एक हरिजन लडकी कह रही है। इस लड़की को आज ही अभी-अभी ब्याह कर ला रहा हूँ।"[1] यही है वह स्वार्थ जिसे दीक्षित तथा उसका बेटा वकुल चुनाओं में सिद्ध करना चाहते हैं। इसके विपरीत शेफाली उन्हें स्वार्थ सिद्ध का अवसर देना नहीं चाहती। उसे किसी की दया पर रहना पसंद नहीं। उसे फटेहाल तथा गरीबी में रहना स्वीकार है परन्तु किसी का दया का पात्र बनना नहीं है। उसे इस बात की व्यथा है कि बचपन से लेकर अबतक घर से बाहर हर कदम पर रियायत ही रियायत सामने रखी मिली।.... हमें सिर्फ स्वीकारना होता था यह कहकर ही हम हरिजनों।"[2] शेफाली का अहं इसे स्वीकारने को और सहन करने को तैयार नहीं है। बकुल से विवाह को भी

---

[1] सुनो शेफाली - पृ. 86
[2] सुनो शेफाली - पृ. 32

वह एक प्रकार की रियायत ही मानती है जिसे स्वार्थ सिद्ध के लिए दीक्षित उसे देना चाहते हैं। वह बकुल से प्यार करती है और बकुल हिसाब लगाता है।"[1] इस स्तर पर नाटक में राजनेताओं के स्वार्थ रूप और प्रत्येक स्थिति में लाभ उठाने की इच्छा का विकृत रूप उभरता हुआ दिखाई देता है जो राजनीतिक चेतना को प्रस्तुत करता है।

शेफाली का विद्रोह वर्षो से मिलनेवाले रियायतों तथा आरक्षण की नीति के विरुद्ध विद्रोह है जो नाटक को समकालीन बनाकर सामाजिक चेतना से जोड़ता है।

लेखिका ने उपर्युक्त समस्या के साथ-साथ समाजसेवियों के स्वार्थ वृत्ति को भी उभारा है। दीक्षित जैसे छुटभैये वर्तमान भारतीय समाज में आए है जो सत्ता की सीढ़ी तक पहुँचने के लिए कैसी-कैसी चालें चलाते हैं लेखिका ने इस नाटक के माध्यम से बहुत गंभीरता से प्रस्तुत किया है। गरीबों, शोषितों और दलितों के प्रति अनका प्रेम स्वार्थ सिद्ध का एक साधन है जो दीक्षित गाँधी जी की समाज सेवा को जीवन का अंग बनाकर सत्ता के सिंहासन पर बैठना चाहता है वही दीक्षित एक अन्य अवसर पर गाँधी जी के प्रिय गीत को सुनना भी पसंद नहीं करता बल्कि - अरे भाई बंदकरो ये बकवास"[2] तक कहता है। इस स्तर पर नाटक की समाजिक चेतना नेताओं के दोहरे व्यक्तित्व के समकालीन संदर्भ से जुड़कर उभरती हुई दिखाई पड़ती है।

लेखिका ने मनन आचार्य के माध्यम से धार्मिक और सांस्कृति चेतना को उजागर किया है। मनन आचार्य झूठ-मूठ का ज्योतिषी है। मनन के अनुसार - यमुना का घाट कुछ कायरों के इलाज के लिए है। उसके पास कभी कोई टूटे ह्रदय को लेकर प्रेमी आता है तो कभी प्रेमिका। कभी कोई भांज आती है तो कभी गद्दीधारी प्राधान या खद्दरधारी, कभी कोई चुनाव प्रत्याशी तो कभी कोई सेवर राम, कभी कोई

[1] सुनो शेफाली - पृ. 36
[2] सुनो शेफाली - पृ. 42

नहला राम आता है तो कभी कोई दहला राम।"[1] मनन इनको कायर मानकर आशाएँ बाँटता है। मनन जैसे कितने ही ज्योतिषी आज भी भारत में है जे आशाएँ और विश्वास बाँटकर अपना पेट पालते हैं। मनन के माध्यम से लेखिका ने समकालीनता को प्रस्तुत किया है।

शेफाली की व्यथा को अभिव्यक्ति देने केलिए लेखिका ने मनन आचार्य के पास पिंजरे में बंद पक्षी का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। शेफाली भी रियायत रूपी बंद पिंजरे में छटपटा रही है। वह इस पिंजरे से मुक्त होकर दया-रहित और स्वाभिमान पूर्ण जीवन को जीना चाहती है। शेफाली की यह छटपटाहट नाटक के अंत में फड़लड़ाहट बनकर तब रह जाती है जब नाटक के अन्त में बकुल चुनाव से पूर्व उसकी छोटी बहन से विवाह कर लेता है। स्वार्थ-सिद्धि के लिए दीक्षित जैसा नेता किस स्तर तक पहुँच सकता है, उसका सशक्त चित्रण इस नाटक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। यह चित्रण समकालीन स्तर पर सामाजिक चेतना को प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार लेखिका ने इस नाटक में समाजसेवियों के छल-कपट, टूटते हुए जाति-बंधन, हरिजनों को मिलनेवाली रियायतों तथा मनन आचार्य जैसे झूठे ज्योतिषियों के ढ़ोंग और पाखण्ड आदि को आधार बनाकर समकालीन समाज का प्रभावशाली चित्रण किया है। छः दृश्यों में विभाजित इस नाटक में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतना समकालीनता के स्तर पर उजागर होती है।

4.2.रावणलीला

'रावणलीला' कुसुम कुमारी जी का दूसरा नाटक है, यह लोक शैली का एक अत्यंत सशक्त और सजीवन नाटक हैं। लेखिका ने रामायण की कथा के माध्यम से रामलीला में अभिनय करने वाले और विशेष कर रावण का अभिनय करनेवाले कलाकार करतार सिंह की सामाजिक और आर्थिक चेतना का मार्मिक और सजीव

---

[1] सुनो शेफाली - पृ. 40

चित्रण किया है।

नाटक दो अंकों में है और प्रत्येक अंक में दो दृश्य हैं। नाटक का आरंभ नेपथ्य से आनेवाली आवाज़ों और दर्शकों की सीटियों से होता है। आवाज़ें राम-लीला में काम करनेवाले कलाकारों की चिंता को प्रकट करती हैं जो एक कलाकार के समय पर न पहुँचने के कारण है और सीटियाँ दर्शकों के उतावलेपन को प्रस्तुत करती हैं जो रामलीला देखने के लिए आये हैं परन्तु परदा उठाने पर ही नहीं आ रहे हैं।

जिगर पुर की रामलीला का आज छठा दिन है। मंच संचालक जगन्नाथ समय गुज़ारने के लिए भाषण दे रहा है परन्तु दर्शक रामलीला देखने के उद्धेश्य से आये हैं न कि भाषण सुनने के लिए। दर्शक दशरथ की भूमिका करनेवाले पुराने कलाकार भगवान दास को देखना चाहते हैं परन्तु भगवानदास अपने घर में बेटा होने के कारण मंच पर आने में असमर्थ है। जैसे-तैसे रामलीला शुरू होती है।

रावण की सभा का दृश्य चल रहा है। चेतराम, सेनापति के वेश में आकर रावण को दोनों के वध की सूचना देता है। यहीं पर रावण उससे चुप बे चेत राम के बच्चे कह कर चुप कराता है। चेत राम रामलीला का छोटा कलाकार है अतः खून का घँट पीकर रह जाता है। चेतराम जैसे कितने ही कलाकार इस देश में हैं जो बड़े कलाकारों की इसी प्रकार डाँट खाते हैं और चुप रह जाते हैं। इस धरातल पर नाटक में समकालीनता उभरती है जो सामाजिक चेतना को प्रस्तुत करती है।

इसी दृश्य में शूर्पनखा का प्रसंग है जो रावण बने करतार सिंह की डाँट खा कर अपने संवाद भूल जाती है।

दूसरा दृश्य राम लीला में काम करनेवाले कलाकारों के आपसी वार्तालाप से जुड़ा हुआ है। सीता की भूमिका कर रहा चेतराम कहता है कि वह पहले तो दुबला-पतला था परन्तु अब तोंद बढ़ जाने के कारण इस भूमिका में भद्दा लगता है।

काशीराम अभिनेताओं के लिए चाय-पानी का प्रबंध करने जा रहा है। रावण का अभिनय करनेवाले करतार सिंह को दो घूँट लेने की आदत है। इस को लिए बिना उस से अभिनय नहीं होता। काशीराम के शब्दों में - श्रद्धा नाम की चीज ही नहीं है लोगों में। दो महीने से घर-घर दुकान-दुकान जाकर चंदे के लिए झोली पसारता हूँ तब कहीं टँगते है दस दिन के लिए ये परदे।"[1]

काशीराम के शब्दों में जहाँ आधुनिक युग में टूटते और खण्डित होते विश्वासों का चित्रण है वहाँ देश की नाट्य-मंडलियों की जरजर और दयनीय आर्थिक स्थिति का भी वर्णन है। काशीराम की यह टिप्पणी आर्थिक और धार्मिक चेतना को व्यक्त करती हुई दृष्टगोचर होती है।

मारीच की भूमिका निभा रहे कलाकार के पास संवादों को याद करने का समय नहीं है क्यों कि वह सायं आठ बजे दुकान बन्दकर के आता है। इस के बाद रावण के दरबार के दृश्य से पूर्व सेठधर्मचन्द ओढ़नीवाले को माइक पर बुलाया जाता है क्योंकि रामलीला के लिए वह सबसे अधिक चंदा देता है। यह बात दूसरी है कि वह जिस-चंदे को देता है उसे खोमचे वालों और रेहड़ीवालों से इक्कट्टा करके देता है।"[2]

इस प्रकार से धर्मचंद नाटक, तमाशे आदि में सेठवाद को जिंदा रखे हुए है। यह प्रसंग भी समकालीनता को लिए हुए है। देश में वर्तमान में कितनी ही संस्थाएँ (विशेष कर शिक्षा संस्थाएँ) हैं जहाँ सेठों का कब्जा है। इसके माध्यम से आर्थिक और सामाजिक चेतना मुखरित हुई है।

दर्शक सेठ के भाषण को सुनने के लिए तैयार नहीं है। उसको मंच से उतरते ही पंचवटी का दृश्य शुरू होता है। राम-लक्ष्मण स्वर्णमृग के पीछे दौड़ रहे हैं। साधुवेश में रावण का आगमण होता है। सीता संवादों को भूल गयी है अतः रावण का प्रतिशोध किये बिना ही उसके साथ चलने लगती है। सीता रावण से उठाई नहीं

---

[1] रावणलीला - पृ. 31
[2] रावणलीला - पृ. 46

जाती अतः चेतराम इस संदर्भ में उसकी सहायता करता है। लेखिका ने इस व्यंग्य के माध्यम से समकालीन समाज को प्रस्तुत किया है।

दूसरा अंक वास्तव में रामलीला को प्रस्तुत करता है। रावण की भूमिका निभाने वाला करतार सिंह इस बात पर अड़ा हुआ है कि वह प्रति दिन के हिसाब से पच्चास रुपये लेगा। वह दर्शकों द्वारा अपने अभिनय की प्रशंसा से संतुष्ट नहीं है क्यों कि काशीराम के पास सौ एकड़ ज़मीन है जबकि करतार सिंह को तो पेट चलाने के लिए गड़ेरियों का काम है और इस वर्ष मिलने वाली धनराशि से उसे अपने घर की छत की मरमत्त करानी है। करतार सिंह की यह समस्या नाटक में आर्थिक चेतना को उभारती है।

इस अकं के दूसरे दृश्य में जगन्नाथ की बात ही नाटक की मूल संवेदना है कि मंच पर हम जो लीला देखने का प्रयास करते हैं उससे कहीं अधिक माया परदे के पीछे चलती है।"[1] अशोक वाटिका में फल नहीं है अतः फलों को हनुमान के लिए फेंका जाता है। आगे चलकर हनुमान को पकड़ कर रावण की सभा में लाया जाता है। वहाँ पर लेखिका ने दूसरे दरबारी के माध्यम से आज के मंत्रियों पर व्यंग्य कर नाटक को समकालीनता से जोड़ने का प्रयास किया है। दूसरा दरबारी कहता है कि - अरे यह तो फिर भी इस युग का मंत्री है जो ढेरी के बदले में एक बेरी तो देता है। कलियुगह के मंत्री तो एक एक बेरी भी नहीं दे सकेंगे और लेने की बारी पर दे ढेरी पर ढेरी।"[2] राज सभा में मेघनाध के द्वारा विभीषण का अपमान अधुनिक संदर्भों की ओर संकेत करता है। विभीषण को दरबार से निकालते हुए रावण फिर करतार सिंह के रूप में आ जाता है और कहता है कि - सालों से पैसे मांगने की बात मत करो, बस बस। बाकी सब फसक्लास है। पैसे माँगलूँ तो अभी बोलती बन्दहो जायेगी उनकी। साले पेट की संस्कृति की बात मत करो, भरतीय संस्कृति की बात करो।"[3] करतार सिंह के ये शब्द आर्थिक चेतना को उजागर करते हैं।

---

[1] रावणलीला - पृ. 62
[2] रावणलीला - पृ. 75
[3] रावणलीला - पृ. 84

नाटक में आगे चलकर काशीराम के कथन हैं जो वर्तमान युग में बढ़ती हुई मँहगाई को प्रस्तुत करते हैं। काशीराम के कथनों पर टिप्पणी करते हुए रावण का कथन -ड़ण्डा चलता है को पाँच रुपये किलो का प्याज दो दिन में तीन रुपये किलो, दस रुपये किलो का चावल एक दिन में सात रुपये किलो।"[1] नाटक को आज के प्र शासनिक संदर्भों से जोड़ता है।

इस नाटक में आगे चलकर राव-रावण युद्ध का दृश्य है। रावण बने हुए करतासिंह के शब्दों में - तो फिर सुन लो तुम भी, पच्चास रुपये में रावण और उसका बाप दोनों नहीं मर सकते। रेट हमारा अब और बढ़ गया है। आज हमें चाहिए अस्सी।"[2] करतार सिंह इस बात को जानता है कि रामलीला के संचालक अब उसे अस्सी रुपये प्रसतिदिन के अनुसार भी देंगे क्योंकि अब वे फँसे हुए है। वह मंच पर युद्ध को और लंबा खींचता जाता है। दर्शकों के उतावलेपन और अधीरता को देखकर रामलीला के संचालक करतार सिंह को अस्सी रूपये देने का संकेत करते हैं। उनका संकेत मिलते ही करतार सिंह चित गिर जाता है और रामलीला अथवा रावण लीला समाप्त होती है। रावण बने करतार सिंह के निम्न लिखित शब्द अत्यंत सार्थक और सटीक हैं -

हाँ हाँ हाँ हा। मैं हूँ रावण
शूर, बहदुर, दिलेर, बलवान
तेजस्वी हुकमरान
मेरे नाम का यश मेरी गदा की ठस
जानता जमीनों-आसमान
मेरा सच्च सिर्फ मेरे दाम, मेरे दाम
साल में पाँच दिन मिलता मुझे बस

[1] रावणलीला - पृ. 85
[2] रावणलीला - पृ. 106

यह पार्ट टइम काम, काम, काम।"[1]

इस प्रकार लेखिका ने इस नाटक के माध्यम से आधुनिक समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, स्वार्थवृत्ति और अन्याय को प्रस्तुत किया है। रावण बने करतार सिंह के माध्यम से निम्न मध्य वर्ग की संकट पूर्ण आर्थिक स्थिति का मार्मिक और प्रभावशाली चित्रण किया है। नाट्य-मंडलियों की जर्जर स्थिति के द्वारा ह्रास शील लोक-रंगमंच का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। लेखिका द्वारा चित्रित यह समाज वर्तमान भारतीय समाज है। इस समाज की आर्थिक, सामाजिक और यत्र-तत्र राजनीतिक चेतना इस नाटक में सशक्त और सजीवन रूप में अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.पवन चतुर्वेदी की डायरी

'पवन चतुर्वेदी की डायरी' कुसुम कुमारी जी का तीसरा नाटक है, प्रस्तुत नाटक परिस्थितियों के भंवर में डूबते-उतराते व्यक्ति की संवेदना को लेकर लिखा गया है। पवन इस नाटक का नायक है। बाईस वर्ष पूर्व बी.एस.सी के अन्तिम वर्ष में पढ़ रहा था कि उसे एक फिल्म में ब्रेक मिला गया। पढ़ाई को अधूरी छोड़कर वह 'विजय' फिल्म का हीरो बन गया। उसे लेकर दो फिल्में बनी परन्तु पिट गईं। फिल्में पिट जाने के बाद भी वह बम्बई की चकाचौंध का मोह त्याग नहीं सका अतःउसी फिल्म कम्पनी का मैनेजर बन काम करता रहा। बम्बई से लौटकर पवन ने कई नौकरियाँ कीं। इसी बीच सुषमा के प्रेमजाल में फंसकर उससे विवाह कर लिया और उससे एक बच्चा भी हो गया। पवन जीवन में स्वयं को अभी स्थापित भी नहीं कर पाया था कि दूसरे बच्चा के पैदा होने की संभावना उभरनी आरम्भ हो गई। पवन नहीं चाहता था कि दूसरा बच्चा इतनी शीघ्र घर में आये अतः वह सुषमा को गर्भपात कराने के लिए कहता है। सुषमा उसके इस प्रकार के व्यवहार से बिफर कर कह उठती है - नीच। कमीने। भेड़िये।...खून की एक बून्द तक नहीं मुझमें और मुझे ले

[1] रावणलीला - पृ. 104

चले हो उस कसाई खाने।"[1] यह यहीं पर ही बस नहीं करती बल्कि आगे भी कहती है - मर क्यों नहीं जाता कमीने। तेरी मौत पर मैं घी के दिये जलाऊँगी।"[2] सुषमा के इस प्रकार के व्यवहार से वह आपा खोकर वह उठता है - तू साली दो कौड़ी की कुतिया...किस मनहूस घड़ी में तुझे उठा लाया था।"[3] इस घटना के बाद दोनों के बीच में कभी न खुलने वाली गाँठ पड़ जाती है फलतः दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

इन सभी घटनाओं और स्थितियों के माध्यम से लेखिका ने व्यवसाय की असफलता, बेकारी, प्रेम-विवाह, गर्भपात, प्रेम-विवाह की असफलता, पुरुष का स्त्री को नौकरी कराने के लिए दबाव आदि को समकालीन स्तर पर उभारकर सामाजिक और आर्थिक चेतना को व्यक्त किया गया है।

सुषमा से टूट कर पवन का झुकाव इला की ओर हो जाता है। वस्तुतः सुषमा के उस व्यवहार का कारण भी इला ही है। पति-पत्नी के बीच में दूसरी औरत के आने के कारण दोनों में कटाव और टूटन उभरती है जो आधुनिकता की स्थितियाँ हैं। यह स्थितियाँ भी समकालीनता को लिए हुए हैं।

पवन से तलाक लेकर सुषमा खर्चे की माँग करती है क्योंकि उसे पवन के दो बच्चों का पालन-पोषण करना है। यद्यपि सुषमा कई बार पवन की बरसी कर चुकी है परन्तु खर्च के नाम पर पवन उसके लिए अमर है। वह पवन को लिखे गये पात्रों में जी भर कर गालियाँ देती है जिसका पवन के पिता डॉ. चतुर्वेदी को बहुत दुःख होता है। लेखिका ने पवन-सुषमा के तलाक, दोनों के झगड़े के मूल में दूसरी औरत तथा बच्चों को पालने के लिए खर्च की माँग के माध्यम से समकालीन समाज के समसामयिक और आर्थिक प्रश्नों को उठाया है।

नाटक के प्रारंभ में पवन एक पुस्तकालय में नौकरी करता हुआ दिखाई देता है। यहीं पर एक व्यक्ति आता है जो पवन से इलियट, पर्लबक, लारैंस आदि की

[1] पवन चतुर्वेदी की डायरी - पृ. 49
[2] पवन चतुर्वेदी की डायरी - पृ. 50
[3] पवन चतुर्वेदी की डायरी - पृ. 50

पुस्तकों की माँग करता है। इन पुस्तकों को उसके बास की बीवी ने मंगवाया है। पुस्तकालय में केवल पुरानी जासूसी पुस्तकें हैं जो मलबे के रूप में है। पवन से बातचीत में उस व्यक्ति का यह कहना - पेट भरा हो जिसका, वह और करेगा क्या।"[1] यहाँ लेखिका का आर्थिक प्रश्न उठाकर आर्थिक चेतना का परिचय देती है। पुस्तकालय में रहते हुए पवन का जीवन भी पुस्तकालय के मलबे की भांति हो चुका है जिसमें कोई काम की घटना नहीं होती। लेखिका ने पुस्तकालय की जर्जर अवस्था के माध्यम से पवन के जीवन में आ चुकी जड़ता को उभार कर समकालीन संदर्भों से जोड़ा है।

आगे चलकर पवन का परिचय मेहता से होता है। डॉ. चतुर्वेदी के अनुसार - मेहता ऐश करने वालों की जमात का है। यही लोग दूसरों को अपनी सवारी बनाते हैं..बहुत से लोग अपने कंधों को पेश करने के लिए मिल जाते हैं ऐसे लोगों को।"[2] पिता और पुत्र में आपस में पटती नहीं इसलिए दोनों अलग-अलग रहते हैं। पवन जीवन में असफल रहा है अतः उसे अपने पिता से चिढ़ है। वह अपने पिता से अलग पहचान बनाना चाहता है। अतः पिता की नसीहत की ओर कोई ध्यान नहीं देता। मेहता में सामने वाले व्यक्ति को प्रभावित करने की शक्ति है। वह पवन को यह कह कर - पहचान पैसे से होती है, एक सफल पेशेवर बनने से होती है...जानते हो दुनिया किस स्पीड से पैसा बना रही है - जहान भर के बुद्ध, अपढ़, गँवार आदमी खरीद-बेच के धंधे में अपनी तकदीरें बना रहे हैं-सिर्फ इसलिए कि इनवैस्ट करते हैं।"[3] प्रभावित कर लेता है और पवन उसे अपनी पूँजी सौंप देता है ताकि इससे रुपया कमाया जा सके। पवन में अहं प्रबल होने के कारण वह चाहता है कि अपने पिता को अपनी अलग पहचान बनाकर दिखाए, मेहता के इस बात से भी प्रभावित है कि टूटे संबंध पैसे से जुड़ जाते हैं। पैसा कमाने के उद्देश्य से पवन अपनी पूँजी मेहता के माध्यम से शेयर बाजार में लगाता है। शेयर बाजार में बैठे हुए पवन को पता

---

[1] पवन चतुर्वेदी की डायरी - पृ. 3
[2] पवन चतुर्वेदी की डायरी - पृ. 70
[3] पवन चतुर्वेदी की डायरी - पृ. 20

चलता है कि सामने जो जनाजा गुजर रहा है, वह उसके पिता चतुर्वेदी का है। वास्तव में यह जनाजा तो एक प्रतीक मात्र है। यह चतुर्वेदी का नहीं पवन का ही है जो मेहता की सवारी बनकर अपनी कुल जमा पूँजी लुटा चुका है। इसी समय पवन का यह कथन - बाबूजी, आपका चश्मा मिला....लेकिन देर से....आसपास का कुछ दिखाई नहीं दे रहा...और दूर देखने की इच्छा ही मर गई।"[1] पवन के अपराध-बोध और पश्चाताप-बोध को प्रस्तुत कर सामाजिक चेतना को उभारता है।

पवन नाटक के आरंभ से डायरी खोलता है और अन्त में बन्द करता है। यह खोलना और बन्द करना जीवन के निकट आना और दूर जाना है। वह दोनों ही स्थितियों में राहत प्राप्त नहीं कर पाता क्योंकि यही उसकी नियति है। पवन की नियति के माध्यम से लेखिका ने आज के व्यक्ति की नियति को प्रस्तुत कर सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार यह नाटक वर्तमान जीवन के पारिवारिक तथा समाजार्थिक प्रश्नों को समाज के सामने सशक्त रूप में अभिव्यक्त करता है।

4.4.बिना दीवारों के घर

मन्नु भंडारी का प्रस्तुत नाटक मध्यवर्गीय परिवार की नारी की स्वतंत्रता को लेकर लिखा गया है। नाटक की नायिका शोभा एक कालेज में प्राध्यापिका है। विवाह से पूर्व वह बरेली की एक दसवीं पास लड़की थी जिसे साड़ी बांधना तक नहीं आता था। अजित ने विवाह के बाद शोभा को एम.ए. कराकर कालेज में लगवा दिया। नौकरी पर जाने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि जितना समय वह अपने घर और बच्चों को देती थी, उसमें कुछ कमी आये। अजित शोभा के नौकरी करने के बावजूद अपेक्षा करता है कि वह उसे उतना ही समय दे जितना नोकरी से पूर्व दिया करती थी। शोभा के लिए यह संभव नहीं है। इसकी स्वीकारोक्ति शोभा के शब्दों में इस प्रकार हुई है कि – **शोभा :** (मुस्कुराते हुए) पता नहीं किस जमाने में तुम काम

[1] पवन चतुर्वेदी की डायरी - पृ. 94

के थे मैं तो आई हूँ तब से ऐसी ही बेकार देख रहीं हूँ। (कुछ ठहरकर) यह सच है कि अब मैं तुम्हारी उतनी देखभाल नहीं कर सकती। पहले तुम्हारे और घर के सिवाय और कोई काम ही नहीं था सो सारे दिन उसी में लगी रहती थी। अब वह सब काम कालेज के साथ संभव नहीं होता।...नौकरों का हाल तो तुम देख ही रही हो।"[1]

अजित स्वयं एल.एल.बी है। इसके पिता चाहते थे कि वह पढ़ाई समाप्त करके परिवार के पुश्तैनी काम को संभाले। अजित के अहं ने इसे स्वीकार नहीं किया और पिता-पुत्र के संबंधो में टूटन आ गयी। पिता के टूटने के बाद अजित नौकरी करता है जिससे वह पूर्णतः असंतुष्ट है। दफतर में काम करते हुए उसमें खीज और निराशा उभरती है जिसका प्रभाव पति-पत्नी के संबंधो में खिंचाव के रूप में उभरता है।

इस प्रकार नाटक में पहले पिता और पुत्र के मध्य संघर्ष उभरता है और बाद में बनने वाले और बनाने वाले में। पिता और पुत्र का संघर्ष दो पीढ़ियों का है जबकि अजित और शोभा का एक ही पीढ़ी के दो व्यक्तियों का। वस्तुतः अजित मध्यकालीन और आधुनिक संस्कारों के बीच झूलता हुआ व्यक्ति है। पिता के विरुद्ध संघर्ष में पाश्चात्य शिक्षा और विचारों का प्रभाव दिखाई देता है जबकि शोभा के प्रति उसके व्यवहार में मध्यकालीन संस्कार दिखाई देते हैं।

नौकरी करने के कारण शोभा की अपनी कुछ व्यस्तताएँ है जिसके कारण वह जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती है। अजित को यह पसंद नहीं है। वह समझता है कि शोभा 'अजित-मेड' है अतः उसकी अपनी कोई पहचान नहीं है। नौकरी और घर के मध्य झूलती हुई शोभा के लिए यह संभव नहीं है कि वह दोनों के बीच उचित संतुलन रख सके।

कथा का यही मुख्य बिंदु है जिसे लेखिका ने उभारा है और विभिन्न स्थितियों के माध्यम से आगे बढ़ाया है। इधर नौकरी से असंतुष्ट होकर अजित त्याग-पत्र दे

---

[1] बिना दीवारों के घर पृ. 14

देता है और घर में बेकार बैठ जाता है तो दूसरी ओर शोभा, अजित के मित्र जयन्त की सिफारिश से एक महिला कालेज की प्रिंसिपल बन जाती है। जयन्त यद्यपि अजित का पुराना मित्र है परन्तु अपने बढ़े हुए अहं और बेकारी के कारण अजित को जयन्त का अपने घर आना-जाना तथा शोभा से मिलना-जुलना बुरा लगता है। पति-पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति और उससे पति-पत्नी के टूटते-बिखरते संबंध आधुनिक नगरीय समाज की चेतना को उजागर करते हैं।

शोभा अत्यंत योग्यता से प्राचार्य के पद को संभालती है। उसकी व्यस्तताएँ और बढ़ती जाती हैं। उसे कालेज के कुछ काम को घर पर भी करना पड़ता है। इस पर अजित को लगता है –

अजितः अभी साल खत्म हो रहा है ....मुझे तो आजकल लगता है जैसे मैं घर में नहीं, तुम्हारे ऑफिस में ही रहने लगा हूँ।"[1]

एक ओर बेकारी तथा दूसरी ओर जयन्त के प्रति ईर्ष्या के कारण वह जयन्त और शोभा को लेकर ऊलजलूल बातें सोचता है। शोभा को अजित की इस प्रकार की बातें सुनकर गहरा आघात लगता है। धीरे-धीरे दोनों के मध्य तनाव और टूटन उभरती है जो नाटक को आधुनिकता की स्थितियों से जोड़कर आधुनिता के स्तर पर सामाजिक चेतना को उभारती है।

अजित और शोभा एक ही घर और एक ही छत के नीचे रहते हुए एक दूसरे से अजनबी हो जाते हैं। शोभा यद्यपि नौकरी करने के कारण आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो चुकी है परन्तु उसे अनुभव होता है कि वह अजित से कटकर अपनी धुरी से बुरी तरह उखड़गयी है। इसकी स्वीकारोक्ति उसके इन शब्दों में हुई है –

शोभा : सब बेकार है जयन्त।........... लगता है जैसे जितना-जितना वह ऊपर से बढ़ती जा रही है, भीतर से उतनी ही उसकी जड़ें कटती जा रही है और

---

[1] बिना दीवारों का घर पृ.44

अपनी धरती से वह उखडती जा रही है।"[1]

शोभा के ये शब्द इस बात का प्रमाण हैं कि उसने घर की चार दीवारी से बाहर निकल कर अपने व्यक्तित्व और अस्मिता को तो बना लिया परन्तु घर-परिवार और पति से वह कितना टूटी है इसका अनुमान लगाना कठिन है। शोभा के व्यक्तित्व का विकास तो होता है परन्तु परिवार भी टूटता है। यह परिवार संयुक्त परिवार भी है जो औध्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण टूटा है बल्कि एकाकी परिवार है। नाटक में एकाकी परिवार की टूटने के स्तर पर सामाजिक चेतना अभिव्यक्त हुई है।

4.5.एक और अजनबी

मृदुला गर्ग ने प्रस्तुत नाटक के माध्यम से स्त्री-पुरुष के प्रेम-संबंधों का अनेक पक्षीय उद्घाटन किया है। शानी इस नाटक की नायिका है और इन्द्र खोसला से प्यार करती है। इन्द्र खोसला के लिए कैरियर का प्रश्न शानी से अधिक महत्वपूर्ण है। इन्द्र पढ़ाई के लिए अमेरिका चला जाता है। अपने प्रेमी के इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार की प्रतिक्रिया में शानी वोल्टास के सहायक मैनेजर जगमोहन से, कहकर - पर मैं शरच्चन्द्र की नायिका नहीं जो घर बैठ कर इन्द्र के लौटने की प्रतीक्षा करूँ।"[2] विवाह कर लेती है। इस प्रकार लेखिका ने नायक-नायिका के प्रेम, उच्चतर शिक्षा, प्रेम के अपमानजनक व्यवहार, टूटते प्रेम संबंध आदि के स्तर पर सामाजिक चेतना को उभारा है।

शानी जगमोहन से विवाह कर लेती है परन्तु उसे घर की चार दीवारी में बन्द रहकर जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं है। वह खुली हवा में जीना चाहती है। लेखिका ने शानी के मनोभावों को प्रकट करने के लिए मुहल्ले में रह रहे स्त्री-पुरुष के उन्मुक्त और खुले जीवन को प्रस्तुत किया है। शानी ने ऐसा जीवन जीने के सपने

---

[1] बिना दीवारों का घर पृ.48

[2] एक और अजनबी - पृ. 25

देखे थे जिन्हें पूर्णतः समर्पित होने के कारण वह विश्वास की गहन अन्तश्चेतना से लिप्त होकर अपने अहं का विसर्जन कर उससे संषयहीन प्रेम की अपेक्षा करती है।

जगमोहन उसी कंपनी में सहायक मैनेजर है जहाँ इन्द्र खोसला मैनेजर नियुक्त होकर अमेरिका से लौटता है। जगमोहन चाहता है कि वह इन्द्र को अपने घर पर निमंत्रण करे और किसी शाखा में मैनेजर बनने की युक्ति निकाले। वह शानी और इन्द्र के पूर्व संबंधों से पूर्णतः अनभिज्ञ है। जगमोहन की महत्वाकांक्षा समकालीन होकर नाटक को सामाजिक और आर्थिक चेतना से जोड़ती है।

शानी जो कभी इन्द्र से प्यार करती थी, इस समय माँ बनने वाली है। वह इस समय उचित नहीं समझती कि अपने पूर्व प्रेमी के सामने बढ़ा हुआ पेट लेकर जाए। इधर जगमोहन का आग्रह है कि इन्द्र को शीघ्र ही घर पर निमंत्रित किया जाए।

शानी माँ बनती है और कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो जाती है। इसके स्वस्थ होते ही इन्द्र को आमंत्रित किया जाता है। जिस दिन इन्द्र को निमंत्रित किया जाता है, जगमोहन को घर से बाहर जाना है। इस पार्टी के बीच शानी जगमोहन को बताती है कि इन्द्र उसके साथ पढ़ता रहा है। लेखिका ने पार्टी के माध्यम से नगरीय सभ्यता के अनेक पक्षों को उद्घाटित कर सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त किया है।

अपने पिता के सामने शानी इन्द्र के साथ शराब पीती है। उससे डांस करना सीखती है। कुछ आपत्तिजनक बातों को जगमोहन अनदेखा भी करता है। इसी बीच जगमोहन के स्टेशन पर जाने का समय हो जाता है। वह शानी को इन्द्र की देख रेख के लिए छोड़ कर यह कहते हुए - थैंक्यू डार्लिंग, कमाल कर दिया तुमने। आई थिंक वी हैव सोल्ड आवरसेल्वज"[1] चला जाता है।

---

[1] एक और अजनबी - पृ. 101

शराब पीना, डांस करना, पति का पत्नी को सीढ़ी बनाकर उन्नति करना आदि व्यावसायिक दृष्टिकोण ये सभी बातें नगरीय सभ्यता के विकारों को प्रस्तुत कर सामाजिकार्थिकचेतना को उभारती हैं।

जगमोहन के जाने के बाद शानी और इन्द्र खोसला घर पर रह जाते हैं। इन्द्र और शानी के मध्य प्यार का दूसरा रूप अर्थात् प्यार एक हवस है जो क्षण भर में शान्त हो जाती है।"[1] उभरता है और शांत हो जाता है। शानी और इन्द्र प्यार करते हैं और नाटक के बाहर हो कर जीते है।"[2] दोनों के मध्य जो सेक्स-व्यापार होता है उसमें शानी निस्संग और भावहीन रहती है। भावहीन और निस्संग रह कर जो हो रहा है, उसे होने देने को वह शायद विद्रोह समझती है। इसी समय इन्द्र के शब्द आई लव यू...आई लव यू"[3] और उसके प्रत्युत्तर में शानी का यह कहना-यही वह क्षण है जिसे मैंने चाहा था, उसकी उस मानसिक दशा को प्रस्तुत करता है जो इन्द्र से विवाह न होने के कारण विकसित हो गयी थी।

पति की अनुपस्थिति में दूसरे आदमी के घर में होना, दूसरे व्यक्ति के साथ यौन-व्यवहार तथा एक पतिव्रता का त्याग से प्रसंग तथा स्थितियाँ पाश्चात्य प्रभाव की देन हैं जिसका प्रभाव भारत के नगरों-महानगरों में दिखाई दे रहा है। वर्तमान महानगरीय समाज की ये विकृतियाँ समकालीन होकर ससामाजिक चेतना का परिचय देती है।

इस प्रकार दो अंकों में विभाजित, पांच स्त्री और चार पुरुष पात्रों पर आधारित इस नाटक में जहाँ जीवन की तीन अवस्थाएँ-मध्यावस्था तथा प्रौढ़वस्था का मणि, जगमोहन, इन्द्र, माँ और बूढ़ी के माध्यम से वर्णन किया गया है वहाँ प्रेम के विविध रूपों को भी प्रस्तुत किया है यथा शानी जगमोहन का दाम्पत्य-प्रेम, शानी-इन्द्र का अवैध प्रेम, स्त्री-पुरुष का स्वच्छंद-प्रेम तथा कामिनी लड़की का अन्तर्जातीय प्रेम। प्रेम

---

[1] एक और अजनबी - पृ. 25
[2] एक और अजनबी - पृ. 103
[3] एक और अजनबी - पृ. 105

के इन विविध रूपों के द्वारा लेखिका ने आधुनिक नारी की बदलते हुए दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर सामाजिक चेतना को उभारा है।

इसके अतिरिक्त लेखिका ने बूढ़ों के साथ व्यवहार- अरे बाबा हो जायेगा, अभी तो जान छोड़ो में माता-पिता लड़की के लिए अच्छा वर ढूढ़ने की चिन्ता में-अच्छा लड़का मिल जाये तो माँ-बाप के सिर का बोझ उतर जाता है।"[1] में सामाजिक चेतना को व्यक्त किया है।

लेखिका ने नाटक में सामाजिक और आर्थिक चेतना के साथ सांस्कृतिक चेतना को भी सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है। यह चेतना सुहाग गीत"[2] लोरी गीत"[3] तथा विवाह के समय स्त्रियों की चुहूलबाजी"[4] में मुखरित होती हुई दिखाई देती है।

लेखिका ने सांस्कृतिक चेतना को उभारने के लिए मुसलमानी संस्कृति के अन्तर्गत-चूड़ीदार पायजामा, शेरवानी, झाड़फानूस, मेहराब, पानदान, तबला, सारंगी, घंघुरू, नवाब, कत्था, सुपारी आदि का यथास्थान सुंदर प्रयोग किया है।

इस प्रकार लेखिका ने दादी की चारपाई के प्रतीक के माध्यम से राष्ट्र-प्रेम, राष्ट्र-भाषा-प्रेम को समकालीनता के स्तर पर उभार कर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय चेतना को सुंदर और सजीव रूप में उभारा है।

4.6.जादू का कालीन

मृदुला गर्ग ने 'जादू का कालीन' नाटक के माध्यम से बाल मज़दूरों की दयनीय दशा, उनके पुनर्वास प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़े हुए पाखण्ड को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। गाँवों में अकाल और सूखा पड़ा है। लोगों के पास खाने को अन्न नहीं है। वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण धरती बंजर

[1] एक और अजनबी - पृ. 103
[2] एक और अजनबी - पृ. 105
[3] एक और अजनबी - पृ. 69
[4] एक और अजनबी - पृ. 18

हो गयी है। अब गाँव में न जंगल है न लकड़ी, न पानी न धान, न घास न फल।[1] दादी के शब्दों में - देसवा के धान सब विदेसवा जाय रहे, महँगी पड़ता हर साल रिसन अकुलाय रहे।[2] भूख के कारण लोग विरह, खजरीगाना भूल गये हैं। अब तो गोरी के उठते यौवन को देखकर कलेजे में पीड़ा भी नहीं उठती है।[3] गाँवों की इस दयनीय स्थिति का लाभ उठाने के लिए कालीन कारख़ानों के दलाल आते हैं। भूखे-प्यासे बच्चों को मज़दूर बनाकर ले जाने के लिए दलाल प्रयास करते हैं। इन बच्चों की कोमल उँगलियों से निर्मित कालीन डॉलर पैदा करते हैं। कालीन निर्माता श्रम अधिकारी की मुट्ठी गर्म करते हैं ताकि वह इस समस्या को अनदेखा करे। उन्हें मंत्री जी को भी कमीशन देना पड़ता है।[4]

बाल मज़दूरों के उपहरण करके लाये जाने की बात फैलती है तो पत्रकार और स्वयं सेवी संघटन सक्रिय होते हैं। इन का प्रतिनिधि मंडल जब कालीन कारख़ाने का निरीक्षण करने आते हैं तो कारख़ाने का मालिक इन बाल मज़दूरों को किसी कमरे में बंद कर यह प्रदर्शित करता है कि उनके यहाँ ऐसा कोई मज़दूर नहीं है। बच्चों की चीख और पुकार सुनकर जब रहस्य से पर्दा उठता है तो वे लोग इन्हें कारख़ाना मालिकों के बंधन से मुक्त करा देते हैं। इस प्रकार बाल मज़दूरों के आर्थिक शोषण के आधार पर नाटक में समकालीनता उभरती है जो आर्थिक और सामाजिक चेतना को प्रकट करती है।

बच्चों के मुक्त होने के बाद उनके पुनर्वास की समस्या उभरती है। जिला कलेक्टर एक अमेरिकन कंपनी से हरियाना सरकार को डोनेट की गयी सरप्लस कुछ गाँवों को उन्हें देना चाहते हैं।[5] गाँव वालों के पास गायों के लिए खिलाने के लिए घास नहीं है, अतः वे इन्हें लेना पसंद नहीं करते। ऐसे में कलेक्टर लड़कियों को सिलाई मशीनों और लड़कों को गाय देने की बात करते हैं। महिला पत्रकार और

[1] जादू का कालीन - पृ. 33
[2] जादू का कालीन - पृ. 20
[3] जादू का कालीन - पृ. 20
[4] जादू का कालीन - पृ. 27
[5] जादू का कालीन - पृ. 42

समाज सेविका इसे लड़कियों के साथ भेद-भाव कहकर रोक देती हैं। इन बाल मज़दूरों में केशो पढ़ना चाहता है परन्तु कलेक्टर के पास उसे पढ़ने का कोई प्रबंध नहीं है। लाखन सोचता है कि वह गाय लेकर उसे बेच देगा फिर बंदुवा बनेगा। फिर कोई उसे छुड़ाएगा फिर गाय मिलेगी।[1] मूल समस्या की तरफ़ न तो प्रशासकों का ध्यान है और न ही प्रशासन का। गाँव के लोग भूखे-प्यासे क्यों है यह स्थिति समकालीन होकर सामाजिक और आर्थिक चेतना को उजागर करती है।

गाँव में सूखा पड़ा है परन्तु कलैक्टर के फार्म में ऐसी कोई बात नहीं है। समाज सेविका के घर में शावर, टब, कूलर, गमले सब हैं। पत्रकार को मुख्यमंत्री के जन्म दिन की पार्टी में जाने की जल्दी है। नगर के लोग गाँव की इस स्थिति से असंबद्ध हैं - बहुत लोग आये हैं शहरे से। पता करने की सूखा क्यों पड़े हैं? जंगल क्यों कटे है? पूरी, चना और भात से जंगल में बैठ पिकनिक मनावें है।[2] गाँव के लोग यदि किसी काम या नौकरी के लिए प्रशासन के पास जाते हैं तो लालपीताशाही आड़े आती है - नौकरी मिलजायेगी। नाप-जोख होगी। हिसाब लगेगा। बिल पास होगा तबी न पैसा आयेगा। तीन हफ्ते क्यों तीन महीने भी लग सकते हैं?[3] नाटक की ये स्थितियाँ भी समकालीन हैं जो सामाजिक और आर्थिक चेतना को मुखरित करती हैं।

जिन बच्चों को कालीन के कारख़ाने से मुक्ति कराया गया है, वे नाकारा हो चुके हैं क्योंकि उनकी उँगलियाँ कट कर सख्त हो गयी हैं। अब वे मशीन पर काम करने के योग्य नहीं रहे। समाज सेविका केशो को पढ़ाने के लिए ले कर गयी थी। परन्तु एक नौकर की भाँति घर का सारा काम कराती रही जिसके कारण वह अनुत्तीर्ण होकर गाँव लौट आया है। लाखन लड़ने, लूटने और आग लगाने को तैयार बैठा है। स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं है। लोग वैसे के वैसे है। भाई के शब्दों में कुछ

---

[1] जादू का कालीन - पृ. 44
[2] जादू का कालीन - पृ. 50
[3] जादू का कालीन - पृ. 60

नहीं सुदरेगा। सड़क बनेगी, धंस जावेगी। पानी बरसेगा, सूख जायेगा। नहर बनेगी पानी बड़े किसी न ले जावेंगे। हम वयी कि वयी रहवेंगे।[1] यह स्थिति पुनः बाल मज़दूरों को पैदा करती रहेगी। इस जड़ता को कैसे तोड़ा जाये? भूख, ग़रीबी और अशिक्षा पिछड़े क्षेत्रों के बालकों को मजदूर बनने के लिए विवश करती रहेगी। यह समस्या यथावत रहेगी क्योंकि राजनीतिक और प्रशासन स्तर पर इस का समाधान खोजने की इच्छा ही नहीं है - हर साल सूखा, अकाल, महामारी। दिल्ली वाले आराम से बैठे हैं, मैं यहाँ खप रहा हूँ।..... इस बार तबादला करवाकर रहूँगा।[2] जिला कलैक्टर के इन शब्दों में स्थिति से बचने का भाव दिखाई देता है। स्थिति की सामना करने की अपेक्षा उससे बचने का भाव समकालीन शासन और प्रशासन के प्रवृत्ति को व्यक्त करता है।

शासन में समस्या को दूर करने की राजनीतिक इच्छा का अभाव है, प्रशासन स्थिति से बचना चाहता है, समाज सेविका के लिए बाल-मज़दूर एक मण्डू के समान है। ऐसे में बन्धुआ मज़दूर बनकर जीना ही इनकी नियति बन चुकी है। लेखिका ने इस जड़ स्थिति को दादी के कथन के माध्यम से तोड़ने का प्रयास किया है - चलो, सब कलैक्टर के पास... न माने तो धरना दो उसके आगे। अपने हम के लिए लड़ोगे नहीं तो कुछ न मिलेगा।[3] दादी का यह कथन इस समस्या के संदर्भ में आशा की एक किरण के रूप में उभरता है। इस प्रकार लेखिका ने बन्धुआ बाल मजदूरों की समस्या को नाटक में अत्यंत सहानुभूति से उभारा है।

4.7 .भँवर

घर और नौकरी के बीच झूलती हुई नारी की छटपटाहट को लेकर इस नाटक का सृजन किया गया है। नाटक की नायिका रंजना के पिता सुधीर का स्थानान्तरण वीरगंज से दिल्ली में होता है। पति का वेतन कम था परन्तु वीरगंज

---

[1] जादू का कालीन - पृ. 72
[2] जादू का कालीन - पृ. 61
[3] जादू का कालीन - पृ. 74

छोटा सा नगर था जिसके कारण जीवन की आवश्यकताएँ कम थीं। परिवार में प्रेम, सुख और शांति थी। दिल्ली महानगर है जहाँ पर तड़क-भड़क अधिक है। इस तड़क-भड़क को बनाये रखने के लिए धन चाहिए। सुधीर का वेतन कम है। घर की बाल्टी टूटी हुई है। बच्ची मामूली स्कूल में पढ़ती है। सुधीर को अपने वेतन में से कुछ रुपया माँ-बाप को भी भेजना पड़ता है। रंजना की भी कुछ आवश्यकताएँ हैं परन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति को देखकर उसे दबाना या स्थगित करना पड़ता है।

ऐसे स्थिति में रंजना की भेंट अपनी एक पुरानी सहेली मीरा से होती है। रंजना की बातें सुनकर मीरा उसे नौकरी करने के लिए उत्साहित करती है। रंजना आज तक घर की चारदीवारी में रही है। घर से बाहर निकलकर नौकरी करने केलिए सोचना उसे विचित्र सा लगता है। वह इस समस्या को जब मीरा के आगे रखती है तो वह स्पष्ट कहती है - नौकरी करोगे तब पता चलेगा कि तुम्हारी क्या हैसियत है...वजूद है।"[1] मीरा के अनुसार-आज हज़ारों औरतें नौकरी कर रही हैं....नौकरी ने उन्हें इकनामिक इंडिपेंडेंसी ही नहीं, कुछ घन्टों के लिए घर की घुटन से मुक्ति भी दी है।"[2] जब रंजना मीरा को बताती है कि संभवतः सुधीर उसका नौकरी करना पसन्द न करे तो वह स्पष्ट कहती है - घर की चार दीवारी ही तो औरत को एक सीमा में बाँध देती है...यही सीमा बंधन है, इस सीमा के ख़िलाफ़ बग़ावत।"[3] ... मीरा के अनुसार हक़ हासिल करने की चींज़ है, माँगने की नहीं।"[4] मीरा के प्रेरणा भरे शब्दों को सुनकर रंजना नौकरी करने के लिए तौयार हो जाती है।

इस प्रकार लेखिका ने निम्न मध्य वर्ग, माँ-बाप के प्रति बेटे के नैतिक दायित्व चार दीवारों में बँध परम्परागत भारतीय नारी, महानगर को आत्मविश्वास से पूर्ण नारी

---

[1] भँवर - पृ. 25
[2] भँवर - पृ. 24
[3] भँवर - पृ. 24
[4] भँवर - पृ. 23

नारी के अस्तित्व, आर्थिक अत्मनिर्भरता तथा अधिकार आदि के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक चेतना को रूप दिया है।

सुधीर प्रारंभ में तो परम्परागत भारतीय पति की भाँति रंजना का नौकरी करना पसंद नहीं करता परन्तु धीरे-धीरे तैयार हो जाता है। रंजना के नौकरी करने के परिणामस्वरुप घर में आ रहे सुख-सुविधा के उपकरण आते जाते हैं। आर्थिक निर्भरता की ओर बढ़ने के कारण रंजना की हीनता की ग्रंथि भी नष्ट हो जाती है। अब उसे घर और नौकरी के बीच झूलना पड़ता है। कभी दफ़्तर पहुँचने में देर भी हो जाती है तो मैनेजर के ये शब्द भी सुनने पड़ते हैं पता नहीं किस क़ाबिल हैं आप लोग। घर पर रह नहीं सकती, नौकरी होती नहीं।"[1] रंजना को मैनेजर के ये शब्द अपमान जनक प्रतीत होते हैं तो दफ़्तर का अनुभवी बाबू वर्तमान जीवन के यथार्थ को प्रकट करते हुए कहता है - अरे नौकरी करने चली हैं तो इज़्ज़त को घर के ताक पर छोड़कर आया करिए... नौकरी पर मान ले के चलिएगा तो हो गयी नौकरी।"[2] रंजना को लगता है कि वह नौकरी रूपी भँवर में फँस गयी है। वह नौकरी को छोड़ने का निश्चय करती है परन्तु सुधीर उसे ऐसा करने से रोक देता है क्योंकि घर की आवश्यकताएँ बढ़ गयी हैं। सुधीर की बातों को सुनकर रंजना को लगता है कि नौकरी रूपी भवर में कूदना तो आसान है परन्तु इस चक्कर से मुक्ति कठिन है।"[3]

इस प्रकार लेखिका ने इस नाटक के माध्यम से अनेक आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों को उठाया है। ये प्रश्न कहीं पर नारी-अधिकार के लिए हुए हैं तो कहीं नारी-शोषण को। कहीं नौकरी के प्रति आकर्षण के लिए तो कहीं विकर्षण को। कहीं कस्बाई-बोध को लिए है तो कहीं महानगरीय बोध को। नाटककार की आर्थिक और सामाजिक चेतना इन्हीं प्रश्नों के मध्य यात्रा करती हुई दिखाई देती है।

---

[1] भँवर - पृ. 33
[2] भँवर - पृ. 33
[3] भँवर - पृ. 38

4.8.तीसरे रास्ते का राही

प्रस्तुत नाटक असफल प्रेम के उदात्त प्रेम के रूप में उन्नयन की कथा पर आधारित है। मामा की लड़की का विवाह है। वे अपनी बहन तथा भांजे को लेने के लिए आये हैं। संजना की परीक्षा चल रही है तथा वेनू के प्राक्टिकल जारी हैं। इन दोनों के कारण इनकी माँ दिल्ली जाने तथा विवाह में सम्मिलित होने में असमर्थ हैं। अंजना के पेपर खो चुके हैं अतः मामा उसे अपने साथ ले आते हैं। मामा के पड़ोसियों में एक लड़का अमित है जो उनके घर आता जाता है। विवाह के दिनों में उसकी भेंट अंजना से होती है और दोनों एक दूसरे के प्रेम में बंध जाते हैं। अमित को काम्पिटीशन में बैठना है अतः वह अंजना को वचन देता है कि एक वर्ष के बाद वह उसे अपनी जीवन संगनी बनाकर घर ले जाएगा।

मामा के घर विवाह संपन्न होने पर अमित से वचन लेकर अंजना अपने नगर जहानाबाद लौटती है। अब वह पहले से सुंदर लगने लगी है - नाक वही, नक्श वही, रंग वही, फिर अब क्यों सुंदर लगने लगी हूँ।"[1] अमित और अंजना के बीच पत्राचार जारी रहता है। इधर अमित कांपटीशन में पास हो जाता है तथा घर वालों के दबाव के कारण किसी और लड़की से विवाह कर लेता है। प्रेम और कर्तव्य में कर्तव्य की जीत होती है। दूसरी और अंजना के सामने विवाह का प्रस्ताव आता है परन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करती।

प्रेम में असफल होकर रंजना स्कूल में अध्यापिका की नौकरी कर लेती है। उसकी छोटी बहन संजना का विवाह हो चुका है। भाई वेनू विदेश चला गया है। माँ को अब केवल अंजना की ही चिंता है। परन्तु अंजना का कहना है कि - मैं तो अपने पैरों पर खड़ी हूँ...फिर क्यों चिंता करती हो?"[2] जिस स्कूल में अंजना पढ़ाती है उस स्कूल में एक बालक पढ़ता है उसका नाम प्रसून। उसकी माँ नहीं है तथा स्नेह का

---

[1] तीसरे रास्ते का राही - पृ. 48

[2] तीसरे रास्ते का राही - पृ. 56

भूखा है। अंजना उसे स्नेह तथा प्रेम देती है। इस प्रकार असफल प्रेम का स्थानांतरण उदात्त प्रेम में होता है।

एक दिन प्रसून के पिता स्कूल में आते हैं जो जिला उपायुक्त है। अचानक अंजना को सामने पाकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। उपायुक्त अमित अपनी भूल का पश्चात्ताप करता है परन्तु अंजना उन पुरानी स्मृतियों को पीछे छोड़कर बहुत आगे निकल गयी है। अंजना के मन में अन्तर्द्वन्द्व चलता है और दो पथ उसके सामने आते हैं। पुरानी बातों को भूल कर अमित द्वारा रखा गया विवाह प्रस्ताव को मान ले या उसे अस्वीकार कर दे। अंजना इन दोनों रास्तों से किसी को भी नहीं चुनती बल्कि तीसरे रास्ते को चुन लेती। वह तीसरा रास्ता है, अमित के बेटे प्रसून को सदा के लिए गोद ले लेना।

अंजना पहले अमित के साथ विवाह करके अपनी पहचान बनाना चाहती थी परन्तु भाग्य ने इसे होने नहीं दिया। अब उसने किसी पुरुष का संदर्भ जोड़े बिना अपनी पहचान बनायी है जिसे उपायुक्त अमित के व्यक्तित्व में विलीन करके खोना नहीं चाहती। पहचान का यह प्रश्न नारी की आर्थिक निर्भरता, असफल प्रेम, प्रेम का उदात्तीकरण आदि प्रसंग समकालीन होकर सामाजिक और आर्थिक चेतना को अभिव्यक्ति देते हैं।

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त लेखिका ने दो और प्रश्नों को भी नाटक में उठाया है। पहला प्रश्न महानगरों में छोटे घरों से जुड़ा हुआ विवाह जैसे अवसरों पर घर में आये हुए अतिथियों को स्थान की तंगी के कारण दूसरे घरों में ठहरना पड़ता है। दूसरा प्रश्न छोटे नगरों के मध्यकालीन-बोध से। बड़े नगरों में युवा लड़के-लड़कियाँ कहीं भी घूमे-फिरें किसी को चिंता नहीं परन्तु मेरा शहर छोटा है, वह बंदिशें बहुत हैं। वह इस तरह आपके साथ घूमते देख लें तो एक्सप्लेनेशन करना मुश्किल हो जाए। अंजना के इन शब्दों द्वारा लेखिका ने कस्बाई नगरों और महानगरों की मानसिकता के अंतर को स्पष्ट कर समकालीनता के स्तर पर सामाजिक चेतना को प्रस्तुत किया है।

4.9.वे पाँच शब्द

लेखिका ने इस नाटक में मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के आर्थिक अभावों और दबाओं को अभिव्यक्ति दी है। माया इस नाटक की नायिका है और नौकरी करती है। माया का पति भी किसी दफ़्तर में नौकरी करता है। उसने किसी दूसरी कंपनी में नौकरी के लिए आवेदन दिया हुआ है। माया चाहती है कि यह नौकरी अजीत को मिल जाये। माया का कहना है कि - यह नहीं सोचते हैं कि घर में दो पैसे आयेंगे तो हम सबको आराम होता।"[1] इसलिए माया ने उस कंपनी के डाईरेक्टर के पि.ए. को खाने पर बुलाया है। इस के विपरीत अजीत का विश्वास है कि अच्छी नौकरी सिफ़ारिश से नहीं बल्कि मेहनत और ईमानदारी से मिलती है। माया का विश्वास है कि आजकल हर काम के लिए पुष-पुल चाहिए। जब अजीत माया के इस कृत्य पर नाराज़गी प्रकट करता है तो माया आज के परिवेश का चित्र खींचते हुए कहती है - यद्यपि मुझे भी यह सब पसन्द नहीं है परन्तु इस व्यवस्था और परिस्थिति में हमें इस तरह बना दिया है कि हम जहाँ समझौता नहीं करना चाहते वहाँ भी करना पड़ता है।"[2]

पि.ए. खाने पर आता है और अजीत इन्टरव्यू के लिए तैयारी करते हुए देखकर कहता है - क्या होता है पढ़कर? यह इन्टरव्यू वग़ैरह सब ढोंग है... एक फारमालिटी है...मेहनत और योग्यता की बात तो दिखावा है, पर यह नाटक भी ज़रूरी है।"[3] माया पि.ए. को अजीत का विवरण नोट कराती है। इन्टरव्यू होता है और अजीत को लगता है कि उससे अधिक योग्य उम्मीदवार का चयन होगा। इस प्रकार लेखिका ने नौकरी से असंतुष्ट तथा आगो बढ़ने की इच्छा, नौकरी के लिए सिफ़ारिश की आवश्यकता, इन्टरव्यू के नाम पर चलने वाले क्रूर मजाक आदि से समकालीनता के स्तर पर आर्थिक और सामाजिक चेतना को उभारा है।

---

[1] वे पाँच शब्द - पृ. 75
[2] वे पाँच शब्द - पृ. 80
[3] वे पाँच शब्द - पृ. 77

माया और अजीत की कथा के साथ लेखिका ने निम्न वर्ग के मोची की कथा को भी जोड़ा है। मोची की बीवी को साँस की बीमारी है। मोची के पास उसका उपचार करने के लिए पैसे नहीं है। वह माया से पचास रुपये उधार माँगकर ले जाता है। माया यह सोचकर मोची को रुपये दे देती है कि शायद मोची की शुभकामनाओं से ही अजीत को नौकरी मिल जाये।

अजीत इन्टरव्यू के बाद घर आकर माया को बताता है कि उसे नौकरी मिलने की बिल्कुल भी आशा नहीं है। ऐसे में माया की निराशा मोची पर आक्रोश बनकर उभरती है। उसे लगता है कि मोची उसे धोका देकर रुपये ले गया है।

एक दिन माया गंदी बस्ती में पहुँचकर मोची के घर जाती है ताकि उसे धोकेबाज, विश्वासघाती आदि कहकर मन का गुबार निकाल सके। मोची की झोंपड़ी में पहुँचते ही उसे पता चलता है कि मोची की पत्नी कुछ दिन पहले मर चुकी है और वह स्वयं बीमारी और भूख के कारण दुखी है। मोची माया को डॉक्टर की हृदयहीनता के बारे में बताता है कि - बहुत नाक रगड़ी...एक बार आ के बेचारी को देख लो, ओ आने लायक नहीं है मगर डॉगदर नहीं आया, देने के लिए पैसे नहीं थे न।"[1] मोची के यह कथन वर्तमान संदर्भों को उभारकर आर्थिक और सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करता है।

मोची की बातें सुनकर माया का सारा आक्रोश बह जाता है। वह मोची के लिए ब्रेड़, बिस्कुट आदि मँगवाकर देती है। झोंपड़ी से बाहर आकर मोची उसे आशीर्वाद देता है - आपको मेरी दुआ लग जाये।"[2] घर जाने से माया को पता चलता है कि इतने दिग्गजों के बीच अजीत को नौकरी मिल गयी है। माया सोचती है कि यह उस ग़रीब मोची की शुभ कामनाओं का ही फल है, उसके पाँच शब्दों का फलितार्थ है।

---

[1] वे पाँच शब्द - पृ. 89

[2] वे पाँच शब्द - पृ. 92

इस प्रकार लेखिका ने समकालीनता के स्तर पर सामाजिक और आर्थिक चेतना को उजागर किया है।

4.10 .देहरी

इस नाटक में लेखिका ने विधवा पुनर्विवाह के प्रश्न को उठाया है। नाटक की नायिका हीरा, विवाह के तीन वर्ष के बाद विधवा हो जाती है। छः मास मायके में रहने के बाद उसे ससुराल जाना है। हीरा की माँ चाहती है कि उसे ससुराल न भेजा जाये क्यों कि ससुराल वाले इस छोरी से बेजुबान जानवर की भाँति काम लेंगे।"[1] वह चाहती है कि किसनपुर वाले पारसनाथ से हीरा का पुनर्विवाह कर दिया जाए। हीरा के पिता को यह अच्छा नहीं लगता क्योंकि पारसनाथ के पहली पत्नी से पाँच बच्चे हैं और हीरा उसके पिता के समान है।"[2] अँततः हीरा को उसके ससुराल भेज दिया जाता है।

प्रतापगढ़ वालों का परिवार संयुक्त परिवार है जिसमें सास-ससुर, जेठ जेठानी तथा उनका एक बच्चा है। देवर-देवरानी इस परिवार में नहीं रहते फिर भी वे नगर से गाँव आते रहते हैं। हीरा को विधवा होने के कारण ग्रामीण समाज से उपेक्षा और तिरस्कार ही मिलता है। मायके से चलते हुए हीरा के पिता ने जो शिक्षा दी थी अपने आचरण से सबको ख़ुश रखना। सास-ससुर की सेवा करना। उसकी शिक्षा का पालन करते हुए वह परिवार की दिन-रात सेवा करती है और परिवार से मिलने वाले प्यार के कारण हीरा को पग-पग पर सहारा देकर उसे टूटने से बचाती है। घर और परिवार से पूर्णतः जुड़ जाने के बावजूद भी हीरा के मन में एक खालीपन और एकाकीपन विद्यमान रहता है जिसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है - यह अकेलापन ही मेरा अपना है।"[3] इस खालीपन को वह डायरी लिख कर भरने का प्रयास करती है।

---

[1] देहरी - पृ. 95
[2] देहरी - पृ. 95
[3] देहरी - पृ. 98

प्रभावती के भाई चेतन की नियुक्ति हीरा के गाँव में पटवारी के रूप में होती है। गाँव में नया घर लेने से पूर्व उसे इस संयुक्त परिवार में अपनी बहन प्रभावती के पास रहना पड़ता है। चेतन एक आधुनिक चेतना संपन्न युवक है। इस घर में रहते हुए वह हीरा की दशा देखता है। उसका विचार है - समाज के नियमों को भगवान की मर्ज़ी के साथ जोड़कर क्यों किसी की ज़िंदगी बरबाद की जाए... किसी की औरत मर जाये तो महीने भर बाद उसके लिए रिश्ते आने शुरू हो जाता हैं और औरत उसके नाम पर....।"[1] अतः हीरा को अपने जीवन को पुनः शुरू कर लेना चाहिए। चेतन को लगता है कि भारतीय समाज में विधवा को विधवाओं की कहानियाँ सुन-सुन कर उसके मन में वैराग्य भाव भरा जाता है। दया और सहानुभूति दिखाकर उन्हें बेचारी बना दिया जाता है। हीरा ने भी अपने चारों ओर एक दीवार बना ली है - मेरे चारों ओर एक लोहे की दीवार है।"[2] जिसे तोड़ा जा सकता है।

चेतन का दृढ़ विश्वास है कि भाग्य को दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा बदला जा सकता है। परिस्थितियाँ बदली जा सकती हैं और अन्याय से लड़ा जा सकता है।"[3] उसके अनुसार जीवन कोई बोझ नहीं है जिसे ढोया जाये।"[4] वह अपने विचारों को कार्यरूप देने के लिए अपनी बहन प्रभावती तथा जीजी को अपने माता-पिता के पास भेजता है ताकि हीरा से विवाह की बात को वे आगे बढ़ा सकें।

माता-पिता की सहमति, हीरा की स्वीकृति तथा बहन और जीजी की सहायता से चेतन नाटक के अन्त में हीरा को सामाजिक कुरूतियों की देहरी से बाहर निकालकर विधवा-पुनर्विवाह का मार्ग प्रशस्त करता है। हीरा का वैधव्य की देहरी को त्यागकर एक नये जीवन की ओर अग्रसर होना ही नाटक की मूल संवेदना है। इस प्रकार लेखिका की सामाजिक चेतना हीरा की विधवा जीवन की व्यथा तथा उसके

[1] देहरी - पृ. 106
[2] देहरी - पृ. 114
[3] देहरी - पृ. 107
[4] देहरी - पृ. 109

पुनर्विवाह को लेकर व्यक्त हुई है।

लेखिका ने संयुक्त परिवार, ग्राम परिवार की मानसिकता, नगरीय- बोध लिए हुए मंझली की चतुराई, हीरा के एकाकीपन आदि के माध्यम से भी सामाजिक चेतना को उजागर किया है।

4.11.अँधेरे से आगे

प्रस्तुत नाटक 'मृदुला बिहारी' द्वारा बाल-विवाह की कुप्रथा से उत्पन्न समस्याओं को लेकर लिखा गया है। नाटक की नायिका जानकी का बचपन में विवाह कर दिया जाता है। उसका पति पढ़-लिख कर एक उच्च अधिकारी बन जाता है। अब उसे वह सुन्दर, सुशील, हँसमुख और मस्त के बजाय फूहड़ और गँवार लगती है। राम लाल, जानकी के समस्त गहने उतराकर उसे घर से बाहर निकाल देता है। पति से तिरस्कृत होकर जानकी का मन करता है कि वह विष खा ले या गले में फाँसी का फंदा डाल ले। इस लज्जा और ग्लानि का बोझ उससे उठाया नहीं जाता।[1] मायके आकर वह प्रतीक्षा करती है कि शायद रामलाल उसे वापस ले जाने के लिए आ जाये परन्तु वह नहीं आता। पति की प्रतीक्षा करते-करते जानकी को लगता है कि उसका शरीर जकड़ने लगा है, वह अहिल्या की भाँति पत्थर का होने लगा है।"[2] उससे सहानुभूति प्रकट करने वाले झूठे हैं। उस पर झूठी दया दिखाकर वे उसे बेसहारा बना रहे हैं। माँ का दुख तथा पड़ोस की स्त्रियों के ताने उसे और व्यथित करते हैं। गाँव का बदमाश तथा उसकी भेजी हुई कुट्टिनी उसे लोभ-लालच दे कर फँसाना चाहते हैं परन्तु जानकी बिस्तु की कंजरी बनकर रहने की अपेक्षा परिश्रम करके पेट भरना उचित समझती है।

जानकी का भाई गाँव में आता है। जानकी की बातों को सुनकर कहता है - यह तुम्हारी लड़ाई है और तुम्हें ही लड़ना है जो स्थिति तुम्हारे सामने है उसका

[1] अँधेरे से आगे - पृ. 125
[2] अँधेरे से आगे - पृ. 125

सामना करो।"[1] इन्दर जानकी को अपने साथ गाँव से नगर ले आता है। जानकी के आने से अप्रसन्न उसकी भाभी स्पष्ट कह देती है . यहाँ ज़्यादा दिन रहना मुश्किल है..देख ही रही हो घर कितना छोटा है.. और मँहगाई भी।"[2] इस प्रकार लेखिका ने बाल विवाह, पति से तिरस्कार, गाँव के बदमाशों की कुदृष्टि, कुट्टिनी-प्रयोग नगरों में एकाकी परिवार, घरों का छोटापन, मँहगाई आदि के स्तर पर सामाजिक और आर्थिक चेतना को उभारा है।

धीरे-धीरे जानकी भाभी के घर के समस्त कार्य को सँभाल लेती है। आराम पाकर भाभी उसे स्वीकार कर लेती है। बच्चों को स्कूल छोड़ने जाती जानकी को स्कूल की अध्यापिका मिलती है जो स्वयं इस प्रकार के अन्याय और अत्याचार का शिकार रह चुकी है। अध्यापिका कल्याणी का पति भी उससे इस प्रकार का दुर्व्यवहार कर उसे घर से निकाल चुका है। कल्याणी जानकी को पढ़ने की प्रेरणा देती है। उसमें हिम्मत और साहस डालती है तथा उसके आत्मविश्वास को जगाती है। कल्याणी की प्रेरणा और प्रोत्साहिन से जानकी बी.ए. कर लेती है तथा गाँव वापिस लौटती है।

दूसरी ओर जानकी के पति की प्रेमिका उसे छोड़कर किसी दूसरे से विवाह कर लेती है। राम लाल, जानकी को लौटा लाने के लिए आता है। इस समय जानकी अपने जीवन को दूसरी दिशा की ओर मोड़ चुकी है अतः वह रामलाल से बारह वर्ष का हिसाब माँगते हुए कहती है कि - भगवान राम ने सीता का परित्याग करने के बाद जब सीता के पुनः अयोध्या लौटने को कहा था तो वह नहीं गईं बल्कि सतीत्व की रक्षा के लिए धरती में समा गईं। उसका नाम जानकी है अतः वह भी नहीं कि जीवन जीने के लिए मुझे किसी का सहारा चाहिए।"[3]

इस प्रकार पति द्वारा परित्यक्त जानकी का स्वावलम्बन के लिए संघर्ष नाटक में सामाजिक और आर्थिक चेतना को प्रकट करता है। जानकी का यह संघर्ष केवल

---

[1] अँधेरे से आगे - पृ. 128
[2] अँधेरे से आगे - पृ. 129
[3] अँधेरे से आगे - पृ. 141

उसका ही नहीं बल्कि उन अनेक पीड़ित, प्रताड़ित और व्यथित स्त्रियों का है जो जीवन में आई निराशा से घबराती नहीं हैं बल्कि अपने साये हुए आत्मविश्वास को पुनः जागृत कर स्वावलंबन की ओर बढ़ती हैं।

4.12. जो राम रचि राखा

'जो राम रचि रखा' नाटक लोक-कथा प्रेरित कहानी नाटकीय संभावनाओं से भर पूर है। मृणाल पाण्डे ने इन संभावनाओं का कल्पनाशील ढ़ंग से उपयोग करते हुए हिन्दी नाटक के क्षेत्र में एक अलग लीक पकड़ी है।

नाटक में लोक-कथा के माध्यम से लेखिका ने आज के भारतीय सामाजिक यथार्थ की पड़ताल की है। मन्ना सेठ का क्रांतिकारी बनने का ख्याल सस्ती लोकप्रियता और छिछली नारेबाजी से प्रेरित है। अपने पिता और परिवेश से विद्रोह भी नकली है। इस छद्म को लेखिका ने अपनी उपहास करने की तीक्षण प्रवृत्ति से उधेड़ है और इसके लिए सारे पात्रों के लिए एक विशेष प्रकार की भाषा विकसित की है। मन्ना सेठ भैंस से स्वयं दूध दुहने की इच्छा प्रकट करता है। उस समय मुसाहब के साथ उसका संवाद द्रष्टव्य है - क्यों, क्या मैं दुह नहीं सकता भैंस? क्या तुम्हारे दिमाग में शोषक वर्ग की भीड़ में मेरा चरित्र भी इतना धुल-मिल गया है? क्या भारतीय शोषण वर्ग के दोहन के उस सुंदर प्रतीक भैंस तक मैं जा भी नहीं सकता? हा रे निष्ठुर दुर्दैव।"[1]

इस प्रकार जीवन मूल्यों, जीवन की निरर्थकता, आर्थिक अभावों और और अनुशासनीयता से ग्रस्त आज के युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार लेखिका ने सामाजिक चेतना को समकालीनता के स्तर पर चित्रित किया है।

[1] नटरंग- अंक-36 - 15

4.13.आदमी जो मछुआरा नहीं था

मृणाल पाण्डे का 'आदमी जो मछुआरा नहीं था' लोक कथा से प्रभावित है। लेखिका ने मछुआरा से मछली रानी से तीर वर माँगे जाने की पुरानी कथा को एक दम ताज़ा सामाजिक, आर्थिक संदर्भों में जाँचा है।

लेखिका ने लोक-कथा का उपयोग आज के जीवन के चित्रण में इतनी कुशलता से किया है कि आज के व्यक्ति के भीतर और बाहर के अंतर्विरोध, विडंबनाएँ और विसंगतियाँ कई स्तरों पर एक साथ उजागर हुई हैं। लोक-कथा के द्वारा व्यक्ति के भीतर और बाहर की दुनिया के अत्यंत समकालीन संदर्भ में सामाजिक चेतना का उल्लेख किया गया है। लेखिका ने स्वयं अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए लिखा है - आदमी जो मछुआरा नहीं था - एक दुखांत नाटक लिखने का मेरा पहला अनुभव है। एक निहायत निजी पारिवारिक महौल में उगता इसका कथानक अततः बाहरी दुनिया के विशाल समुद्र में जा मिलता है। कुछ बंधुओं को नाटक की शुरुआत के इस घरेलूपने को लेकर आपत्ति थी पर जैसे कि मैं एकाधिक जगहों पर एकाधिक बार कहती रही हूँ, बाहर की दुनिया में जो कुछ भी है, वहीं है, जो घरों की भीतर दुनिया से बह-बहकर उसमें कभी-कभी जाता है, इसिलए हम चाहे घर के भीतर की स्थिति को परख रहे हों या घर-बाहर की, उन्हें अलग कर ही नहीं सकते"[1]

एक जनकथा के अनुसार मछुआरा न होने के कारण वह आदमी स्वभाववश उस मछली को जो वास्तव में मछली नहीं समन्दर की रानी थी, वापस समन्दर में फेंक कर नव-जीवन प्रदान करता है। रानी खुश होकर तीन वरदान देती है। शुरू में हिचकिचाता हुआ आदमी दो वरदान पाकर तरक्की करता है और बाद में मछली रानी के सत्त-खेल का खिलाड़ी बनकर स्वयं को मछुआरा समझने लगता है। तीसरे वरदान के समय वह खुद रानी के जगमग करते ताज पर ही हाथ डालने की कोशिश करता है। लेकिन रानी मुस्कान के साथ अपने आकार को विराट कर एक

[1] आदमी जो मछुआरा नहीं था. प्राक्कथन - पृ -1

खतरनाक लपट में बदल जाती है; जिसे देखकर वह आदमी जो मछुआरा नहीं था डर से काठ हुआ, काठ से कोयला, कोयले से राख और रानी के सर पर का ताज जगमग करता रहा।

लेखिका के अनुसार - इस रचना का पूरा घटना-लोक और पात्र अति परिचित होने की भयावहता लिए हैं तो यह अनायास नहीं, और नही यह बात कि उन पात्रों के विकास और बाहरी जीवन का नाल अनिवार्यतः उनके घर के अन्धेरे से ही जुड़ी हुई है। इसे अस्वीकार की नाल इस नाटक अनिवार्य की त्रासदी से कम बड़ी त्रासदी न होगी।"[1]

व्यक्ति और समाज तथा घर और बाहर के अन्दरूनी अटूट रिश्ते को देखते हुए बेशक नाटक की शुरुआत के घरेलूपन को लेकर आपत्ति करना बहुत सही और सार्थक नहीं होगा। - पर परिवारों से ही बह-बह कर बाहर भी जाता है, जो धीरे धीरे जड़ों को कुतर खाता है।"[2] नन्ददुलारे और उसके परिवार की त्रासदी के बुनियादी कारणों को जाने-समझे बिना आगे बढ़ना भी मुमकिन नहीं है। हम देखते हैं कि पहले अंक के दूसरे दृश्य के अन्त में 'नन्ददुलारे का काम हो गया है' यानी वह सत्ताधारी की कृपा से राजपत्रित कर्मचारी बन गया है। व्यक्तिगत स्तर पर खासशाही सलाहकार बन कर वह अपने घर परिवार के लिए तमाम सुख-सुविधाएँ और मान-सम्मान जुटाता है तो राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार का उन्मुलन करने के साथ-साथ शहरों में कला-दीर्घएँ खुलवाने लोक कलाकारों के अनुदान दिलवाने आम लोगों को रोटी, कपडा मकान स्कूल और अस्पताल उपलब्ध करवाने तथा शहरों में दूध की नदियाँ बहा देने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करता है।

इस प्रकार लेखिका ने नन्ददुलारे और उसके परिवार की त्रासदी के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक चेतना को सशक्त और सजीव रूप में अभिव्यक्ति की है।

---

[1] आदमी जो मछुआरा नहीं था. प्राक्कथन - पृ -2
[2] आदमी जो मछुआरा नहीं था - पृ -22

4.14.चोर निकल के भागा

'चोर निकल के भागा' 'मृणाल पाण्डे' जी का श्रेष्ठ नाटक के रूप में माना जा सकता है। जाहिर है कि 'चोर निकल के भागा' की रचना के समय लेखिका के महानगरों की वह युवा पीढ़ी रही है जो कांमिक्स, नॉवल या फिल्मों के माध्यम से मॉफिया के बॉस, सुपरमैन, जैम्स बांड या इसी तरह के तक्सरों बदमाशों और अय्यारों के हैरत-अंग्रेज करिश्मों-कारनामों की काल्पनिक दुनिया में डूबे हुए हैं। रमेश, महेश, रामावतार, सुरेश और नीता पढ़े-लिखे बेरोजगार नौजवान हैं जो एक रंगील-छबीले बाबा के कहने पर अपनी तकदीर बदलने के इरादे से एक पुरानी फारसी थेटर कंपनी के मास्टर गेंदालाल और भी शरीफों से जा टकराते हैं। - ओए, बाबे, मालिक ने ये पाँच पैसा दिया है, ले और फूट चल आते हैं मुफ्तखोरा करने को- चार पैसा टिप का कभी देंगे नहीं..."[1] इस प्रकार लेखिका ने बेरोजगारी के कारण भारतीय समाज के दोहरे चरित्र को प्रस्तुत किया है जो उनके शिक्षा के बारे में तो आधुनिक दृष्टिकोण रखता है परन्तु जब चुराने की बात आती है तो उसकी विचारधारा मार्स्कवादी होकर ही इस स्तर पर नाटक में समाजिक चेतना कहीं आधुनिक और प्रगतिशील विचारधारा के रूप में तो कहीं आधुनिक दृष्टिकोण के रूप में उभरी है।

अच्छी बात यह है कि लेखिका हास्य-नाटक को, कुछ असामान्य-असाधारण पात्रों की उलजुलूल हरकतों, उनके फूफड़ संवादों और लतीफों चुटकलों का जमघट मानने के बजाए, विडम्बनापूर्ण हास्य स्थितियों का दिलचस्प संयोजन मानती है जिसके माध्यम से चरित्रों एवं स्थितियों की विसंगतियों को हँसते-हँसते हुए देखा, समझा जा सके। हास्य-नाटक लिखना हँसी-मजाक नहीं एक गंभीर रचना कर्म है यह सोच निश्चय ही किसी बड़े नाटक की संभावना का पूर्व-संकेत हो सकती है। जब चाय पीने के लिए महेश, सुरेश और रमेश बैठता है तो धीरे-धीरे मित्र लोग बढ़ते

---

[1] चोर निकल के भागा - पृ-11

जाते हैं लेकिन चाय का आर्डर नहीं बढ़ता सिर्फ खाली कप बढ़ने का आर्डर देते है। इस संदर्भ में चाय देनेवाला रामऔतार का संवाद इस प्रकार है - "मालिक ने भेजा है कि दो-तीन लोग और आएँ तो उनकी जीभ पर इससे टपका देना।"[1] इस प्रकार यह नाटक जहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था पर एक तीखा व्यंग्य करता है वहाँ महानगर की स्वार्थपूर्ण संस्कृति, बेरोज़गारी, आदमी के प्रति लालफ़ीताशाही की निष्क्रियता और संवेदनहीनता को भी सशक्त और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है। यही वर्तमान भारत का यथार्थ है कि जिसे समकालीनता के स्तर पर लेखिका ने उभारकर सामाजिक और आर्थिक चेतना को अभिव्यक्ति दी है।

4.15. मंदाक्रान्ता

मंदाक्रान्ता मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखिति विंध्या के अंचल का जीवन चित्रण करने वाला नाटक है। मैत्रेयी ने इस नाटक में सोनपुरा तथा श्यामली गाँव के चित्रण के माध्यम से नारी के संघर्ष की कभी न ख़त्म होने वाली कहानी प्रस्तुत की है। नाटक में चित्रित नारी पात्र किसी न किसी समस्या से संघर्षरत हैं।

नाटक के केन्द्र में मंदा नामक एक लड़की है, जो संपूर्ण नाटक में सामाजिक, जैविक, आर्थिक, राजनैतिक, मानसिक धरातल पर संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। मंदा सर्वप्रथम गाँव के अस्पताल में डॉक्टर लाने के प्रयास करती है। शहर जाकर मात्र अर्ज़ी देने से कोई डॉक्टर नहीं आने वाला, यह उसे अच्छी तरह पता है। वह गाँव के प्रधान के साथ हर रोज़ अफ़सरों के सामने चक्कर लगाती है। हर श्याम निराश होकर गाँव लौटना उसकी नियति बन चुकी है। अंत में उसे यह समझा जाता है कि जब तक वह इन अफ़सरों को घूस नहीं देगी तब तक काम पूर्ण होना असंभव है। लेकिन आगे महाराज के प्रोत्साहन से मंदा फिर से खड़ी होती है और मज़दूरों को शोषण से मुक्त कराने का संकल्प करती है – "गाँव का विकास हमको स्वयं

[1] चोर निकल के भागा - पृ-10

मिलकर करना है, आख़िर सरकार क्या है हम लोग ही तो बनाते हैं सरकार, और अगर हम सरकार बना सकते हैं तो अपने गाँव की हालत क्यों नहीं सुधार सकते हमारे गाँव कुम्हार की मिट्टी जैसे हैं। हम जैसा चाहें उन्हें गढ़ सकते है।"[1]

स्वाभिमानी मंदा सोनपुरा में आकर सामूहिक संघर्ष और सामाजिक आंदोलन के मार्ग को अपनाती है। यहाँ उसका अलग व्यक्तित्व सामने आता है। अपने जीवन को नया मोड़ देकर गाँव की भलाई का लक्ष्य सामने रखकर वह आगे बढ़ती है। उसके द्वारा स्वीकृत यह मार्ग उसके होने का नया अर्थ प्रदान करने वाला है। अरविंद जैन के अनुसार -शरीर सौन्द्रर्य और विवेकहीन प्रतिशोध के दोनों अतिवादी रास्तों के बजाए मंदा सामूहिक संघर्ष और सामाजिक आंदोलन की पगडंडी पर निकल पड़ती है। उसे व्यक्तिगत दुखों से उबरने का यही विकल्प बेहतर लगता है। मान सम्मान या अपमान की चिंताओं को छोड़ अपने होने और जीने को एक गहरा अर्थ देने की कोशिश में मंदा व्यक्ति चेतना को सामाजिक चेतना में विलीन कर देती है।"[2]

अल्प शिक्षित लड़की मंदा का सामाजिक चेतना से परिपूर्ण रूप अभिलाखसिंह से संघर्ष करते समय तीव्र दिखाई देता है। अभिलाख सिंह के द्वारा घटित मज़दूरों के शोषण के विरोध में दृढ़ता से खड़ी रहकर उन्हें उनका हक़ दिलवाने की क़सम पूर्ण करना उसके जीवन का लक्ष्य बन गया है। अभिलाख सिंह के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए गाँव वालों की सहायता से टैक्टर ख़रीदने का प्रयास आरंभ करती है। - "कक्का जो कुछ बचा हो इन लोगों के पास, इक्कट्ठा करें। गहना-गुरिया भी माँगना होगा। सब कुछ.... देखें कोई देता भी है या नहीं।"[3]

---

[1] मंदाक्रान्ता - पृ-70

[2] औरत अस्तित्व और अस्मिता, अरविंद जान - पृ-105-106

[3] मंदाक्रान्ता - पृ-77

इस प्रकार लेखिका ने शारदा के माध्यम से सामाजिक और यत्र-तत्र राजनीतिक चेतना को सशक्त और सजीव रूप से चित्रिति किया है।

महिला नाटककारों ने कतिपय ऐसे नाटकों की रचना भी की है जिसके कथानक पौराणिक, प्रागैतिहासिक तथा सामाजिक और राजनीतिक हैं। इन नाटकों के माध्यम से लेखिकाओं ने समकालीन चेतना को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है जिनका संक्षेप में निष्कर्ष इस प्रकार है -

हिन्दी महिला नाटककारों ने भारतीय समाज की अनेक नयी-पुरानी समस्याओं और विषयों को लेकर नाटकों की रचना की है। वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की त्रुटियों, बदलते गुरु-शिष्य संबंध, समाज सेवा के नाम पर नारी यौन-शोषण कार्यालयों में फैले भ्रष्टाचार, प्रेम की असफलता के कारण व्यक्तित्व विघटन, बच्चों के भरण-पोषण के लिए नारी की पुरुष से खर्चा की मांग, वर्तमानयुग में बदलते स्त्री-पुरुष संबंध और प्रेम के विवध रूप, उच्च शिक्षा के कारण नारी में स्वतंत्रता की भावना और अवरोध, बेकारी, दहेज प्रथा पर भारतीय दृष्टिकोण, तथा नारी अहं. बाल-मजदूर शोषण, नारी को प्राप्त करने के लिए विनाश-लीला, पुरुष नियंत्रण के अभाव में टूटते एकाकी परिवार और नारी का स्वावलंबन, संयुक्त परिवार में नारी की शारीरिक आवश्यकताओं का दमन और विस्फोटन, नौकरी के लिए सिफारिश की भूमिका और ब्रष्टाचार आदि पर समकालीन महिला लेखिकाओं ने 'सर्च लाइट' घुमायी है। इसमें कहीं पर सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना और राजनीतिक चेतना संदर्भों को लिए हैं और कहीं समकालीनता के संदर्भों को।

***

अध्याय - पांच

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और रंगमंच

पंचम अध्याय

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और रंगमंच

नाटक का जीवन से घनिष्ठ संबंध रहा है। नाटक मात्र व्यक्तिगत जीवन की व्याख्या ही नहीं अपितु किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन का एवं किसी भी समाज के लोक-जीवन का दर्पण होता है। नाटक विद्या के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद की भावुकता पर प्रबल प्रहर करते हुए नाटक को रंगमंच से जोड़ने का प्रयास किया गया है। अन्य साहित्यिक विधाओं, कहानी, कविता, उपन्यास की अपेक्षा नाटक रंगमंच के माध्यम से संप्रेषित होता है। नाटकों में रंगमंचीय आयाम को देखते हुए कहानी, उपन्यास, कविता के भी नाट्य रूपांतर हो रहे हैं।

रंगमंच एक माध्यम है; उसकी अपना व्याकरण है। जब तक नाटककार अपने माध्यम को भली भान्ति नहीं पहचानता, रंगमंच के व्याकरण और उसके मुहावरे को अच्छी तरह नहीं समझता और जब तक वह अपनी इस पहचान और समझ का सृजनात्मक उपयोग करने की क्षमता नहीं रखता, तब तक वह किसी श्रेष्ठ नाट्य-कृति का सृष्टा नहीं हो सकता। यह क्षमता जितनी जन्म जात होती है उससे अधिक अभ्यास और अनुभव पर निर्भर करती है। नाटक को हमने रंगमंच पर अभिनेताओं के द्वारा, सामाजिकों के सम्मुख जीवंत रूप में प्रस्तुत की गयी कहानी माना है। इसलिए नाटक की कथा वस्तु चरित्र-चित्रण, संवाद-योजना और देशकाल वातावरण के

विधान की विवेचना करते हुए स्थान-स्थान पर रंगमंच का उल्लेख हुआ है। हमने यह भली प्रकार देखा है कि किस प्रकार रंगमंच का स्वरूप, नाटक में घटनाओं के संघटन को प्रभावित करता है। रंगमंच अपने रूप विधान से नाटक की रचना व्यवस्था, अभिव्यंजना-प्रणाली, भाषिक संरचनाएँ आदि को भी नियोजित करता है। इसलिए नाट्यालोचन के संदर्भ में रंगमंच पर कुछ विस्तार से विवेचन आवश्यक है।

1.रंगमंच : अर्थ

मोटे तौर पर यदि शाब्दिक दृष्टि से रंगमंच शब्द का अर्थ देखें तो यह दो शब्दों के मेल से बना है। रंग और मंच। मंच से हमारा सीधा-सादा अभिप्राय स्थान विशेष से हैं जहाँ सुव्यवस्थित एवं सुचारु रूप से अभिनय करना अपेक्षित हो। आकार प्रकार की दृष्टि से मंच के भेद, उपभेद, इत्यादि वर्गीकरण हो सकते हैं। रंग से अभिप्राय सौंदर्य-प्रसाधनों, रंगीन प्रकाश-व्यवस्था, रंग बिरंगे परदों अथवा पोशकों से नहीं अपितु रंग जीवन की उन विविध स्थितियों से संबंधित है जिन्हें दृश्य-काव्य (नाटक) के माध्यम से हम मंच पर घटित होते देखते हैं।

डॉ.अज्ञात का मत है कि रंगमंच शब्द का भरत के नाट्यशास्त्र और अन्य परवर्ती नाट्य-ग्रंथों में वर्णन नहीं मिलता। उतना ज़रूरी है कि भरत मुनि ने रंगमंच शब्द की जगह रंगपीठ तथा रंगशीर्ष शब्दों के माध्यम से रंगमंच को रेखांकित करने का प्रयास किया है। आगे चलकर डॉ. अज्ञात ने रंगमंच शब्द के व्यवहार में आने की चर्चा करते हुए राम चरित मानस का उदाहरण दिया है। धनुष यज्ञ संदर्भ से उद्धृत रंगभूमि आए दोऊ भाई या रंग अवनि तब मुनिहिं दिखाई के आधार पर अज्ञात का यह मन्तव्य है कि आज से चार सौ वर्ष पूर्व तुलसीदास ने धनुषयज्ञ के सन्दर्भ में यज्ञभूमि को रंगभूमि अथवा रंगआनि की संज्ञा दी थी।"[1]

हिन्दी में रंगमंच के बाह्य एवं आंतरिक पक्षों को अँग्रेज़ी में क्रमशः स्टेज और थिएटर के रूप में जाना जा सकता है। स्टेज से थिएटर तक की यात्रा वास्तव में

[1] डॉ. शिवराम माली, सुधाकर गोकाकर, नाटक और रंगमंच - 193-194

रंगमंच के बाह्य स्थूल पक्षों में आन्तिरक सूक्ष्म, जटिल रूप की यात्रा है। गोविन्द चातक ने रंगमंच के सीमित एवं व्यापक अर्थों को अँग्रेज़ी के स्टेज और थिएटर जैसे समानान्तर शब्दों के माध्यम से भरत मुनि द्वारा व्यक्त नाट्य शब्द की व्यापकता को स्पस्ट किया है। गोविन्द चातक के अनुसार स्टेज शब्द प्रायः नाट्य-मण्डप अथवा रंगशाला के लिए प्रयुक्त होता है।...थिएटर के अन्तर्गत रंगभवन और उसके स्थूल उपादान ही नहीं आते वरन् नाट्य-कृति और समस्त रंगकर्म उसकी रूढ़ियाँ और प्रदर्शन में निहित शिल्प, भावबोध और सर्जनात्मक धरातल भी उसी में सम्मिलित हैं।"[1]

वस्तुतः किसी भी शब्द के अर्थ को उसके सर्वांगीन रूप में ग्रहण करना चाहिए। शब्द का सीमित प्रयोग दूसरे अनेक पक्षों अथवा पहलुओं को प्रकाश में न लाकर उसकी आत्मा से अन्याय कर सकता है। सीताराम झा श्याम का यह कथन समीचीन जान पड़ता है कि - रंगमंच एक व्यापक शब्द है। इससे न केवल नाट्य-मण्डप का बोध होता है, अपितु इसमें पाण्डुलिपि, रंगलिपि, अभिनेता, दर्शक, रंगशिल्प के तत्व अर्थात् दृश्यबंध, रंग सज्जा, रंग दीपन, ध्वनि प्रभाव, पार्श्व-पृष्ठि संगीत आदि सब समाहित रहते हैं।"[2]

'रंगमंच' शब्द का आविर्भाव 'रंग' और 'मंच' दो शब्दों के संयोग से होता है। 'रंग' शब्द का अर्थ है - 'नाच' और 'नृथ्य'। भार्गव हिन्दी कोश में 'रंगमंच' शब्द का अर्थ इस प्रकार बताया गया है – "रंग' संस्कृत शब्द है। हो सकता है कि रगमंच शब्द संस्कृत के रंग शब्द से निकाला है।"[3]

"मंच' का शब्दार्थ है 'ऊँचा बना हुआ मण्डप।"[4] इस प्रकार रंगमंच का अर्थ हुआ वह उच्च स्थान जहाँ रंगकर्मी नाच, मृत्य नाटक आदि अभिनय कलाओं को

---

[1] गोविन्द चातक, रंगमंच कला और दृष्टि - 23-24
[2] सीताराम झा श्याम - नाटक और रंगमंच – 165
[3] भार्गव आदर्श हिन्दी कोश - पृष्ठ - 653
[4] भार्गव आदर्श हिन्दी कोश - पृष्ठ - 601

प्रदर्शित करते हैं। रंगमंच अपने व्यापक अर्थ में नाट्यमंडप या रंगशाला का पर्याय माना जा सकता है।

इस प्रकार रंगमंच का अर्थ, स्थल-विशेष के सीमित दायरे से बाहर व्यापक अर्थों में उस कलात्मक विधा से है जो जीवन की अनुभूतियों को सूक्ष्मता एवं गहराई के साथ गतिशील कार्य-व्यापार के रूप में प्रेक्षकों अथवा दर्शक-समाज के सम्मुख प्रस्तुत करती है।

2.रंगमंच : परिभाषा

वस्तुतः कला को परिभाषित करना एक जोखिम भरा कार्य होता है। विशेष तथा रंगमंच के संदर्भ में तो और भी सतर्कता एवं संयम की आवश्यकता होगी अन्यथा एकांगी और अपरिपक्व परिभाषा रंगमंच के विकास में साहित्यिक अड़चन सिद्ध हो सकती है।

रंगमंच की परिभाषा हिन्दी साहित्य कोश में इस तरह है - "वह मंच, जिस पर प्रेक्षकों के सम्मुख नाटक का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है। अब इससे प्रेक्षागृह तथा नाटक दोनों का ही बोध होता है।"[1] हिन्दी साहित्य कोश की यह परिभाषा रंगमंच के स्थूल स्वरूप को समझने में सहायक हो सकती है। रंगमंच का अपना एक आंतरिक संसार भी है। इस के सूक्ष्म-सौन्दर्य की ओर प्रस्तुत परिभाषा में रंगमंच का संकेत भी नहीं किया गया है। यद्यपि नाटक और प्रेक्षागृह आदि शब्दों के संयोजन से परिभाषा में रंगमंच इंगित है तथापि रंगमंच का संघटित रूप उजागर नहीं हो पाता। एनसाइक्लोपीडिया अमोरिकाना के अनुसार - "आधुनिक मापदंडों के आधार पर थिएटर (रंगमंच) मानव जाति के उन प्रयासों का प्रतिफलन है जहाँ वह संसार और अपने-आप को समझने के लिए उस को एक माध्यम बनाता है।"[2] एक ओर अमेरिकाना यह स्पष्ट करता है कि रंगमंच न केवल जीवन की प्रतिच्छाया है अपितु

---

[1] धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग -1 - पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 668.

[2] एनसाइक्लोपीडिया अमोरिकाना, वोल्यूम 26, पृ. 491

सत्य के अस्तित्व की ओर यह एक सकारात्मक खोज है। दूसरी ओर आगे चलकर अमेरिकाना यह स्पष्ट करता है कि रंगमंच वस्तुतः एक समृद्ध भ्रान्ति मूलक प्रक्रिया है। प्रस्तुत परिभाषा में विरोधाभास है।

हिन्दी साहित्य कोश से मिलती-जुलती एक और परिभाषा द न्यू मॉडर्न एनसाइक्लोपीडिया में मिलती है। इसके अनुसार रंगमंच से अभिप्राय उस इमारत अथवा रंगशाला से है जहाँ नाटकीय प्रदर्शन की उत्पत्ति या प्राडापन संभव है। पिछले तीस वर्षों से इसमें अनेक परिवर्तन और नूतन प्रयास एवं प्रयोग देखने में आये हैं जिनमें रंगदीपन, चित्रित मंच और स्लाइड्स आदि प्रमुख हैं। वस्तुतः रंगमंच का यह परिभाषित रूप एक अर्थ में तकनीकी दृष्टिकोण पर केन्द्रित है। रंगमंच की विशद व्याख्या इनसाहिक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में मिलती है। ब्रटेनिका ने देश विशेष की कालावधि के अनुसार रंगमंच का आकार-प्रकार और शैली निर्धारित करते हुए सामाजिक संबंधों और रंगमंच में अंतरंग संबन्ध स्थापित किया है। एनसाहिक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार – "थिएटर व्यवहार और सिद्धांत रूप से वह नाटकीय कला है जिस का वैयक्तिक स्वरूप भारतीय रंगमंच मध्ययुगीन थिएटर आदि विशेष शैली में निहित है।"[1]

हिन्दी साहित्य में यद्यपि रंगमंच की कोई एक परिभाषा सर्वमान्य तौर पर प्रतिष्टित नहीं हो पायी तथापि रंगमंच की व्याख्या और परिभाषित रूप निर्धारित करने में सर्वश्री नेमिचन्द्र जैन, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल और वीरेन्द्र मेंहधीरत्ता का योगदान अद्वितीय है। नेमिचन्द्र जैन और मेहधीरत्ता रंगमंच समीक्षक हैं तो मोहन राकेश और लक्ष्मीनारायण लाला नाट्य साहित्य में सर्वप्रतिष्टित लेखक हैं। लक्ष्मीनारायन लाला ने अपनी पुस्तक 'रंगमंच और नाटक की भूमिका' के निवेदन में यह विचार व्यक्त किया है कि – "भारत वर्ष में अभी तक नाटक का अध्ययन काव्य तथा साहित्य के स्तर पर ही होता है। रंगमंच की परिभाषा भी इसी लिए सामने नहीं

[1] इनसाहिक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वाल्यूम 22, पृ, 28 ए इन्ट्रडक्सन

आ पायी है। क्योंकि नाटक के अध्ययन में रंगमंचीय दृष्टि का अभाव सदा बना रहा है। लक्ष्मीनारायन लाला के अनुसार - रंगमंच एक अनुभूति है, इसे हम रंगमंच का आंतरिक पक्ष कह सकते हैं, पर जीवन में इसकी विराटता और समग्रता को देखना और उसके विभिन्न तत्वों को सही अर्थों तथा उसके ही अनुपात में समझना रंगमंच की अनुभूति का व्यावहारिक पक्ष है।"[1]

थिएटर क्या हैं? रंगसृष्टि अथवा नाट्य क्या है? इस सभी चीज़ों को देखते हुए नेमिचन्द्र जैन ने एक काम चलाऊँ परिभाषा सामने रखी है। ...... "नाट्य- कला सर्जनात्मक अभिव्यक्ति का वह रूप है जिसमें मुख्यतः किसी संवाद मूलक आलेख या कथा को (जिसे हम नाटक कहते है) अभिनेताओं द्वारा अन्य रंग शिल्पियों की सहायता से किसी मंच या रंगस्थल पर दर्शक समूह के सामने प्रस्तुत किया जाता है।"[2]

रंगमंच ने भी अन्य साहित्य विधाओं की भाँती विभिन्न वादों और घेरों में कई विशेषणों को अर्जित किया है। इन्हीं विशेषणों के अनुरूप रंगमंच की परिभाषाएँ समय-समय पर सामने आती रही हैं। उदाहरणार्थ, -यथार्थवादी रंगमंच, प्रतीक रंगमंच, स्वच्छंदतावादी रंगमंच, विसंगतिवादी रंगमंच आदि। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात कई वाद आये और चले गये। जिसने नाटक और रंगमंच को भी प्रभावित किया और उसे नयी दिशा दी।"[3]

निष्कर्षतः रंगमंच कोई ठोस वस्तु नहीं हैं। जिसकी परिभाषा गणित के क्षेत्र फल संबंधी प्रश्नों की तरह स्पष्ट कर दी जाए। भिन्न-भिन्न विद्वानों के मतानुसार रंगमंच की परिभाषा काल-क्रमानुसार विशेष संदर्भों को उजागर करती हुई एक-दूसरे से भिन्न दिखाई देती है।

---

[1] लक्ष्मीनारायन लाला, रंगमंच और नाटक की भूमिका, पृ.16
[2] नेमिचन्द्र जैन, रंग दर्शन, पृ. 19
[3] गोविन्द चातक, रंगमंच, कला और दृष्टि, पृ. 86

रंगमंच एक कला है। कला का उद्भव मानव मन में चराचर जगत के घात-प्रतिघात से उत्पन्न प्रभाव की अभिव्यक्ति की आकांक्षा से हुआ है। रंगमंच की मूल में भी अन्तस की यही उत्कट आकांक्षा वर्तमान है। रंगमंच का उद्भव नाटक में से हुआ। प्रथम नाटक का स्वरूप सामने आया, तप्तश्चात रंगमंच की आवश्यकता हुई। रंगमंच वह स्थल विशेष है, जहाँ नाटक यथार्थतः अभिनीति होता है। नाटक की सार्थकता रंगमंच पर अभिनीति कर प्रेक्षकों तक पहुँचाने में ही है। आधुनिक रंगमंच अभी प्रयोगशील है और उसके स्वरूप निर्धारण के लिए विश्व के प्रायः सभी सुसंस्कृत देशों में अनेक नये-नये प्रयत्न हो रहे हैं। ये प्रयत्न रंगमंच, रंगशाला के प्रेक्षागृह से संबंधित है। नाटक साहित्य की प्रमुख विधा है किन्तु नाटक केवल काव्य ही नहीं, दृश्य काव्य भी है और इसलिए दृश्य काव्य होने के नाते उसका सीधा संबंध अभिनय और रंगमंच से है। नाटक कई कला रूपों विशेषतः नृत्य, संगीत, चित्रकला और अभिनय से भी है। फलतः एक मिश्रित कला होने के नाते नाटक के अनेक पक्ष हैं। उसके प्रदर्शन के लिए रंगमंच आवश्यक है। नाटक एक ऐसी विधा है, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति रंगमंच पर भी संभव है; इसलिए नाटक और रंगमंच का घनिष्ट संबंध है। रंगमंच के लिए ही नाटक की उत्पत्ति हुई है और रंगमंच ही उसका पहला और अन्तिम लक्ष्य है।

नाटक के लिए रंगमंच अनिवार्य तत्व है। नाटककार कच्चा माल देता है जिसे रंगमंच पक्के माल के रूप प्रस्तुत करता है। इसलिए नाटक का पूर्णता में नाटककार के साथ-साथ अभिनेता दृश्य सजाकर, परिचालक सूत्रधार आदि का विशिष्ट योगदान है। अभिनेता नाटककार से शब्द और चरित्र ग्रहण कर भावमुद्रा, गति, वेश-भूषा, अंग विन्यास और स्वरोच्चार से नाटक के अधमरे भावों और अर्थों को विकसित कर देता है और चरित्र को युगीन सत्य के बीच रख कर चक्षु और इन्द्रियों के लिए आस्वादन के अनेक आयाम उपस्थित कर देता है। अभिकल्पना और दृश्य सज्जाकार देश और काल के अनुसार नाट्यव्यापार को आधार प्रधान करते हैं। व्यख्या से एक ऐसी सृष्टि करता है जो नाट्य कृति पर आधारित होते हुआ भी उससे भिन्न रूप रंग ग्रहण कर

लेती है। इस प्रकार जितना नाटककार महत्वपूर्ण है नाट्य रचना रंगकर्म भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

आज रंगमंच को व्यापक अर्थ में लिया जा रहा है। इसके अन्तर्गत नाट्यालेख, निर्देशक, अभिनेयता, रंगशिल्पी, (मंच सज्जा, प्रकाश, वस्त्र-विन्यास, रूप विन्यास, संगीत तथा ध्वनि-विन्यास) व्यवस्थापक, दर्शक मंच और रंगशाला सभी कुछ आ जाते हैं। समकालीन हिन्दी महिला नाटककार रंगमंचीय दृष्टि से निरंतर प्रयोगधर्मी नाटककार रही हैं।

रंगमंच के माध्यम से संपूर्ण उपयोग, उसके छोटे-बड़े सभी तत्वों का व्यापक प्रयोग करते हुए वह निरंतर उसके बुनियादी तत्वों तक पहुँचने की यात्रा करती रही हैं। इस दृष्टि से महिला लेखिकाएँ रंग तत्वों का वस्तुतः एवं व्यापक उपयोग करती रही हैं। इनके नाटकों में बाह्य तत्वों के साथ-साथ आंतरिक रंग तत्वों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है।

3.पाश्चात्य दृष्टि से रंगमंच का स्वरूप

जहाँ तक पाश्चात्य रंगमंच का प्रश्न है, उसका प्रारंभ पहले पहले ग्रीस (यूनान) में हुआ। आदिम समय में यूनान में अंगूर की खेती के पककर तैयार हो जाने पर किसान अंगूर के देवता डायोनिशस या डाइनिसस की पूजा किया करते थे। डायनिशस की मूर्ति के इर्द-गिर्द यूनानी उन्मत्त होकर नाच-गान द्वारा युद्धों, संघर्षों आदि का अभिनय किया करते थे। अंगूर के देवता के इर्द-गिर्द घेरा बनाकर नृत्य करने के फलस्वरूप सहज ही वृत्ताकार मंच की कल्पना की जा सकती है। धीरे-धीरे धार्मिक उत्सवों के उपलक्ष पर नाट्य प्रदर्शनी के आयोजन होने लगे। इन धार्मिक उत्सवों पर त्रासदी, कामदी और सेटायर (व्यंग) आदि खेले जाते थे। यूनानी नाटकों में अभिनय पुरुषों द्वारा ही संपन्न होता था। मंच पर अभिनेताओं की संख्या तीन होती थी। यह तीन अभिनेता एक से अधिक भूमिकाएँ निभाया करते थे। कोरस का यूनानी थिएटर में बहुत अधिक महत्व है। प्रारंभिक अवस्था में 50 आदमियों का समूह होता

था बाद में उनकी संख्या 12 अथवा 15 तक कर दी गयी। टिप्पणी करना, परामर्ष देना, कथासूत्रों को जोड़ना व गति-प्रदान करना कोरस का कार्य होता था।

रोमन नाटक और यूनानी नाटक एक-दूसरे से प्रभावित होते हुए भी अपनी-अपनी विशिष्टताएँ बनाये हुए हैं। रोमन नाटक भी उत्सवों पर खेले जाते थे परन्तु डाइनिसस की पूजा से उनका कोई सरोकार नहीं है। इन नाटकों की व्यवस्था का कार्यभार धनिक लोग उठाते थे। रोमन नाटकों में संगीत का बाक़ायदा प्रवेश हो गया। यूनानी नाटकों में संगीत केवल कोरस तक सीमित था। रोम में त्रासदी की अपेक्षा कॉमदी अधिक लोकप्रिय हुई। रोमन रंगमंच जो सर्वप्रथम सरकस मैक्सिमस नाम से पुकारा गया वृत्ताकार रंगशाला का जन्म दाता माना जाता है। मंच मण्डपयुक्त और प्रेक्षागृह खुले होते थे। मध्य मंच पर ऊपर को उठा हुआ गोल मंच होता था ताकि सरकस के जानवरों हाथी, घोड़ा, ऊँट आदि का भी प्रदर्शन संभव हो सके। रोमन सम्राट कोन्स्टेण्टाइ के समय रोमन रंगमंच का बड़ा ह्रास हुआ। नाटक न देखने के लिए आदेश दिये जाते थे और रंगशाला को बन्द करवाना शुरू कर दिया।

यूरोप में चर्चा के हस्तक्षेप के कारण नाटकों के प्रदर्शन पर प्रदिबंध लगते रहे। परन्तु कालान्तर में पादरियों ने रंगमंच की प्रभावपूर्ण शक्ति को देखते हुए इसे धर्म-प्रसार का मुख्य साधन बना लिया। मध्ययुग में इटली, फ्रान्स आदि देशों में नाटक गिरिजाघरों में पादरियों द्वारा अभिनीत होते थे। परन्तु इंग्लैड में एलिजाबेथ के राज्यकाल में नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन सामने आये। शेक्सपियर से कुछ समय पूर्व रंगमंच गिरजाघर से शिल्पसंघों के हाथ में आ गया। इस तरह नगर के चौराहों और सरायों में नाटक दिखाने और देखने का प्रचलन बढ़ने लगा। शेक्सपियर के नाटक ग्लोब थियेटर में खेले गये। ग्लोब थियेटर का मंचाग्र (पिट) प्रेक्षागृह की ओर निकला हुआ होता था। दर्शक खड़े होकर नाटक देखा करते क्योंकि प्रेक्षागृह रंगपीठ से नीचे होता था। पश्चिम में रंगमंच के प्रकार और विकास

के संबंध में अज्ञात का अभिमत है – "सेर्लिओ ने विद्रूवियस द्वारा यूनानी और रोम की रंगशालाओं के स्थापत्य के वर्णन के आधार पर सोलहवीं शती में रंगशाला का जो रूप निरूपित किया, उसमें रंगमंच लकड़ी का बनाया जाता था, जिसका पृष्ठपट (दीवाल) चित्रित हुआ करता था। सत्रहवीं शती में प्रारंभ में मंचाग्र पर रंगमुख मेहराब (प्रोसिनियम आर्च) बनने की प्रथा प्रारंभ हुई, जो बात में कई शताब्दियों तक चलती रही।"[1]

औद्योगीकरण और विद्युत के प्रसार के साथ पाश्चात्य रंगमंच की दुनिया में यंत्रों के समावेश से क्रान्तिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। चित्रसंघीत रंगमंच (पिक्चर फ्रेम्ज) की परिसीमा यह है कि प्रेक्षक को रंगमंच और उस पर होने वाले कार्य का केवल वही भाग दिखायी पड़ता है, जो रंगमुख मेहराब के घेरे में से उसके लिए देखना संभव है। "मंच और प्रेक्षाघर के मध्य में वादकवृन्द (कुतुप-आर्केस्टा) के बैठने की भूमि तलस्थली (पिट) होती है। यह दर्शकों को दिखाई नहीं पड़ती थी।"[2]

पाश्चात्य रंगमंच से प्रभावित जापान के सबसे बड़े रंगमंच काबुकी रंग मंच पर इसी चित्र-बन्धीय प्रणाली का प्रयोग होता है। अब न केवल मंच परिक्रमी हो गये हैं अपितु फिनलैंड में एक परिक्रमी प्रेक्षागृह पाइनिक्की समर थियेटर है। इस प्रेक्षागृह के चारों ओर मंच हैं और दृश्य योजनानुसार प्रेक्षकों को उस ओर घुमा दिया जाता है। रूसी की क्रस्निया रंगशाला में प्रेक्षकों के बैठने की सीटें घुगाव हैं ताकि प्रेक्षक स्वयं किसी भी मंच की ओर घूम कर देख सके। मंच संबंधी प्रयोगों के अन्तर्गत मुक्ताकाशी या खुले मंच (ओपन थियेटर) न केवल अमेरिका ओर इग्लैंड में प्रचलित हैं अपितु भारत में भी इन का प्रचलन बढ़ने लगा है। इस नवीन रंगमंच प्रयोग से अभिनेता का दर्शकों से सीधा संपर्क हो जाता है। बीसवीं शती को रंगमंच के इतिहास में अविस्मरणीय बताते हुए गोविन्द चातक लिखते हैं कि - "एडोल्फ अधिया और

---

[1] सं. शिवराम माली ,सुधाकर गोरककर, नाटक और रंगमंच, पृ. 202

[2] सं. शिवराम माली ,सुधाकर गोरककर, नाटक और रंगमंच, पृ. 202

गोर्डनफ्रेग ने रंगमंच के व्यवहारिक पक्ष को अपने चिन्तन से प्रभावित किया।.....इसी युग में परिचालक की कला का विकास हुआ -रेनहार्ट, मेयरहोल्ड, स्तानिस्लावस्की, ब्रेख्त ने अपने निर्देशनों से रंगमंच को नयी दृष्टि दी।"[1] बाद में विभिन्न वादों के प्रभाव में आने से रंगमंच का स्वरूप इन्ही वादों से प्रभावित हुआ।

4.भारतीय दृष्टि से रंगमंच का स्वरूप

व्यावहारिक दृष्टि से भारत ने अपने नाट्यशात्र में रंगमंच को नाट्यमण्डप या रंगशाला का पर्याय माना है। भुवनेश्वर महतो नाट्यशात्र में रंगमंच शब्द का अभिप्राय इस प्रकार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि – "अध्ययन की सुविधा के लिए रंगमंडप और रंगशाला के सीमित शाब्दिक अर्थ ग्रहण कर उन्हें नाट्य मण्डप के दो पृथक अंगों के रूप ही ग्रहण करना उचित होगा।"[2] भरत ने तीन प्रकार के रंगमंच बताए हैं - विकृष्ट, चतुरस्त्र तथा त्रयस्त्र। इन तीनों के आकार क्रमशः आयताकार, वर्गाकार और त्रिभुजाकार बताये गये हैं। संस्कृत रंगमंच के आकार-प्रकार को भरत के परवर्ती विद्वानों अभिनव गुप्त आदि ने उपरोक्त तीनों मण्डपों के तीन-तीन उपभेद किये हैं – "ज्येष्ठ का प्रयोग देवताओं के लिए मध्यम का राजाओं के लिए और अवर का प्रयोग आम जनता के लिए होता था।"[3] भरत के नाट्यशास्त्र में रंग और सज्जा निर्देश मिलते हैं। नाट्याचार्य के अनुसार नाट्य-मण्डप मुख्यतः दो भागों में विभक्त रहेगा। रंगमंच का आधा भाग रंगपीठ, रंगशीर्ष कहलाता है तथा शेष आधे भाग में प्रेक्षागृह बनाया जाता था। प्रेक्षक के समीप के स्थान को रंगपीठ कहते हैं। मंच का पिछला भाग रंगशीर्ष कहलाता था और इसके पीछे नेपथ्य और दो द्वारों का विधान होता था जो रंगशीर्ष पर खुलते थे। "इसी प्रकार नाट्यशास्त्र में कहा जाता है कि रंगपीठ के

---

[1] गोविन्द चातक, रंगमंच : कला और दृष्टि, पृ. 85

[2] भुवनेश्वर महतो, हिन्दी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन ,पृ. 37

[3] रघुवर दयाल वार्णेय, रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटक, पृ. 175

दोनों ओर मतवारणी बनाई जाए जो रंगपीठ से कुछ ऊँची होती थी।"[1] नेपथ्य का प्रयोग न केवल पात्रों की सज्जा और ध्वनि प्रभावों के लिए होता था परन्तु वर्जित दृश्यों के लिए यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ क्योंकि ऐसे दृश्यों को संस्कृत नाटकों में प्रस्तुत नहीं किया जाता था। प्रेक्षागृह में दर्शकों के बैठने का स्थान सीढ़िनुमा पीठिकाएँ थीं। इनका निर्माण ईन्टों से होता था जिन पर पट्टे या पीढ़े बिछा दिये जाते थे। प्रत्येक पीठिका नीचे की सीढ़ि से एक हाथ ऊँची होती थी ताकि रंगपीठ सरलता से दिखाई दे सके। रघुवंश इस प्रकार के नाट्य-गृहों का उल्लेख अन्य नाट्य-ग्रंथों में भी पाते हैं। उनके अनुसार – "इस प्रकार के नाट्य संकेत शिल्परत्न तथा संगीत रत्नाकर जैसे ग्रन्थों में मिलता है और साथ ही विक्रर्मोवशीयम, मालिविकाग्निमित्र जैसे कुछ नाटकों में भी इसका उल्लेख मिलता है।"[2]

श्री नेमिचन्द्र जैन ने नाट्यशास्त्र में बताए गये वर्गाकार मंच की विशेषताओं को देखते हुए इस बात की ज़रूरत पर ध्यान आकर्षित किया है कि रंगशालाओं के निर्माण में इन विधियों का ध्यान रखा जाना चाहिए। नेमिचन्द्र जैन का विचार है कि – "मंच वर्गाकार है, जिसके तीन या चारों ओर दर्शक बैठते हैं। एक नेपथ्य की दीवार है, जिससे अभिनेताओं के प्रवेश-प्रस्थान के लिए दो द्वार हैं। सहज निरंतर कार्य-व्यापर और दर्शकों के साथ समीपता तथा साझेदारी की दृष्टि से ये रंगशालाएँ बड़ी उपयुक्त हैं।"[3] भारतीय नाट्यशास्त्र में रंगशाला का यह स्वरूप निस्सन्देह समकालीन सन्दर्भों में आज भी विशिष्ट महत्व का स्थान रखता है।

दसवीं शताब्दी से संस्कृत रंगमंच के ह्रास के संबंध में बौद्ध-जैन धर्म और मुसलमानों के आक्रमण दोषी ठहराए जा सकते हैं। मध्यकालीन रंगमंच तो नहीं के

[1] गोविन्द चातक, रंगमंच कला और दृष्टि, पृ. 128
2 रघुवंश, नाट्यकला, पृ. 230-231
3. नेमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ.74

बराबर था। परन्तु संस्कृत नाट्यशालाओं के पतन के बावजूद भी हमारे लोक जीवन में प्रचलित रामलीला, रासलीला तथा यात्रा आदि नाट्य रूपों से खुली नाट्यशालाओं का स्वरूप स्पष्ट स्वीकार किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगमंच से अभिप्राय रंगभवन या स्टेज से नहीं है। पाश्चात्य एवं भारतीय दृष्टिकोण से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रंगशाला के आकार-प्रकार युगानुसार बदलते रहे हैं। रंगभूमि और रंगशाला भी अपने-अपने में एक जीवन्त कला है।

अतः आज यह स्वीकार किया जाने लगा है कि रंगमंच नाटक की कसौटी है। नाटक की अनिवार्यता और सार्थकता अभिनीत होने में है। सुरेश अवस्थी का कहना है कि नाटक साहित्यिक विधा तो है ही परन्तु यह विविध दृश्यों और ललित कलाओं से अपनी कला के तत्व ग्रहण करते हुए अपनी विशिष्टता बनाए रहता है। परन्तु हिन्दी नाट्यालोचना में नाटक के साहित्यिक पक्ष को प्रस्तुत किया जाता रहा है। ऐसी नाट्यलोचना के संबंध में सुरेश अवस्थी का अभिमत है कि "......वर्णनात्मक साहित्यिक नाट्यालोचना में..... नाटक के रूप शिल्प और रचना नियमों को प्रभावित करने वाले रंगशिल्प के कला तत्वों और रूढ़ियों का कोई विवेचन नहीं रहता।"[1] वीरेन्द्र मेहदीरत्त के शब्दों में – "आज यह स्वीकार किया जाने लगा है कि नाटक का मूल्यांकन उसे रंगमंच से अलग करके नहीं किया जा सकता। रंगतन्त्र नाट्य-संरचना को नियन्त्रित करता है।"[2] स्वाभाविक है कि नाटक का रंगमंचीय अध्ययन लेखक की रंग-चेतना को समझे व परखे बिना संभव नहीं। डॉ. राम कुमार वर्मा आधुनिक नाटकों में संघर्ष, चरमसीमा, चरित्र-विश्लेषण, वैज्ञानिक मंच व्यवस्था आदि तत्वों के आधार पर प्राचीन साहित्यिक नाटकों से अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – "आधुनिक नाटककारों ने..... अपने कथानक की रचना में ऐसे दृश्यों की अधिक

---

[1] नटरंग, अंक 32, पृ. 63

[2] नटरंग, अंक 32 पृ. 64

अवतरण की जो रंगमंच पर स्वाभाविकता के साथ प्रदर्शन किये जा सकते हैं।"[1] यह रंग-चेतना तथा मंच के प्रति सजगता नाट्य-कृति के बाह्य एवं आन्तरिक संरचना में घुल-मिल कर दर्शकों में कलात्मक नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करती है।

5.नाटक और रंगमंच का पारस्परिक संम्बन्ध

नाटक और रंगमंच का आपस में बहुत गहरा और व्यापक संबंध है। परन्तु स्वतंत्रता से पूर्व लिखे गये नाटकों में इस तथ्य के प्रति लगभग उपेक्षापूर्व नकारात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया गया है। चौथे दशक तक तो रंगमंच और नाट्य की यह स्थिति रही कि एक-दूसरे के पूरक बनने की अपेक्षा में आपस में अजनबी ही बने रहे। शशि प्रभा शास्त्री ने इस अजनबीयत का मुख्य कारण सशक्त नाट्य परम्परा का अभाव माना है। रंगमंच को नकारने के लिए केवल नाटककार को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, इसके पीछे कुछ ऐतिहासिक कारण और तत्कालीन परिस्थितियों के अतिरिक्त, नाटक का मूल्यांकन रंगमंच के सन्दर्भ में न होकर नाटक में अर्थ-प्रकृतियों और कार्य की पाँच अवस्थाओं को तो ढूँढ़ा गया है, मगर वह दृश्य भी और प्रेक्षक-सचेतना भी उसमें अनिवार्य होनी चाहिए, इस ओर समीक्षकों का ध्यान नहीं गया है।

वस्तुतः नाटक एक सर्जनात्मक कला है। नाटक की सर्जनशीलता या कलागत रूप अपनी समग्रता में तभी प्रकट होता है जब नाट्यलेख को प्रेक्षकों के समक्ष रंगमंच पर अभिनय करके दिखलाया जा सके।...नाटक से मेरा तात्पर्य केवल उसके लिखित रूप से नहीं, उसके अभिनीत रूप से हैं। कुँवर नारायण जी अग्रवाल का यह कथन नाटक और रंगमंच के पारस्परिक सम्बन्धों की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

नाटक को दृश्य काव्य कहा गया है। जिसकी चाक्षुष-प्रतीति का एक मात्र आधार रंगमंच है। रंगमंच और नाटक को लेकर लम्बे अरसे से चले आ रहे विवाद

[1] शिवराम माली, सुधाकर गोकाककर, नाटक और रंगमंच, पृ. 126

के मूल में दृश्य-पक्ष का बिल्कुल नकार है। दृश्य-काव्य का अर्थ ही यह हुआ कि वह काव्य देखने के लिए होता है। जिसे दिखाने का कोई माध्यम हो। वह माध्यम है - रंगमंच। अतएव नाटक का माध्यम रंगमंच है।"[1] नेमिचन्द्र जैन के अनुसार - "रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन या उसके विविध अंगों और पक्षों पर विचार अपूर्ण ही नहीं भामक हो जाता है।"[2] शशि प्रभा शास्त्री भी यह मानती हैं कि - "रंगमंच को पूर्णतः भुलाकर नाटक का सृजन सम्भव नहीं है और यदि ऐसा सम्भव हो सका है तो वह कृति दृश्य काव्य न होकर श्रव्य काव्य के अन्तर्गत ही आती है।"[3]

जयशंकर प्रसाद का यह विचार था कि यह एक भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे गये हैं। उनका यह कथन था कि पहले नाटक की रचना नाटककार की अभिरुचि और कल्पनानुसार होनी चाहिए और फिर उसमें निहित अभिनय के अनुसार रंगमंच का निर्माण करना चाहिए। उनकी यह दृष्टि इस तथ्य की परिचायक है कि वे नाटक को रंगमंच के लिए नहीं, रंगमंच को नाटक के लिए मानते हैं। परन्तु नाटक और रंगमंच का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। प्रसाद के समय में हिन्दी का अपना रंगमंच विकसित नहीं हो पाया था। इसलिए कोई भी नाटककार चाहे कितना ही प्रतिष्ठित क्यों न हो, चाहते हुए भी युगीन रंगमंच की उपेक्षा नहीं कर सकता। तत्कालीन रंगमंच के स्वरूप का उसके नाटक में प्रतिबिम्बित होना सहज ही स्वाभाविक है।

नाटक और रंगमंच के पारस्परिक सम्बन्धों को मोहन राकेश ने अपने प्रकार से व्याख्यायिक और विश्लेषित करते हुए लिखा है – "रंगमंच की पूरी प्रयोग प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यासगत सम्मानित दर्शक या बाहर की इकाई बना रहे,, यह स्थिति मुझे स्वीकार्य नहीं लगती। न यही कि नाटककार की प्रयोगशीलता उसकी

---

[1] सं. नेमिचन्द्र जैन, आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ. 210

[2] नेमिचन्द्र जैन, रंग दर्शन, पृ..21

[3] शशि प्रभा शास्त्री, बीसवीं शताब्दी का हिन्दी रंगमंच, पृ. 12

अपनी अलग चहारदीवारी तक सीमित रहे और क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता उससे दूर अपनी अलग चहारदीवारी तक।"[1]

आज नाटक सार्थक जीवनाभिव्यक्ति का सबल माध्यम बन चुका है। नाटक एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में भी प्रतिष्ठित है। साहित्य का उद्धेश्य व्यष्टि से समिष्टि का बोध कराना है। अन्य साहित्यिक विधाएँ श्रव्य हैं परन्तु नाटक साहित्यिक विधा से भी परे एक स्वतंत्र चाक्षुष-प्रतीति को सम्भव कराता है। और साहित्यिक नाटक अवश्य ही मन के रंगमंच पर लिखे जाते रहे होंगे। नाटककार को अवश्य ही व्यक्तिपरक सुखद आस्वादन होता रहा होगा इसी तथ्य को सामने रखते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि - नाटक रंगमंच पर अभिनीत होता है। कल्पना के रंगमंच पर वास्तविक अभिनय कला का साक्षात्कार नहीं होता।"[2] और यहाँ पर नाटक का माध्यम रंगमंच पुनः अभिव्यक्ति का माध्यम भी कहलाता है। सुषमापाल मल्होत्रा नाटक तथा रंगमंच का अन्योन्याश्रित संबंध स्वीकार करते हुए लिखती है कि - नाटक तथा रंगमंच का संबंध परस्पर सापेक्ष हैं।"[3]

इस प्रकार नाटक एक दृश्य काव्य है, जिसमें रंगमंचीय अभिनय को दृष्टि में रखकर प्रेक्षकों के सम्मुख गतिशील एवं क्रियाशील जीवन की प्रस्तुति रखी जाती है। आज साहित्यिक नाटक और रंगमंचीय नाटक जैसे भेद-उपभेद मानो मिट चले हैं। नाटक और रंगमंच की पारस्परिक निर्भरता को एक शरीर एक आत्मा कहा जा सकता है। नाटक यदि आत्मा है तो रंगमंच उसका शरीर। यह भी कहा जा सकता है कि जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा को कोई रूप एवं आकार नहीं मिलता उसी प्रकार रंगमंच के अभाव में नाटक की कोई कल्पना करना भ्रम माना है।

---

[1] नटरंग, अंक .21, पृ. 14-15
[2] सं. नेमिचन्द्र जैन, नटरंग, अंक .12, पृ.1
[3] सुषमापाल मल्होत्रा, प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच, प्राक्कथन, पृ.3

आज रंगमंच को व्यापक अर्थ में लिया जा रहा है। अतएव नाटक के रंगमंचीय अध्ययन में निम्नलिखित तत्व विवेचन की दृष्टि से अपेक्षित होंगे - अभिनेयता, संवाद योजना, दृश्य योजना, संगीत तथा ध्वनि योजना, प्रकाश योजना, वस्त्र-विन्यास तथा मंच सज्जा, इत्यादि।

6.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में अभिनय और अभिनेयता- की परिकल्पना

नाटककार की भाव-दशा को सामाजिक में अभिनेता उद्भव करता है। इस के लिए वह जिन कृतियों का सहारा लेता हैं, उन्हें अभिनय कहते हैं।

भरत मुनि के अनुसार अभिनय चार प्रकार के हैं –

'आंगिको वाचिक श्चैव आहार्यः साध्विकस्तथा।
ज्ञेयस्त्व भिनयी विप्राश्चतुर्धा-परिकल्पितः।।"[1]

इस स्लोक के द्वारा भरत मुनि ने आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक आदि को अभिनय के तत्व माना है।

'आंगिक अभिनय' में शारीरिक चेष्टाओं द्वारा भाव व्यक्त किया जाता है। भाषा, स्वर, छन्द, काकु आदि के द्वारा जिन भावों को व्यक्त किया जाता है उसे 'वाचिक अभिनय' कहते है। 'आहार्य अभिनय' में वेश-भूषा, साज़ सज्जा, अभूषण, रंगों आदि का भावाभिव्यक्ति के लिए सहारा लिया जाता है। स्तब्द, रोमांच, प्रलय, स्वेदारि, सात्त्विक हाव-भावों से अभिनय में जो महाप्राणाति आदि है उसे 'सात्त्विक अभिनय' कहते हैं। किसी भी नाटक के सफलता पूर्वक मंचन के लिए अभिनय संबंधित इन निर्देशों का अनुपालन आचार्य ने आवश्यक माना है।

---

[1] नाट्यशास्त्र -पृ-6/23

भारतीय आचार्यों ने अभिनय शब्द की व्युत्पत्ति परक अर्थ पर विचार करते हुए इसी अभिप्राय की सिद्ध मानी है - नाट्य कला का यह विशिष्ट परिभाषा शब्द ***अभि*** उपसर्ग ***नि*** धातु और ***अच्*** प्रत्यय को लेकर बना है। 'अभि' का अर्थ है –***'की ओर'***, 'नि' का अभिप्राय है ***'ले जाना'*** 'अच' का आशय है ***'जाना'***

अभिनय से तात्पर्य इस प्रकार उस व्यापार से है जो हमें अपने चारों ओर के संसार से निकल कर, रंगमंच पर निर्मित हो रहे कलात्मक संसार तक पहुँचा देता है।

अभिनय को सामान्यतः अनुकरण समझ लिया जाता है। यह भ्रम आचार्यों के उन वक्तव्यों के कारण हुआ है, जिन में नाटक को मानव-जीवन की विभिन्न आवश्यकथाओं की अनुकूल कहा गया है।

अभिनय के प्रदर्शन में ही नाटक की सफलता है। जिस नाट्य कृति में रंगमंचीय संभावनाएँ नहीं है उसे नाटक कहना नाटक के स्वरूप का अवमूल्यन करना है। नाटक इसलिए नाटक है कि उसमें रंगमंच निर्देशन, अभिनेता आदि अतिरिक्त तत्व है, जो उसे अन्य किसी भी साहित्यिक रचना से पृथक बनाते हैं।

समकालीन महिला नाटकों में अभिनय की जो शैली दिखाई पड़ती है वह यथार्थ शैली है। इन नाटकों के लगभग सभी पात्र समकालीन जीवन के पात्र हैं जो समकालीन मनुष्य की तरह मुसीबतों से जूझते हैं, जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं का सामना करते हैं, संघर्ष की परिस्थितियों में समकालीन मनुष्य टूटते हैं, बिखरते हैं और जीवन जीने में विवशता का अनुभव करते हैं। कुसुम कुमार जी के 'सुनो शेफाली', 'रावण लीला' और 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' के सभी पात्र तो मध्यवर्ग के नितांत जाने-पहचाने पात्र हैं। ये सभी पात्र सामान्य व्यक्तियों की तरह उठते-बैठते, हँसते-रोते, लड़ते-झगड़ते और विवशताओं में फँसे हुए वे पात्र हैं जो हमारे आसपास, घर में, खुद में दिखाई पड़ते हैं। ऐसे पात्रों को गढ़ने में अभिनय की यथार्थ शैली ही उभर कर आती है।

संपूर्ण नाटक का मंचीय विधान यमुना के दो घाटों में वितरित है। दोनों घाटों से होकर बहता यमुना का स्वच्छ जल प्रवाह है और इन दोनों घाटों को बाँस का बना पार्टीशन अलग करता है। प्रथम दृश्य में बाँयाँ और दाँयाँ दोनों तरफ़ का मंच है। दृश्य विभाजन की यह तकनीक हिन्दी नाटकों में नयी है, जो नाटककार की प्रयोगधर्मिता को स्पष्ट करती है। मंच पर घटित होते कार्य व्यापार एवं अभिनय के बीच तथा चरित्र एवं घटनाओं के बीच संतुलन हो जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि नाटक में जहाँ कथ्य के स्तर पर सर्वथा नयी वस्तु का चुनाव किया गया है, वहीं शिल्प के स्तर पर नाटककार के प्रौढ़ नाट्यानुभव के लक्षण दृष्टिगत होते हैं। नयी रंगमंचीय अवधारणा, नया प्रतिपाद्य विषय, अभिनय एवं शिल्पगत कुशलता के साथ ही नवीन मंचीय व्यवस्था की पद्धति के कारण नाटककार की यह अपनी अलग पहचान बनाता है। इन नाटकों के द्वारा कुसुम कुमार के नाटकों में प्रयोगधर्मिता की स्थिति काफ़ी मज़बूत होती दिखाई देती है।

मन्नू भण्डारी के 'बिना दीवारों के घर' की शोभा हो या अजित हो, या मीना या जयन्त हो सभी यथार्थ जीवन के ही पात्र है। शोभा और अजित के दाम्पत्य जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि परस्पर मतभेद पूर्ण संबंधों को लेकर घर की चारदीवारी के अंदर जीते हैं। मीना और जयन्त मतभेद पूर्ण संबंधों को लेकर घर की चारदीवारी से बाहर रहते हैं। यह त्रासदी है कि पुरुष के साथ जीना जितना कठिन है उससे अधिक उसके बिना भी जीना उतना ही कठिन है। इस प्रकार जीवन के कटु यथार्थ दिखाई पड़ते हैं। लेखिका ने अपनी अक्षर प्रतिभा से शब्दों के माध्यम से पात्रों के अभिनय का सफलतम रूप प्रत्यक्ष कराया है। यथाः **शोभा :** ठीक है, तो मैं अकेली ही चली जाउँगी। जहाँ मैं ने अपने भीतर की पत्नी को मारा है.... ।"[1]

मृदुला गर्ग का 'एक और अजनबी' एक पारिवारिक महौल के साथ चलता है और उस घरेलूपन में ही आधुनिक संवेदना को व्यक्त करता है। आरंभ में अविवाहित

[1] बिना दीवारों के घर-100

स्त्री-पुरुष बड़े जीवन्त, स्वाभाविक, निडर, उन्मुक्त हैं- स्त्री डॉक्टर हैं, पुरुष लेखक। शुरू में उन्मुक्त हँसी, ठहाकों के स्वर से बाद में उनके दृश्य बीच-बीच में लाकर नाटकीय संवेदना को गहरा और अलग बिन्दुओं को व्यक्त करती है। नाटक में एक के बाद एक दृश्य बदलते रहते हैं। नाटककार स्वयं इस प्रकार की सूचना देता जाता है। पात्रों की उम्र, पात्रों की वेश-भूषा, पात्रों की बदलती हुई भाव-भंगिमाएँ तथा नाटक की प्रकाश योजना का संकेत यथा स्थान स्वयं नाटककार कर देता है। इसलिए निर्देशक को विशेष आयोजन की जरूरत नहीं पड़ती अथवा नाटककार के सूचनाओं की मदत उसे ही हो जाती है। जैसे- आयु पच्चीस वर्ष लंबी पतली आकर्षक देह। चेहरे पर बुद्धिमत्त और दूरदर्शिता की छाप।"[1]

मृदुला गर्ग का दूसरा नाटक है 'जादू का कालीन' अभिनय की दृष्टि से सफल नाटक है। एक बार दिल्ली में इस का मंचन भी हुआ था। लेखिका ने 'एक और अजनबी' जैसे मंचीय उपकरण और पात्रों का चनय बहुत गंभीर और पात्रों का अभिनय का यथा उचित अवसर प्राप्त होता है। क्यों कि एक ही समय पर चार से अधिक पात्र मंच पर नहीं आते। ध्वनि तथा संगीत योजना और प्रकाश योजना का सफल प्रयोग किया गया है। नाटक में विवाह, यात्रा जन्म-मृत्यु आदि मंचीय प्रसंगों को कुशलतापूर्वक संवादों के माध्यम से साकार किया गया है। यथाः- पत्रकार : बहुत हो गई फिलासफी। गाय बाँटिए और हमें छुट्टी दीजिए। चार बजे हमें पटना पहुँचना है।"[2]

'मौजूदा हालात को देखते हुए', 'आदमी जो मछुआरा नहीं था' और 'चोर निकल के भागा' जैसे अभिमंचित एवं चर्चित नाटकों की लेखिका मृणाल पाण्डे नाट्य लेखन के क्षेत्र में केवल सतत सक्रियता की दृष्टि से नहीं बल्कि रंगमंच से प्रत्यक्षतः

---

[1] एक और अजनबी - पात्र परिचय
[2] जादू का कालीन - पृ - 52

जुड़कर गंभीरता-पूर्वक रंगनाटक लिखने की ईमानदारी रचनात्मक कोशिश करने की दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं।

'चोर निकल के भागा' में महानगरों की वह युवा पीढ़ी रही है, रमेश, महेश, रामावतार, सुरेश और नीता पढ़े-लिखे बेरोजगार नौजवान हैं जो एक रंगीले -छबीले बाबा के कहने पर अपनी तकदीर बदलने के इरादे से एक पुरानी फारसी थेटर कंपनी के मास्टर गेंदालाल और भी शरीफों से जा टकराते हैं। नाटक को, कुछ असामान्य-असाधारण पात्रों की उलजुलूल हरकतों, उनके फूहड़ संवादों और तलीफों चुटकलों का जमघट मानने के बजाए, विडम्बनापूर्ण हास्य स्थितियों का दिलचस्प संयोजन मानती हैं जिसके माध्यम से चरित्रों एवं स्थितियों की विसंगतियों को हँसते-हँसते हुए देखा, समझा जा सके। नाटक व्यावसायिक रंगमंच पर विशेष रूप से प्रभावित होकर अभिनेता ने पात्रों की केन्द्रीय चरित्र की पीड़ा को दर्शकों तक संप्रेषित करने में प्रशंसनीय भूमिका निभाई है। नाटक में सभी पात्रों ने खुल कर अभिनय किया है।

प्रस्तुत नाटक 'मौजूदा हालत को देखते हुए' वर्तमान परिस्थितियों से जन्मा एक सशक्त और तीक्ष्ण राजनीतिक व्यंग्य है। इसे लेखिका ने लोक शैली के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

शारदा नगर की पढ़ी लिखी और नवचेतना संपन्न युवती है। वह सुख-दुख में पति, परिवार तथा गाँव के लोगों का साथ देना चाहती है। उसे लगता है कि पुरुषों ने जो संसार हम औरतों को दिया है वह कितना सुरक्षित है। यह अनुभव करती है कि पुरुष ही हमें पहले तर्क सिखाते है। जब यही तर्क उन्हें साझेदारी की ओर धकेलता है तो ये लोग हमें फिर से स्त्रियों को दूसरे दर्ज की दुनिया में लौटा देते है जहाँ नौकरी नहीं, स्कूल नहीं, केवल एक उबान भरी क़ैद है जिसमें अपने-अपने पतियों का नाम दिन भर बैठी रटती रहती हैं। शारदा का इस प्रकार सोचना नयी शिक्षा प्राप्ति के परिणाम स्वरूप है जिसने उसे मध्यकालीन और आधुनिक बोध के मध्य अंतर करना सिखाया है।

नाटक में अभिनय संबंधी अनेक परिवर्तन पाये जाते हैं। केवल कुछ ही पात्रों और धटनओं को लेकर लिखा गया नाटक रंगमंचीय स्तर पर बहुत ही प्रभावपूर्ण सिद्ध हुआ है। विवशता, सहानुभूति, संतुलन, विघटन, संत्रास, कुण्ठा आदि भावनाओं को दिखाने में अभिनेता के सफलता पूर्वक प्रस्तुति करने में सफलता पाई जाती है। यथा : किरासन की ऐसी कमी हुई है कि हम लोग रोज घण्टा दो घंटे मार-मारे फिरें तब कहीं चौताई है.... पीने के पानी की अलग समस्या है-पूरी सुबह हमारी औरतें नल पर ही रहती हैं।"[1]

'आदमी जो मछुआरा नहीं था' 'मृणाल पाण्डे' का लोक कथा से प्रभावित है। लेखिका ने मछुआरा से मछली रानी से तीन वर माँगे जाने की पुरानी कथा को एक दम ताज़ा सामाजिक, आर्थिक संदर्भों में जाँचा है। लेखिका ने इस रचना का पूरा घटना-लोक और पात्र अति परिचित होने की भयावहता लिए हैं तो यह अनायास नहीं, और नही यह बात कि उन पात्रों के विकास और बाहरी जीवन का नाल अनिवार्यतः उनके घर के अन्धेरे से ही जुड़ा हुआ है। नन्ददुलारे और उसके परिवार की त्रासदी के बुनियादी कारणों को जाने-समझे बिना आगे बढ़ना भी मुमकिन नहीं है। हम देखते हैं कि पहले अंक के दूसरे दृश्य के अन्त में 'नन्ददुलारे का काम हो गया है' यानी नाटक अंतिम प्रदर्शनों तक पहुँचते-पहुँचते अभिनय के स्तर पर आरंभिक प्रदर्शनों के मुकाबले काफी बेहतर और अपेक्षा कृत अधिक प्रभाव शाली हो गया था। नाटक में लगभग सभी पात्र समकालीन होते हुए भी जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं का सामना करते हैं। संघर्ष के समय समकालीन व्यक्ति की तरह टूटते हैं रोते हैं और भाग जाते हैं। यथा : पर परिवारों से ही बह-बह कर बाहर भी जाता है, जो धीरे धीरे जड़ों को कुतर खाता है।"[2]

---

[1] मौदूजा हालात के देखते हुए - पृ -37

[2] आदमी जो मछुआरा नहीं था - पृ -22

मृदुला बिहारी ने 'अंधेरे से आगे' में जिन पाँच नाटकों का संकलन किया गया है उनके नाम हैं – 'भँवर', 'तीसरे रास्ते का राही', 'वे पाँच शब्द', 'देहरी' और 'अंधेरे से आगे'। इन सभी नाटकों के सभी पात्र सहज मानवीय चरित्र हैं। इन नाटकों के केन्द्र में नारी है। ये नाटक नारी-मन के विभिन्न पक्षों का उद्‌घाटन करते हैं। नारी की संवेदशीलता, उसकी दृष्टि, उसका व्यवहार, ज्ञान और कर्म का क्षेत्र अपना अलग ही होता है। उसकी समस्याएँ कई अर्थों में पुरुषवर्ग की समस्याओं से भिन्न होती हैं। इन नाटकों के मुख्य नारी पात्र - हीरा, रंजना, जानकी, माया और अजंना के व्यवहारिक जीवन में यही सब घटित होता है।

नाटक में दृश्य-स्थान-स्थान पर कालन्तर का परिवर्तन दिखाने के लिए छोटे से परिवर्तन के बाद एक ही स्टेज पर पूरा नाटक मंचित किया गया है। इस प्रकार नाटक का मंचन करने केलिए रंगमंच की परेशानी नहीं उठानी पड़ती है। कथानक में संक्षिप्तता के साथ ही साथ इसमें रोचकता है। प्रत्येक घटना क्रम के साथ दर्शकों की उत्सुकता बनी रहती है। उत्सुकता जगाए रखने में जो साहित्यकार जितना अधिक सफल होता है उतना ही प्रभावशाली उसकी रचना होती है। कम पात्र होने के कारण इसका अभिनय करने के लिए पात्रों का चयन करने में असुविधा नहीं होती। नाटक में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है वह परिस्थिति और समय का बोध कराने के लिए है। इस प्रकार उपर्युक्त नाटक अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से सफल रचना है। यथा : किसे जगा रही हैं आप लोग?..... नारी जाति को.......।"[1]

'मंदाक्रान्ता' मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखिति विंध्या के अंचल का जीवन चित्रण करने वाला नाटक है। मैत्रेयी ने इस नाटक में सोनपुरा तथा श्यामली गाँव के चित्रण के माध्यम से नारी के संघर्ष की कभी न ख़त्म होने वाली कहानी प्रस्तुत की है। नाटक में चित्रित नारी पात्र किसी न किसी समस्या से संघर्षरत है। नाटक के केन्द्र में मंदा नामक एक लड़की गाँव के अस्पताल में डॉक्टर लाने का प्रयास करती है।

[1] अँधेरे से आगे - पृ- 25

अंत में उसे यह समझा दिया जाता है कि जब तक वह इन अफ़सरों को घूस नहीं देगी तब तक काम पूर्ण होना असंभव है।

नाटक में एक के बाद एक दृश्य बदलते रहते हैं। पात्रों की उम्र, वेशभूषा, भाव भंगिमाएँ तथा नाटक की प्रकाश योजना के संकेत यथा स्थान स्वयं नाटककार कर देती है। इसलिए निर्देशक को विशेष आयोजन या चिंतन के ज़रूरत नहीं पड़ती है। नाटककार की सूचनाओं की मदद से उसे सरलता हो जाती है, जैसे - "गाँव का विकास हमको स्वयं मिलकर करना है, आख़िर सरकार क्या है हम लोग ही तो बनाते हैं सरकार, और अगर हम सरकार बना सकते हैं तो अपने गाँव की हालत क्यों नहीं सुधार सकते हमारे गाँव कुम्हार की मिट्टी जैसे हैं। हम जैसा चाहे उन्हें गढ़ सकते हैं।"[1]

नाटक में सभी पात्रों अभिनय का यथा उचित अवसर प्राप्त होता है। क्यों कि एक ही समय पर चार से अधिक पात्र मंच पर नहीं आते। नाटक में विवाह, यात्रा, मृत्यु आदि अमंचनीय प्रसंगों को कुशलता पूर्वक संवादों के माध्यम से साकार किया गया है। इसलिए रंगमंच और अभिनय के अनुकूल रंगनिर्देश पाये गये हैं। इस नाटक में अभिनय के भेदों का अपूर्व संयोजन पाया गया है, जो उनके नाटक की सफलता का रहस्य है। कहा जा सकता है कि नाटक अभिनय और रंगमंच के दृष्टि से निर्दोष हैं।

अतः जहाँ तक समकालीन महिला नाटकों में अभिनय की परिकल्पना का प्रश्न है तो निश्चित ही यहाँ अभिनय की यथार्थ शैली से ओत-प्रोत पात्रों की रचना हुई है। जहाँ तक रंगमंच का सवाल है....वहाँ नेमिजी की बात सही है कि हमारे यहाँ अभिनय की कोई पुष्ट परम्परा का विकास नहीं हो पाया।

---

[1] मंदाक्रान्ता - पृ-70

7.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में ध्वनि एवं संगीत योजना

आधुनिक युग में विज्ञान और तकनालॉजी के विकास ने रंगमंच को भी अनेक ऐसी तकनीकी सुविधाएँ प्रदान की हैं जिनके उपयोग से रंगमंच पहले से अधिक समर्थ, तकनीकी और प्रभावपूर्ण हुआ है। बिजली के आविष्कार ने ध्वनि, प्रकाश के क्षेत्र में रंगमंच को अत्यधिक आधुनिक बना दिया है। समकालीन महिला नाटककारों के नाटकों में इन तकनीकी सुविधाओं का सृजनात्मक प्रयोग किया गया है। यहाँ हम ध्वनि से संबंधित पक्षों की चर्चा करेंगे।

7.1.ध्वनि योजना

आधुनिक नाटकों में नाटक को अधिक प्रभावशाली बनाने, भावों को उभारने, नाट्यानुभूति को जीवन सादृश बनाने के लिए ध्वनि-संयोजन का सहारा लिया जाता है। पारसी रंगमंच में तकनीकी सुविधाएँ न होने के कारण ध्वनि-संयोजना की संभावनाएँ भी सीमित थी। लेकिन जितनी संभावनाएँ थीं भी, उनका भी सृजनात्मक उपयोग उस युग में नहीं हुआ। आधुनिक युग में नये ध्वनि उपकरणों का विकास हुआ, ध्वनि से प्रभाव सृष्टि करने और अमंचीय दृश्यों का मंचन करने का भी प्रयोग किया गया। नये-नये रंगमंच या रंगशालाओं के विकास और उपयोग से ध्वनि के प्रयोग के बारे में रंगकर्मियों की जानकारी बढ़ी।

आजकल ऐसे-ऐसे ध्वनि उपकरणों का विकास हो गया है जो सस्ते में उपलब्ध हो जाते हैं जिनसे हम हर प्रकार की ध्वनि का इस्तेमाल मंच पर आसानी से कर सकते हैं। टेप रिकार्डर, रेडियो, हर प्रकार के वाद्य यंत्र, टेलिफ़ोन, बिजली की घंटी तथा रिकार्ड की सहायता से ध्वनि प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। नाटकों में तूफ़ान, शोर, झंझावात, पशु-पक्षियों की आवाज़, पानी पीते हुए जानवर की आवाज़, वर्षा का शोर, वायुयान, रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी के चलने की आवाज़, युद्ध का शोर, गोली चलने की आवाज़ अर्थात् हर प्रकार की आवाज़ को मंच पर प्रस्तुत करना नये

ध्वनि उपकरणों की सहायता से संभव हो गया है। कुछ आवाज़ों को तो टेप रिकार्डर की सहायता से ही, टेप रिकार्डर चलाकर पैदा कर लिया जाता है। इनके अलावा अब ऐसे रिकार्ड भी उपलब्ध हैं जिनमें पहले से ही विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ रिकार्ड रहती हैं और जिस समय जैसी ध्वनि की आवश्यकता हो, उसे सुना दिया जाता है।

कुसुम कुमार जी ने अपने नाटकों में प्रभाव सृष्टि के लिए नेपथ्य में संगीत की ध्वनियों, चीखने, मरने की आवाज़ों, रोंगटे खड़े कर देने वाली चीत्कारों, तोपों की गड़गड़ाहट, गोलों की भयानक आवाज़ों का इस्तेमाल किया है। सुनो शेफाली में पक्षियों की आवाज़ें और पानी की आवाज़ों के वातावरण को गहराने के लिए संगीत की ध्वनियाँ हैं। उदाहरण के लिए - पक्षी को पुचकारता है।"[1] और लेकिन कुछ साल पहले वह इसी घाट के बाहर बैठकर अपने बाबा के साथ कीर्तन किया करता था।"[2] और मनन : क्या-क्या कहूँ रे मितवा

सुनाए तुझे कितनी ही गीत
सुर संगीत दो .....
मितवा...
क्या-क्या कहूँ रे मितवा
क्या-क्या कहूँ रे मितवा।"[3]

कुसुम कुमार ने अपने दूसरे और तीसरे नाटक में विभिन्न आवाज़ों, ध्वनियों द्वारा विभिन्न प्रभाव दिये हैं। जैसे 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में कहीं कहीं भीड़ की आवाज़ें और कहीं कहीं 'पवन' और 'पक्षियों' की आवाज़ों द्वारा नाटक में नेपथ्य

[1] सुनो शेफाली - 12
[2] सुनो शेफाली - 13
[3] सुनो शेफाली - 16

उभारे हैं। उदाहरण के लिए एक क्षण के बाद स्कूटर रुकने का स्वर। मेहता का प्रवेश....।"[1]

'रावणलीला' नाटक में विभिन्न ध्वनियों द्वारा युद्ध की विभीषिका, भय, आतंक की प्रभाव सृष्टि करने के रंग संकेत दिये हैं। नाटक के आरंभ में गाना बजना शुरू होता है। रावण का स्वगत करते समय मंच के दूसरी ओर बैठे हुए गायक मंडली हारमोनियम का करती है और शुरू होता है झंडा गीत-

नहीं रुकेगा झुकेगा झंडा रावणराज का
आगे आगे और बढ़ेगा झंडा रावणराज का...।"[2]

मन्नू भण्डारी ने 'बिना दीवारों के घर' नाटक प्रारंभ में ही घर के भीतर रियाज़ करती हुई नायिका शोभा को दर्शकों को परिचय करा देती है। जैसे - शोभा भीतर से गाने का स्वर पूर्ववत आता रहता है। आवाज़ को सप्तम-स्वर पर ले जाकर) श्रीमती शोभा देवा जी...भीतर गाने का स्वर बन्द हो जाता है।"[3] और कहीं कहीं टेलिफोन की आवाज़ और कहीं कहीं 'दरवाज़े खटखटाते' समय आवाज़ का कई संदर्भों में लेखिका ने निर्देश दिया है। जैसे - भीतर से बोलने की आवाज़ें आती हैं। धीरे धीरे रोशनी कम हो जाती है, आवाज़ें मन्द पड़ती जाती हैं।"[4]

मृदुला गर्ग जी का 'एक और अजनबी' नाटक के शुरुआत में ही परदे के पीछे से गाने का स्वर उभरता है और कुछ देर के बाद पर्दा गिरता है। नाटक में कई संदर्भों में नाचते हुए लोगों को और प्रेरित करने के लिए कई वाद्य उपकरणों का इस्तेमाल किया गया है। कहीं कहीं मंच के पीछे से सम्मिलित आवाज़ें द्वारा भी नाटक का में प्रभावित किया है। जैसे - शानी अकेली पिछले परदे के पास खड़ी, उसके

---

[1] पवन चतुर्वेदी का डायरी - 13
[2] रावणलीला- नटरंग - पृ-34
[3] बिना दीवारों के घर - पृ-11
[4] बिना दीवारों के घर - पृ 85

पीछे से आ रही स्त्री-पुरुष की सम्मिलित हँसी सुन रही है।"[1] तीसरे दृश्य में मंच पर शानी की माँ के घर का आँगन दिखाई देता है। पीछे से रुई धुनवा लो की आवाज़ सुनाई देती है।"[2]

मृदुला गर्ग जी का दूसरा नाटक 'जादू का कालीन' नाटक में कहीं कहीं गाँव के पशु पक्षियों की आवाजें और कहीं कहीं सम्मिलित स्त्री-पुरुष की आवजें सुनाई देती हैं। जैसे - मंच के पीछे 'गायों के रँभाने' की आवाज़ के साथ पुरुष आगे आते हैं। स्त्रियाँ पीछे बैठ जाती है.....।"[3]

मृदुला बिहारी ने अपने नाटक 'देहरी' में वाद्य यंत्रों की कभी एकल और कभी जुगल बंदी द्वारा विभिन्न प्रभाव दिये हैं। कहीं कहीं टेलिफ़ोन का आवाज़ और कहीं कहीं पशु पक्षियों की आवाज़ को लेखिका ने बहुत सहज रूप से इस्तेमाल किया है। उदाहरण के लिए - रात का समय है। बाहर बरसात हो रही है। चेतन अपने.....।"[4] बरसात की आवाज़ बहुत सहज रूप से प्रयोग की गयी है। दृश्य के प्रारंभ में चिड़ियों की चहचहाट की ध्वनि को बहुत ही सहज रूप से इस्तेमाल किया गया है। उदा - सूर्योदय हो रहा है। चिड़ियों की चहचहाट के साथ हीरा की आँख खुलती है।"[5]

मृदुला बिहारी के अपने दूसरे नाटक भँवर में ज़्यादा समय टेप रिकार्डर की आवाज़ का इस्तेमाल किया गया है। कहीं कहीं सम्मिलित स्त्री-पुरुषों की आवाज़ और कहीं कहीं कॉल बेल बजती हुई आवाज़ का प्रयोग किया गया है। जैसे बैग से बिस्कुट निकाल कर देती है। तभी कॉल बेल बजती है।"[6] और गाना टेप होने के बाद दरवाज़े पर घंटी बजती है।"[7]

---

[1] एक और अजनबी - 29
[2] एक और अजनबी - 37
[3] जादू का कालीन -पृ- 59
[4] देहरा-112
[5] देहरा-98
[6] भँवर-13
[7] भँवर-15

मृदुला बिहारी ने अपने तीसरी नाटक 'तीसरे रास्ते का राही' में मंगल ध्वनि का प्रयोग किया है। और कहीं कहीं स्कूल की घण्टी बजने की आवाज़ का इस्तेमाल किया गया है। जैसे - टिफ़िन की घंटी बजती है। सारे बच्चे शोर मचाते भागते हैं।"[1] और मंगल ध्वनि हो रही है, फूल बरस रहे हैं।"[2]

मृदुला बिहारी के पाँचों नाटक में मंच पर प्रभाव सृष्टि एवं वातावरण निर्माण के लिए ध्वनि का इस्तेमाल किया गया है। संगीत से विदेशी वातावरण की सृष्टि की गई है।

मृणाल पाण्डे का 'चोर निकल के भागा' अंक एक के दृश्य दो में दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ का इस्तेमाल किया है। बीच बीच में टेलिफोन के बजने की आवाज़ और कहीं कहीं जेट की ध्वनि को इस्तेमाल किया गया है। जैसे - घड़ी के सामने ब्लेड रखता है- बत्ती ग़ुल होती है- सुपर सॉनिक जेट की तेज ध्वनि-फिर धीमे-धीमे ध्वनि लुप्त होती है।"[3]

मृणाल पाण्डे का 'आदमी मछुआरा नहीं था' नाटक में बिजली के गरजने की आवाज़ को बहुत सहज रूप से इस्तेमाल किया गया है। कहीं कहीं घंटी के बजने की आवाज़ का प्रयोग किया गया है। कहीं कहीं पानी की ध्वनियाँ भी प्रयोग की गयी हैं। जैसे - प्रकाश कम होता जाता है।...पानी की ध्वनियाँ तेज होती हैं।"[4] और चुप्पी बिजली गरजती है। भीतर से बच्चे की भयभीत आवाज़।"[5] और घंटी बजती है।"[6]

मैत्रेयी पुष्पा के नाटक 'मंदाक्रान्ता' में संगीत का उपयोग दृश्य योजना के लिए भी किया गया है। आज कल ऐसे ऐसे ध्वनि उपकरणों का विकास हो गया है जो सस्ते में उपलब्ध हो जाते हैं जिनसे हम हर प्रकार की ध्वनियों का इस्तेमाल मंच

---

[1] तीसरे रास्ते का राही - 58
[2] तीसरे रास्ते का राही - 50
[3] चोर निकल के भागा - 57
[4] आदमी मछुआरा नहीं था - 62
[5] आदमी मछुआरा नहीं था - 14
[6] आदमी मछुआरा नहीं था - 16

पर आसानी से कर सकते हैं। टेप रिकार्डर, रेडियो, हर प्रकार के वाद्य यंत्र, टेलिफ़ोन, बिजली की घण्टी तथा रिकार्ड की सहायता से ध्वनि प्रभाव उत्पन्न किया गया है। जैसे गाने की आवाज़..।"[1] माइक पर गाँव और बैलगाड़ी के चलने का स्वर सुनाई दे रहा है।"[2].......बाहर चौक में कीर्तन हो रहा है। आवाज़ें आती हैं। बऊ झाँककर देखती है।"[3]

इस प्रकार समकालीन हिन्दी महिला नाट्यों में ध्वनि ने रंगमंच को अत्यधिक आधुनिक बना दिया है। समकालीन नाटकों में इन तकनीकी सुविधाओं का सृजनात्मक प्रयोग किया गया है। समकालीन हिन्दी महिला नाट्यों में संगीत का उपयोग दृश्य के समाप्त होने पर संगीत का विधान कर दूसरे दृश्य के आरंभ को एक पद्धति के रूप में प्रयोग किया गया है। कुछ नाटकों में लोकसंगीत की समूहगत पद्धति को भी अपनाया गया है। कई नाटकों में समूहगान के लिए गायक वृंद या गायन मंडली का ही विधान रखा गया है।

ध्वनि के सर्जनात्मक इस्तेमाल से मंच पर ऐसे दृश्यों को भी मंचित किया गया है जैसे तूफ़ान झंझावात, युद्ध आदि जिसे मंच पर दिखाना संभव नहीं होता था।

7.2.संगीत योजना

संगीत आरंभ से ही नाटक और रंगमंच का लगभग एक अनिवार्य अंग रहा है। संस्कृत नाटकों में यह गीत और नृत्य के रूप में दिखाई देता है किन्तु लोकनाट्यों की तो यह आत्मा ही है। नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में - मूलतः ये सारे के सारे नाट्य रूप इतने संगीतात्मक हैं कि कभी-कभी और कुछ-कुछ तो एकदम संगीत नाटक या संगीतक तक कहला सकते हैं। प्रारंभ से अंत तक मंच पर बैठे हुए वादक प्रत्येक पारम्परिक नाट्य के अनिवार्य अंग हैं। संगीत और नृत्य का यह महत्व परवर्ती

[1] मंदाक्रान्ता - 7
[2] मंदाक्रान्ता -12
[3] मंदाक्रान्ता - 21

संस्कृत नाट्य परम्परा का विस्तार ही है, जो साधारण दर्शक-वर्ग में उसे अधिक-से अधिक लोकप्रिय बनाने के उद्धेश्य से हुआ होगा।"[1]

थिएटर में भी संगीत का प्रयोग अनिवार्य था किन्तु वहाँ यह कभी-कभी फूहड़ता की सीमा लांघता हुआ भी दिखाई देता है। भारतेन्दु हरिचन्द्र के नाटकों में यह असंख्य लोकसंगीत का इस्तेमाल हुआ है। किन्तु समकालीन हिन्दी महिला नाटकों में संगीत की सर्जनात्मक और विशिष्ट बहुआयामी किन्तु भिन्न भूमिका रही है। भिन्न इस अर्थ में कि यथार्थवाद और अन्य पश्चिमी नाट्यधाराओं के प्रभावस्वरूप आधुनिक युग में संगीत की नाट्य में वह प्रधानता नहीं रही जो पहले थी। संगीत का प्रयोग आधुनिक नाटकों में उस रूप में तो कम हुआ है जिस रूप में यह लोकनाट्यों या पारसी थिएटर या संस्कृत नाटक में था, किन्तु इसके सर्जनात्मक प्रयोग की संभावनाएँ भी उजागर हुई हैं।

समकालीन हिन्दी महिला नाटकों में से जिन नाटकों में लोकनाट्य रूपों का इस्तेमाल किया गया है, उनमें लोकसंगीत की समूहगान पद्धति को भी अपनाया गया है। कई नाटकों में समूहगान के लिए गायक वृंद या गायन मंडली का ही विधान रखा गया है जैसे कुसुम कुमार जी का 'रावणलीला' में बैठी गायन मंडली जो अन्य वाद्यों का प्रयोग बहुत कम, हारमोनियम का ज़्यादा करती है शुरू होती है। झंडा गीत –

"नहीं रुकेगा नहीं झुकेगा झंडा रावणराज का
आगे आगे और बढ़ेगा झंडा रावणराज का
यह झंडा, यह झंडा।
पाप ताप की शान बढ़ाकर
होश गवांकर दोष लगाकर
सबको देगा विष का दान झंडा रावणराज का
यह झंडा, यह झंडा।

[1] नेमिचन्द्र जैन - रंगदर्शन - पृ-109

....
....
आशाओं डगमग होती हैं तब
सभी तरह मतभेद बढ़कर
भूख तृषा छित रायेगा यह झंडा रावणराज का
यह झंडा, झंडा।"[1]

समकालीन हिन्दी नाटकों में संगीत का उपयोग दृश्य योजना के लिए भी किया गया है। एक दृश्य के समाप्त होने पर संगीत का विधान कर दूसरे दृश्य का आरंभ एक पद्धति है। जैसे – 'एक और अजनबी' में शानी के सुहाग पर बूढ़ी धुने के पास बैठ जाती है और धुनाई के सुर पर अपनी विकृत आवाज़ में सुहाग गाने लगती है -

"लाडो हमारी राजरानी
चाँद तारा वर माँगती है
ससुर हों जैसे राजा दसरथ
सास कौसल्या,
बन्ना बाल ब्रह्मचारी माँगती है
बन्ना बाल ब्रह्मचारी माँगती है।"[2]

समकालीन हिन्दी महिला नाटकों में संगीत का उपयोग दृश्य योजना के लिए भी किया गया है। एक दृश्य के समाप्त होने पर संगीत का विधान कर दूसरे दृश्य का आरंभ एक पद्धति है। जैसे - कुसुम कुमार जी के रावणलीला में हनुमान का पहरेदार की पिटाई करना। पहरेदार का भी हनुमान की टांग खींचना। हनुमान का अपनी टांग छुड़वाकर पहरेदार को चित करके लँगड़ाते हुए भाग जाना। अँधेरा। धीरे धीरे प्रकाश....

---
[1] रावणलीला - पृ 34
[2] एक ओर अजनबी - 20

"चलो तुम पवन निराली चाल
रूप भयंकर धारण करके करो लंका पामाल
चलो तुम पवन
चलो तुम पवन निराली चाल।
....
....
करो तात प्रतिपाल
चलो तुम पवन
चलो तुम पवन निराली चाल।।[1]

8.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में रंगदीपन का स्वरूप

नाट्यकला में रंगदीपन या प्रकाश योजना की महत्वपूर्ण भूमिका है। जब प्रकाश योजना की तकनीकी सुविधाएँ नहीं थीं और बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था, तब भी शाम या रात को या बंद प्रेक्षागृहों में नाट्य प्रस्तुति के समय मोमबत्ती, तेल या अन्य प्रकार से प्रकाश करने की व्यवस्था की जाती थी। लेकिन तब प्रकाश का सिर्फ़ एक ही उद्धेश्य होता था मंच को प्रकाशित करना।

प्रकाश के सर्जनात्मक उपयोग द्वारा नाट्यकला अधिक कलात्मक हुई है। विश्वभावन देवलिया का कथन है कि - वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही आधुनिक विद्युत यंत्रों के आविष्कारों से प्रकाश को नाट्य में नियंत्रित, नियोजित केन्द्रित और प्रवाहित करने की विविध विशिष्ट विधियों ने नाट्य अभिनय के प्रभाव तथा उसके माध्यम, गति एवं कार्य-व्यापार को संतुलित एवं व्यंजित करने में अभूतपूर्व योग प्रदान किया है।"[2]

---

[1] रावणलीला - पृ- 28-29
[2] डॉ. विश्वभावन देवनिया-नाट्य प्रस्तुतिकरण - स्वरूप और प्रक्रिया-पृ-225

8.1 .प्रकाश योजना

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य और रंगमंच में प्रकाश योजना के बारे में अभी तक कोई नियंबद्ध पद्धति नहीं हो पायी है। आज से तीन बरस पहले हमारे सामने व्यवस्था की जो पद्धतियाँ थीं वे ज़्यादातर जो कुछ हाथ पड़ जाती उसी से काम चलाने पर आधारित थीं। आज भी हमारे पास मंच की प्रकाश-व्यवस्था के लिए जो साजो-सामान है वह ऐसा है जो दूसरे देशों में बीस बरस पहले काम आता था। पिछले पच्चीस बरस में दिल्ली में नाटकों को लेकर तो बहुत परीक्षा-निरीक्षा होती रही है, पर प्रकाश योजना के बारे में जो कुछ हुआ है उसके बारे में अधिक-से-अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि यथासंभव हर कोशिश की गयी है।

प्रकाश योजना के कई पहलू हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण पक्षों की चर्चा यहाँ आवश्यक है। सबसे प्राथमिक और महत्वपूर्ण बात है कि प्रकाश योजना का कार्य चाहे रंगमंच पर विशेष तकनीकी सुविधाओं के द्वारा होता हो, इसका मूल बीज नाटक में ही छिपा होता है प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में। नाटककार नाटक की स्थितियों, घटनाओं, पात्रों के मानसिक भावनात्मक उतार-चढ़ाव को अभिव्यक्ति देते समय ऐसे रंग संकेत देता चलता है जिससे निर्देशक प्रकाश के इस्तेमाल के बारे में जानकारी हासिल कर ले कि कहाँ पर प्रकाश का इस्तेमाल किया जाता है। इसके बाद का सारा कार्य निर्देशक द्वारा ही किया जाता है।

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य और रंगमंच में प्रकाश योजना दृश्य या अंक विभाजन के स्तर पर प्रयोगशीलता अपनाई गई। ऐसे नाटक लिखे गए जिनमें या तो दृश्य ही दृश्य हैं, अंक विभाजन नहीं है, या सिर्फ़ दो ही अंक हैं, अथवा नाटक को पूर्वार्ध एवं उत्तरार्थ में बाँटा गया है। दृश्य की समाप्ति पर और दूसरे दृश्य के आरंभ होने के बीच यदि मंच-सज्जा में अधिक परिवर्तन न करना हो तो निर्देशक अक्सर प्रकाश को पूरी तरह मंद करके धीरे-धीरे फिर तेज कर देते हैं। उदाहरण के लिए - शोभा चुपचाप चाय के बरतन उठाकर अन्दर चली जाती है। अजित एक नई सिगरेट

सुलगकर सोफ़े पर लेट-सा जाता है। सिगरेट का धुआँ उसके चारों ओर छाने लगता है। धीरे धीरे अंधकार हो जाता है।”[1]

हालाँकि दृश्य या अंक विभाजन के लिए प्रकाश का इस्तेमाल निर्देशक ही करता है किन्तु इसके स्पष्ट या परोक्ष निर्देश नाटक में निहित रहते हैं। अधिक सजग या रंग-निर्देशों के प्रति अधिक झुकाव रखने वाले नाटककार दृश्य-अंक परिवर्तन के लिए प्रकाश के उपयोग के स्पष्ट निर्देश नाटक में देते हैं। जैसे समकालीन महिला नाटकों में अंक विभाजन तो नहीं है किन्तु पूरा नाटक दृश्यों में बाटा गया है। यहाँ नाटककार ने प्रत्येक दृश्य की समाप्ति और दूसरे दृश्य के आरंभ में प्रकाश का विधान इस्तेमाल किया है। तभी दृश्यों के अंत में धीरे धीरे अँधेरा हो जाता है और अगले दृश्य के प्रारंभ में प्रकाश होता रहता है। जैसे - कुसुम कुमार जी का ‘रावणलीला’ नाटक में दूसरे दृश्य के प्रारंभ में ...मंच का अग्रभाग प्रकाशित है।”[2] इनका अपना अगला नाटक ‘सुनो शेफाली’ में भी इसी प्रकार की प्रकाश योजना है जैसे प्रथम दृश्य समाप्ति के बाद लेखिका ने ‘अँधेरा”[3] शब्द को इस्तेमाल किया गया है। दूसरा दृश्य के प्रारंभ में घाट पर प्रकाश...”[4] इस प्रकार पूरे नाटक में दृश्य आरंभ और समाप्ति के दौरान प्रत्येक प्रकाश योजना का संकेत दिया गया है।

8.2.दृश्य योजना

पुराने समय में नाटकों में दृश्यबंध को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। परन्तु आधुनिक युग के नाटककारों में दृश्यात्मक परिकल्पना अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में स्वीकार की गयी है। नाटककार की दृश्यात्मक परिकल्पना मन के अमूर्त रंगमंच से उतर कर प्रदर्शन के समय मंच पर मूर्त रूप ग्रहण करती है। अतः नाटक में जिस युग का चित्रण है, उस युग के वातावरण और परिवेश का निर्माण करने के

[1] बिना दीवारों के घर - 32
[2] रावणलीला - 34
[3] सुनो शेफाली - 20
[4] सुनो शेफाली - 20

लिए आधुनिक नाटककार दृश्यबंध का प्रयोग करते हैं। गोविन्द चातक के मतानुसार - किसी भी प्रस्तुति की दृश्य -सज्जा नाट्य-कृति के अनुरूप होने को बाध्य हैं।"[1] वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता के अनुसार - किसी भी नाटक का वस्तु-विन्यास अंक विभाजन तथा दृश्य-योजना अथवा दृश्यबंध की संकल्पना पर निर्भर करता है।"[2] नेमिचन्द्र जैन यह मानकर चले हैं कि प्रत्येक नाटक का एक दृश्य-परिवेश होता है जिसमें नाटककार अपने पात्रों को जीते और कार्य करता दिखाता है। उनका यह कथन समीचीन है कि यह दृश्य तत्व ही नाटक का अपना वैशिष्ट्य है जो उसे कलात्मक अभिव्यक्ति की अन्य विधाओं से अलग करता है।"[3]

समकालीन हिन्दी महिला नाटक में दृश्य रचना निर्देशक की कल्पना और सर्जनात्मकता के द्वारा ही आकार ग्रहण कर सकी है। नाटक और रंगमंच की दृश्य रचना को लेकर समकालीन महिला लेखिकाएँ नये-नये प्रयोग इस्तेमाल कर रही हैं। इस प्रयोगशीलता में एक आयाम दृश्य रचना में प्रकाश की भूमिका भी है।

कुसुम कुमार जी का 'सुनो शेफाली' नाटक में अंक विभाजन नहीं किया गया है केवल दृश्यों में विभाजित किया गया है। पूरे नाटक में छः दृश्य हैं। एक एक दृश्य अपने आप में महत्वपूर्ण माना जाता है। पहला दृश्य यमुना के घाट का है जिस में पात्र का परिचय देने का प्रयत्न किया गया है। दूसरा दृश्य है नायक बकुल और नायिका शेफाली का वार्तालाप और सत्यदेव दीक्षित और मनन के बीच किये गये वार्तालाप को बहुत गंभीरता से प्रस्तुत करना। इस प्रकार पूरे छः दृश्यों के साथ नाटक सफल होता है। दृश्य प्रारंभ और समाप्त के बीच प्रकाश योजना को अपनाया गया है। दृश्य समाप्त के समय 'अँधेरा' शब्द का इस्तेमाल किया गया है और दृश्य प्रारंभ के लिए 'प्रकाश' शब्द का जगह जगह पर संकेत दिया गया है।

---

[1] गोविन्द चातक, रंगमंच : कला और दृष्टि - 50

[2] वीरेन्द्र मेंगदीरत्त - नटरंग-अंक-32-पृ.64

[3] नेमिचन्द्र जैन - रंगदर्शन - 30

इनका अगला नाटक है 'रावणलीला' जो दो अंकों में विभाजित किया गया है। एक-एक अंक दृश्यों में विभाजित करके पूरे नाटक को रंगमंच की दृष्टि से सफल करने के लिए बहुत कोशिश की यगी है। पहला अंक का पहला दृश्य शुरू होता है 'रामलीला की तैयारी हो चुकी है।' यहाँ पर भी नाटक के दृश्य पात्रों के संवाद योजना से संबंध रूपायित किया गया है। प्रकाश योजना के फल स्वरूप अंक और अंक के साथ किये गये दृश्यों का भी संकेत किया गया है। कहीं कहीं खुद लेखिका ने संकेत करते हुए कहा है कि – 'प्रकाश मद्धिम पर्दा गिरता है'। और दृश्य आरंभ के लिए संकेत दिया गया है कि – 'मंच पर उजाला है'। जैसे संकेतों के द्वारा दर्शक मंच पर प्रदर्शित कथन को आसानी से ग्रहण कर सकते हैं।

इनके तीसरा नाटक है 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में भी लेखिका ने 'अँधेरा' और 'उजाला' शब्दों की सहायता से दृश्य को बदलने की चेष्टा करायी है। लेकिन पूरा नाटक दो भागों में विभाजित किया गया है, दृश्य एक भी नहीं है। बीच बीच में संकेत दिया गया है कि पात्र बदलते हुए वेशभूषा के माध्यम से मंच पर होने वाले प्रदर्शन को दर्शक समझ सके। नाटक में पात्र बहुत कम होने के कारण भी दृश्य बदलने की चेष्टा नहीं की गयी है। लेकिन मंच पर केवल दो ही पात्र को प्रस्तुत कराया गया है।

मन्नू भण्डारी का 'बिना दीवारों के घर' नाटक को पूरे तीन अंकों में विभाजित किया गया है। एक-एक अंक कम से कम दो या तीन दृश्यों के साथ विभाजित किया गया है। अंक और दृश्यों के बदलने का संकेत 'अंधकार' और 'प्रकाश' के माध्यम से कराया है। पहला अंक और दूसरा अंक के बीच कुछ समय का अंतराल को दिखाने की चेष्टा की है। पूरे नाटक को ढेढ़ घंटे खेलने का समय लगता है। नाटक

में पात्रों को बदलते समय दृश्य बदलने की चेष्टा की गयी है। लेखिका ने कथन को बहुत सहज रूप से मंचन कराने के लिए अंक और दृश्य का सहारा लिया है।

मृदुला गर्ग का 'एक और अजनबी' दो अंकों वाला नाटक हैं। पहला अंक चार दृश्यों में विभाजित किया गया है दूसरा अंक तीन दृश्यों में विभाजित किया गया है। दृश्य प्रारंभ और समाप्ति के लिए हलका सा नीले रंग से मिले हुए प्रकाश को इस्तेमाल किया गया है।

इनका दूसरा नाटक 'जादू का कालीन' दो अंकों वाला नाटक है। एक एक अंक दृश्यों में विभाजित किया गया है। दृश्य समाप्त और प्रारंभ के लिए 'पर्दा उठने' का और 'पर्दा गिरने' की पद्धति को अपनाया गया है और प्रकाश लुप्त और प्रकाश वापस जैसे शब्दों के सहारे से दृश्य बदलने का संकेत दिया गया है।

मृदुला बिहारी का 'तीसरे रास्ते का राह' लगभग बीस दृश्यों का नाटक है। इस नाटक में संवाद बहुत छोटे छोटे होने के कारण दृश्य जल्दी समाप्त होता रहता है। इस नाटक में बहुत छोटा दृश्य इस प्रकार है। जिस स्थान पर अमित का पत्र आता है, वहाँ अंजना बार-बार जाती है। लेकिन वहाँ पत्र नहीं मिलता। इससे अंजना परेशान हो उठती है।"[1] इस प्रसंग के साथ दृश्य बदलता है। लेकिन दृश्य बदलने का संकेत यहाँ नहीं दिया गया है। क्योंकि नाटक में पात्र बहुत कम नज़र आते हैं। मंच पर पात्र बदलने का चेष्टा आसानी से दर्शक पहचान सकते हैं।

इनका दूसरा नाटक 'अँधेरे से आगे' में भी कम से कम दस दृश्यों से बना हुआ नाटक है। इसमें भी लेखिका ने कहीं भी दृश्य बदलने का संकेत नहीं दिया है। प्रकाश योजना को यहाँ पर लगूँ नहीं किया है। पात्र को मंच पर अभिनय करते समय दृश्य बदलने का संकेत दर्शक को उनके कथन से मालूम पड़ जाता है।

---

[1] अँधेरा से आगे - 50

मृदुला बिहारी का 'भँवर', 'देहरी' और 'वे पाँच शब्द' में भी दृश्य बदलने का संकेत कहीं भी नहीं दिया गया है। लेकिन पात्र के मंच पर अभिनय करते समय निर्देशक जिस रास्ते पर नाटक को आगे बढ़ना चाहता है उसी रास्ते को थोड़ा विराम के साथ पुनः प्रारंभ करने की चेष्टा करता है। इसलिए नाटक में कहीं भी अंधकार, प्रकाश या उजाला जैसे शब्द को इस्तेमाल नहीं किया है। वह दृश्य इसलिए बदलता है जहाँ वेश-भूषा या मंच सज्जा बदलनी होती है। इसके अलावा कथन में कहीं भी रुकावट नहीं दिखाई देती है। यहाँ पर प्रकाश योजना को प्रत्यक्ष रूप से इस्तेमाल किये बिना नाटक मंचन की दृष्टि से सफल हुआ है।

मृणाल पाण्डे का 'मौजूदा हालात को देखते हुए', 'आदमी मछुआरा नहीं था', 'जो राम रचि राखा' और 'चोर निकल के भागा' नाटक अंक और दृश्य की दृष्टि से रचे हुए नाटक हैं। अंक और दृश्य बदलने की चेष्टा लेखिका ने नाटक में प्रत्यक्ष रूप से की है। दृश्य समापन में पर्दा गिरता है दृश्य आरंभ में पर्दा उठता है जैसे शब्दों को इस्तेमाल किया गया है। कही कहीं प्रकाश योजना का भी प्रयोग किया गया है जैसे - प्रकाश स्टेज के पृष्ठभाग में। लेकिन दृश्य समाप्त के संदर्भ में 'फेड आउट' जैसे शब्दों को भी प्रयोग किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा का 'मंदाक्रान्ता' नाटक में कम से कम पैंतालीस दृश्य बंधन किया गया है। दृश्य रचना बहुत गंभीरता से की गयी है। क्योंकि दृश्य रचना की उपलब्ध सुविधाओं में ही नाटक चलाया है। लेकिन ऐसी स्थिति में यदि लेखिका ने प्रकाश का कलात्मक, सर्जनात्मक और उपर्युक्त इस्तेमाल किया होता तो दृश्य रचना अधिक सार्थक और जीवंत हो उठती होगा। वास्तव में दृश्य रचना का अभिनेता, दर्शक और दृश्यबंध के साथ समन्वयात्मकता को ध्यान में रखकर ही प्रकाश की भूमिका का प्रयोग किया गया है। इन उदाहरणों के अतिरिक्त दृश्य रचना आदि में प्रकाश की भूमिका को कुछ अधिक महत्व दिया जाए तो नाटक को कलात्मक उपयोग द्वारा

नाटकीय अभिप्रेत के संदर्भ में अर्थगर्भित और प्रतीकात्मक बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में अपार संभावनाएँ हैं।

9.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में वेशभूषा और रूप सज्जा

रंगमंच के अन्य उपकरणों की तरह नाट्य में वेशभूषा और रूप सज्जा की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वेशभूषा जहाँ मंच पर एक वातावरण निर्मित करती है वहीं रूप सज्जा के साथ मिलकर यह मंच पर अभिनेताओं को पात्र की भूमिका में रूपांतरित करती है। नाट्यशास्त्र में भरत ने वेशभूषा और रूप सज्जा का समावेश आहार्य के नाम से किया है। वहाँ इसे रसानुभूति का विशेष साधन माना गाया है। भरत ने वेश रचना के लिए वस्त्र, आभूषण, माल्य, प्रतिशिर, केशविन्यास, अंग-रचना, अंग राग, अनुलेपन आदि का विवेचन किया है और सारे आहार्य में चरित्र के अनुरूप सामांजस्य पर बल दिया है और विभिन्न वय, जाति वर्ण स्तर योनि के आधार पर विभिन्न कोटि के वेश, रूप और रंग का निर्धारण उन्होंने उनकी भूमिकाओं, अवस्थाओं, प्रकृतियों आदि के अनुसार किया है।"[1] निस्संदेह वेशभूषा और रूप सज्जा नाट्य के महत्वपूर्ण उपकरण हैं जिनका उद्देश्य नाट्यानुभूति को अधिक प्रखर बनाकर प्रेक्षकों तक पहुँचाना होता है।

9.1 .वेश-भूषा

नाटक में वेशभूषा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए गोविंद जी लिखते हैं कि - नाटक में अभिनेता किसी वेशभूषा को किसी विशिष्ट भूमिका में अपने को समाहित करने के लिए करता है। ऐसी स्थिति में उसे पात्रानुकूल वेशभूषा धारण करनी पड़ती है और वह दर्शक पर अपेक्षित प्रभाव डालने में समर्थ हो, यह उसकी आवश्यक शर्त कही जा सकती है। इस रूप में वेशभूषा के चुनाव में पात्र की स्थिति, भावभूमि और मनोविज्ञान का मुख्य हाथ होता है। वेशभूषा में रंग का महत्व भी विशेष होता है,

[1] गोविंद चातक, रंगमंच : कला और दृष्टि - 58

किन्तु ऐसी स्थिति में प्रकाश योजना पर विशेष ध्यान देना ज़रूरी है क्यों कि कुछ रंग रंगीन प्रकाश योजना में भद्दे दिखाई देते हैं। वस्त्र सज्जा युग और पात्र के अनुरूप तो होनी चाहिए, उसकी छोटी-मोटी बारीकियाँ भी कथावस्तु, चरित्र आदि की अभिव्यक्ति में सहायक होती हैं, जैसे वस्त्रों का मैला, फटा हुआ, अलंकृत, ढील-ढाला या कसा हुआ होना।"[1]

रमेश राजहंस ने नाट्य में वस्त्र विन्यास करते समय मार्गदर्शी सिद्धांतों पर ध्यान देने की ज़रूरत पर बल दिया है। उनके अनुसार - पहला सिद्धांत तो यह है कि नाटक की कथा समय की जिस अवधि से संबोधित हो, परिधान और पहनावा उसके अनुरूप होना चाहिए। दूसरा सिद्धांत यह है कि परिधान को पात्र की उम्र के अनुसार होना चाहिए।.... तीसरा सिद्धांत यह है कि पहनावे को पात्र के अनुसार होना और सामाजिक स्थिति के अनुरूप होना चाहिए।...चौथा सिद्धांत यह है कि पोशाक से पात्र की राष्ट्रीयता की झलक मिलनी चाहिए।...पाँचवाँ सिद्धांत है कि पहनावे को पात्र के स्वभाव और व्यक्तित्व के अनुरूप होना चाहिए।"[2]

वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी वेश-रचना के गुणों की चर्चा हुए कहते है - नाट्य के संदर्भ में वेश-रचना का प्रथम गुण उसकी कलात्मकता है। दूसरा उसकी चरित्रानुकूलता, तीसरा रंग-परिवेश और मंच की पृष्ठभूमि से उसका तालमेल, चौथा वातावरण, देशकाल एवं घटनादि के स्वभाव से मेल, पाँचवाँ नाटक के अन्य पात्रों के साथ उसका सुरुचिपूर्ण तालमेल और छठा रंगमंच पर आयोजित प्रकाश व्यवस्था से ठीक-ठाक संबंध।"[3]

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने वेशभूषा के संदर्भ में नाटक के अर्थ और पात्रों के व्यक्तित्व, मानसिक दशा इत्यादि के अलावा वेशभूषा की दृश्यात्मकता, रंगमंच सज्जा दृश्यबंध में उपलब्ध उपकरणों, फ़र्नीचर इत्यादि के रंगों से वेशभूषा के

[1] गोविंद चातक, रंगमंच : कला और दृष्टि - 58
[2] रमेश राजहंस - नाट्य प्रस्तुति एक परिचय - 128-129
[3] डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी, नाटक के रंगमंचीय प्रतिमान – 174

रंगों का मेल आदि बातों का ध्यान उन्होंने किया है। उदाहरण के लिए 'बिना दीवारों के घर' को लें, जो आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार का जीता-जागता चित्र है, नाटक के सभी पात्र बहुत ही जाने पहचाने लगते हैं। नाटक की नायिका शोभा साधारण साड़ी पहनकर स्टेज पर आती है। और अजित भी एक साधारण दफ़्तर में काम करता है। साधारण सा कपड़े पहनता है। इसलिए वेशभूषा पात्र के स्वभाव, वर्ग, आयु, समाज में स्थान, उसकी व्यक्तिगत पसंद, उसकी मनोदशा और उसके चरित्र को उभारने में मदद करते हैं। इस प्रकार समकालीन महिला नाटककारों के नाटकों में जहाँ वेशभूषा का प्रश्न है वहाँ पात्र से संबंधित सभी विषयों को दृष्टि में रखकर निर्देशक ने प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त गुणों, सिद्धांतों और वेशभूषा के सामान्य महत्व के अतिरिक्त समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में वेशभूषा के बारे में प्रयोगशील प्रवृत्ति बढ़ी है और वेशभूषा को इसके सामान्य प्रयोग से अधिक विशिष्ट भूमिका के रूप में पहचाना गया है।

इस प्रकार जहाँ आवश्यक हुआ है या जहाँ लेखिका पात्र को किसी विशेष अर्थ में प्रस्तुत करना चाहती है वहीं उसने वेशभूषा के निर्देश दिये हैं। बाक़ी सभी पात्रों की वेशभूषा का संयोजन उन्होंने निर्देशक पर छोड़ दिया है।

9.2.रूप सज्जा

वस्त्र विन्यास की तरह रूप सज्जा भी नाट्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। पारसी थिएटर में तथा हमारे लोक नाट्य रूपों में रूप सज्जा की महिला से ही पुरुष स्त्री पात्रों की भूमिका निभाते रहे हैं। लेकिन समकालीन हिन्दी महिला नाटकों में रूप सज्जा की भूमिका इतनी अतिरंजित नहीं है। यहाँ नाटक को अधिक जीवन सदृश्य बनाने तथा पात्रों को चरित्रों का रूप देने के लिए रूप सज्जा का इस्तेमाल किया गया है। रमेश राजहंस के शब्दों में - यदि अभिनेता चरित्रों के अनुकूल अपना चेहरा नहीं बदलता, तो डर है कि दर्शक सभी नाटकों में अलग-अलग परिधानों और

पोशकों में एक ही चरित्र को देखेंगे और उनसे जल्दी ही ऊब जाएँगे। इसे तोड़ने के लिए मेकअप जरूरी है।"[1]

सामान्यतः रूप सज्जा के अंतर्गत मुँह, नाक, ओठ, भौहे, दाढ़ी, केश आदि की सज्जा आती है। इसमें भी मुख्य अंग मुँह है जिसकी रूप सज्जा से एक विशिष्ट आकृति का अहसास कराया जा सकता है, जैसे गोल, चौकोर, लंबा, तिकोना आदि। इसी प्रकार आँख, नाक, ठोड़ी, गाल पर झुर्रियाँ बनाकर बढ़ती उम्र का या बुढ़ापे का रूप बनाना संभव होता है।

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में कभी-कभी काल की अवधि लंबी होती है। उदाहरण के लिए 'तीसरे रास्ते का राही' में अंजना की माँ का चित्रण आठ-नौ साल के अंतराल के बाद यहाँ फिर से किया गया है। उसके बाल ज़्यादा सफ़ेद हो गये हैं। वह बूढ़ी लगने लगी है। - घर की पूरी व्यवस्था बदल गयी है।"[2] इसी तरह उदास चेहरे, प्रसन्न चेहरे, बूढ़े जवान चेहरे रूप सज्जा की कल्पना की कारीगरी से बनाये रखा गया है। महिला लेखिकाओं ने रूप सज्जा पर इतना महत्व दिया गया है कि नाटक को जीवंत बनाने तथा पात्र चरित्रों को रूप देने में बल दिया है।

10.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में मंच योजना

समकालीन रंगमंच का तो नाटककारों ने मंचाभिकल्पन को विरोध किया, उसके प्रति अपनी अरुचि, खीझ अभिव्यक्ति की, किन्तु उसकी जगह पर कैसा रंगमंच होना चाहिए, इस विषय में कोई विशेष सक्रिया दृष्टि आज़ादी से पूर्व दिखाई नहीं पड़ती। जयशंकर प्रसाद ने अपने गहन अध्ययन, सृजनात्मक परिकल्पना तथा पूरी गंभीरता के साथ हिन्दी में नाट्य रचना की। उन्हें भारतीय पश्चिमी नाटक और रंगमंच की भी गहन जानकारी थी। किन्तु अपने नाटकों को उन्होंने किसी भी रंगमंचीय परिकल्पना से विमुक्त ही रखा। संभवतः इसी धारणा के विश्वास में कि

[1] रमेश राजहंस - नाट्य प्रस्तुति एक परिचय - पृ-113
[2] तीसरे रास्ते का राही -56

रंगमंच के अनुकूल होने की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु मंचीयता की दृष्टि से कोई गंभीर प्रयास आज़ादी मिलने तक नहीं आया। आज़ादी के बाद 1951 ई.में जगदीशचन्द्र माथुर का कोणार्क तथा 1954 में धर्मवीर भारती का अंधायुग का प्रकाशन हुआ। पहली बार हिन्दी में रंगमंचीय कसौटी पर खरे उतरने की प्रतिज्ञा लेकर ये नाटक सामने आए।

अब जो नाटक लिखे जाने लगे वे रंगमंचीय नाटक है, जिनमें मंचीयता प्रमुख प्रतिज्ञा के रूप में सन्निहित है। इस युग में मंचाभिकल्पन के नए नए आयामों की खोज की गई है।

सन् 60 और उसके भी काफ़ी बाद तक हिन्दी नाटककारों के मन में मंचाभिकल्पन की लगभग यही कल्पना थी। हलांकि अंधायुग के माध्यम से ही मंचाभिकल्पन को लेकर जितने प्रयोग किए गए हैं, बॉक्स रंगमंच, खुला रंगमंच,प्राकृतिक परिवेश रंगमंच सभी तरह के मंचों पर इसे बराबर सफलता के साथ खेला गया है किन्तु नाटककार के मन में पर्दा वाली कल्पना से आगे मंचाभिकल्पन की कल्पना कुछ ठोस नहीं है।

ऐसा नहीं है कि दृश्यावली या मंच सज्जा के बिना नाटक प्रस्तुत करना असंभव है। आदिकाल में इसका प्रयोग नहीं किया जाता था और प्रयोगात्मक नाटक प्रस्तुति में आज भी ऐसा हो रहा है। 'मुक्ताकाश' रंगमंच पर तो विस्तृत दृश्यावली का पाया जाना संभव ही नहीं है किन्तु ऐसी नाट्य प्रस्तुति दर्शकों से कल्पनाशील होने की माँग करती है, ताकि वे प्रस्तुति में इस्तेमाल की गयी मंच सामग्री या शब्दों से अपने मानस-पटल पर तत्काल आवश्यक दृश्यावली को रूपांकित करलें। दृश्यावली की यही भूमिका है कि वह घटित होने वाले नाटकीय व्यापार और अभिनेताओं को आवश्यक वातावरण और पृष्ठभूमि प्रदान करे। दूसरे शब्दों में दृश्यावली के इतना महत्व न दिया जाये कि अभिनय और कथ्य गौण पड़ जायें, अर्थात पाठकों का ध्यान दृश्यावली या मंच सज्जा के भव्य सौंदर्य को देखने में उलझ कर रह जायें और अंत में जब वे प्रेक्षागृह से बाहर आये तो उनके दिमाग़ में नाटक

के नाम पर मंच-सज्जा या दृश्यावली के अलावा कुछ न हो। आख़िर नाट्य प्रस्तुति मंच-सज्जा ही नहीं है। प्रस्तुति का एक सहायक अंग मात्र है।

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने मंच सज्जा विषयक निर्देश बहुत कम दिये हैं। उन्होंने नाटक में मंच सज्जा के व्यापक निर्देश नहीं दिये, मंच सज्जा का कार्य उन्होंने निर्देशक पर छोड़ दिया है। 'बिना दीवरों के घर' नाटक में पहले दृश्य में अजित का ड्राइंग रूप का दृश्य प्रदर्शित होता है। मंच की साज-सज्जा एक मध्यवर्गीय परिवार के आँगन की साधारण साज-सज्जा है। दूसरे दृश्य में अलमारी, मेज़, छोटी कुर्सी जैसी वस्तुओं का दर्शन कराया गया है। इस प्रकार सभी नाटकों में ज़्यादातर मध्यवर्गीय परिवार के आँगन और उससे संबंधित साज-सज्जा और उस परिवार से संबंधित साधारण वस्तुओं के इस्तेमाल की चीजे दिखाई गयी हैं।

11.नाट्य भाषा

अधिकांश विद्वानों ने संवाद को नाटक का शरीर माना है। इसी में नाटक की आत्मा निवास करती है। प्रसिद्ध नाट्य समीक्षक सिद्धनाथ कुमार संवाद और भाषा का संबंध स्थापित करते हुए लिखते हैं कि... संवाद बातचीत है, नाटक के पात्रों का कथोपकथन है...किसी भी रूप में ही संवाद का आधार भाषा है। नाटक का संवाद भाषा से इस प्रकार संबद्ध है कि दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। संवाद के अध्ययन में भाषा का विचार स्वतः आ जाता है।"[1]

नाटक की रचना-प्रक्रिया काग़ज़ के पृष्ठों से लेकर रंगमंच तक अपनी यात्रा पूर्ण करती है। इस रचना प्रक्रिया की यात्रा के संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि - "नाटक के आलेख में भाषा का लिखित रूप है, रंगमंच पर भाषा की मौखिक क्रिया है, तथा उससे संबंध अन्य शरीरिक-क्रियाएँ भी हैं।"[2]

---

[1] सिद्धनाथ कुमार, प्रसाद के नाटक पृ-146
[2] कल्पना, मार्च 1973 पृ-23

यही भाव अन्य प्रकार से व्यक्त करते हुए विपिन कुमार अग्रवाल मानते हैं कि... "नाटक वह लिखा भाषा में जाता है और मंच पर उतारा दृश्यों में जाता है। भाषा सरल हो पर मामूली न हो ताकि गहरे भावों को वहन कर सके। दृश्य स्पष्ट हों, अनिवार्य हों, तमाशा भरे हों। पर ढाचा विश्वसनीय हो। ऐसी भाषा और ऐसे दृश्य का जब मेल बैठ जाता है तब एक अनमोल नाटक पैदा होता है।"[1]

विपिन कुमार अग्रवाल ने वास्तव में शब्द, हरकत तथा दृश्य-त्रिभाषा फ़ार्मूला आधुनिक नाटकों में खोज निकाला है। अतः नाटकों में संवादों की भाषा के अतिरिक्त प्रकाश-व्यवस्था, अभिनय, ध्वनि-योजना, रंग-रूप सज्जा, मुखौटों और अन्य नाट्य-युक्तियों को शब्देतर नाट्य भाषा के अन्तर्गत समाहित कर लिया गया है। अग्रवाल जी के शब्दों में हम नाट्य भाषा को हरकत की भाषा कह सकते हैं।

नाटक में भाषा ही नाटककार के उद्धेश्य को दर्शकों तथा पाठकों तक संप्रेषित करने का महनीय कार्य करती है। नाट्य समीक्षक एवं रंग समीक्षक नाट्य भाषा की चर्चा करते हुए वाचिक भाषा अथवा कार्यिक भाषा के अतिरिक्त मंच के दृश्य-श्रव्य संयोजन की भाषा की चर्चा को भी महत्व देते हैं। रंग प्रकाश ध्वनि संगीत चित्र आदि उपकरण भाषा की इकाइयाँ ही हैं। लेकिन समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता उनमें प्रयुक्त नाट्य भाषा है। नाटक की भाषा सरल एवं सहज है।

संवाद के मूलतः दो अंग होते हैं। एक भाव, दूसरा भाषा। भाव कथानक में गति देता है, चरित्रों को उद्‌घाटित करता है और उद्धेश्य को व्यंजित करता है। भाषा विषयानुकूल तथा पात्रानुकूल होकर स्वाभाविकता को बनाए रखती है। समकालीन महिला नाटककार इस रूप से भली भाँती परिचित हैं। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों की भाषा अत्यंत स्वाभाविक है। नाटकों में हमें कोई निरर्थक

[1] कल्पना, मार्च 1973 पृ-23

शब्द नहीं दिखाई देता है। नाटकों के शब्द दूसरे शब्द से मिलकर एक लय पैदा करते हैं जो नाट्यकारों के भावों को अभिव्यक्त कर दर्शकों तथा पाठकों पर गंभीर प्रभाव डालते हैं ।

समकाली हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों की भाषा अन्य नाटकों की तुलना में सर्वाधिक शिष्ट और साहित्यिक हैं। तत्सम शब्दावली का अधिक प्रयोग होने पर भी भाषा की सहजता सर्वत्र मिलती है। कथा का उद्घाटन घटनाओं के प्रस्तुतीकरण से न करके नाटककार ने संवाद और भाषा को ही उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। उदाहरण के लिए 'बिना दीवारों के घर' का कथन एक मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन से संबंधित है। यहाँ आम आदमी के जीवन को सहज रूप से चित्रित किया गया है। उसके परिणामों को भाषा की सहजता एवं सरलता के साथ प्रस्तुत कर दिया है –

शोभा : क्या है...?

अजित : मैं पूछता हूँ इस घर में कभी कोई चीज ठीक जगह पर भी रहती है या नहीं?

शोभा : क्या चाहिए आपको?

अजित : ....कहीं ब्लेड का पता नहीं और तुम हो कि वहाँ बैठकर अलाप रही हो...।

इस प्रकार हम देखते है कि संवाद-कौशल और भाषा की सरल व्यंजना की दृष्टि से समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटक श्रेष्ट माने जाते हैं।

आलोच्य नाटकों की भाषा अत्यंत सलर, सुबोध, सहज, तथा प्रवाहमान है। केवल शब्दों का जाल बनाने में लेखिकाओं को कई दिलचस्पी नहीं है। रावणलीला जैसे नाटकों में पौराणिकता का आभास पैदा करने के हेतु बड़े-बड़े जटिल शब्दों की उन्हें आवस्यकता नहीं, क्योंकि शब्द से सत्य का साक्षात्कार कभी नहीं हो पाता, समय समय के पत्थर को काटते रहने का भले भाषा कही-कहीं अलंकारमय हो गयी

है। जैसे - अरे तोरो सिर न हुआ कउनो बरफी गुलाब जमान होय गयो..अभी हम तोहे बतावत हैं ...फल खावे का लुब्बा-लुब्बा मजा चखावत हैं।"[1]

भाषा और संवादों का पात्रानुकूल होना नाट्य भाषा की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है। इस विशेषता का संबंध केवल शब्दों के चुनाव तक सीमित नहीं है, जैसा कि प्रायः माना जा रहा है। भाषा-संवाद के पात्रानुकूल होने का अर्थ है पात्र की विशेषताओं के अनुकूल शब्द संयोजना, वाक्यों का स्वरूप (सरल, मिश्र,संयुक्त, सकारात्मक, नकारात्मक अथवा प्रश्नात्मक) और लय विधान। उपर्युक्त भाषिक संकल्पना की प्रयोगिता समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में विशेष प्रयोग दिखायी देती है।

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने कुछ अँग्रेजी, उर्दू, अरबी और फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है। अर्थ की गूँज को दर्शकों तथा पाठकों तक पहुँचाने के लिए नाटककार ने नाटकों में स्थान-स्थान पर बिन्दु चिन्हों का भी प्रयोग किया है। नाटकों में चौंककर, आवेग में, असंजस में, विचलित होकर, बेचैन होकर, थके स्वर में, चेहरे पर पीड़ा के साथ, अपेक्षाकृत शांत होकर, तीव्र, एकाएक कहे गये संवाद हैं जिससे नाटकों में प्रभाव बन पाया है।

समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने जटिल-संश्लिष्ट नाट्य भाषा पात्रों और स्थितियों से स्पष्टतः जुड़ी हो कर चरित्रों के देशकाल का भ्रम बनाए रखकर भी बोलने के ढंग, सच्ची लगनेवाली स्वतः स्फूर्त लय और विश्वसनीयता के कारण अतीत और वर्तमान को एक साथ प्रस्तुत कर दिया है। वह शब्द और क्रिया, ध्वनि और मुद्रा सम्यक समन्वय से उत्पन्न होकर कथ्य को नाटकीय और जीवंत रूप में उसमें साहित्यिक-काव्यात्मकता और नाटकीयता-रंगमंचीयता का उद्‌भुत सम्मिश्रिण है। महिला नाटककारों की भाषा में बोलने का ढंग ,लय टोन और शब्द विन्यास से

---

[1] रावणलीला- 28

एकदम सच्ची लगने का जो गुण विद्यमान है वह भी इन नाटकों की रंगमंचीय सफलता का एक प्रमुख कारण जरूर है।

उपसंहार

सन् साठ से पूर्व ही रंगमंचीय हिन्दी नाटकों की शुरुआत भारतेन्दु से होती है। भारतेन्दु के नाटकों में रंगमंचीयता अपनी सीमाओं और पूरी संभावनाओं के साथ मौजूद है। प्रसाद के युग में हिन्दी रंगमंच विकसित नहीं हो सका। प्रसाद युग के बाद यथार्थवादी नाटकों का दौर आया फिर एकांकी का जिसका जन्म मंच सुविधा के लिए ही हुआ, किन्तु आज़ादी से पूर्व हिन्दी नाटक रंगमंच की स्थिति अधिक सुधरी नहीं थी।

आज़ादी के बाद बदली हुई परिस्थितियों में और युग के दबाव में नाटक और रंगमंच की मैत्री का सुखद अध्ययन शुरू हुआ। सन् पचास से सन् साठ तक आज़ादी के माहौल में नयी नयी रंगसंस्थाओं, संगीत नाटक अकादमी, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना भी हुई। कुल मिलाकर साठ के बाद नाट्य अपना रूप तलाश करने की प्रक्रिया में प्रयोगों की लम्बी यात्रा से गुज़रा।

समकालीन हिन्दी नाटककार का व्यक्तित्व संभवतः ही परिवर्तित हुआ। अब वह बंद कमरे में बैठकर नाटक लिखने की भावना से मुक्त थे। नाटक और रंगमंच नाट्यकला के दो भिन्न किन्तु अन्योन्याश्रित भाग है, यह बात अब उसकी रचना-प्रक्रिया में ही सन्निहित हो गई।

समकालीन हिन्दी महिला नाटकों में मंचाभिकल्पना के नये आयामों ने नाटक को अधिक समर्थ कलात्मक बनाया तथा नाटक को प्रेक्षागृह एवं रंगमंचीय चौखटे से मुक्त किया है। बॉक्स रंगमंच, खुला रंगमंच तथा मुक्ताकाशी रंगमंच मंचाभिकल्पना के नये आयाम हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात समकालीन महिला नाट्य में मंचाभिकल्पना के नये आयामों के साथ जो हुई वह यह कि अत्यधिक मंच सामग्री का प्रयोग कल्पनात्मक एवं सर्जनात्मक प्रयोग में किया गया।

विज्ञान और तकनीकी के विकास ने रंगमंच को भी प्रकाश और ध्वनि के ऐसे नये उपकरण प्रदान किए हैं, जिनमें रंगमंच पहले से ही अधिक तकनीकी, कलात्मक, समर्थ और प्रभावपूर्ण हुआ है। टेप रिकार्डर, रेडियो, विभिन्न वाद्य यंत्र, टेलिफ़ोन, बिजली की घंटी तथा रिकार्ड का सहायता से विभिन्न ध्वनि प्रभाव तथा विभिन्न प्रकाश की आवाजें पैदा की गयीं ।

जहाँ तक वेशभूषा और रूप सज्जा का सवाल है तो एक ओर तो वेशभूषा के प्रतीकात्मक प्रयोग की संभावनाएँ उभर कर सामने आई हैं, दूसरी ओर नये युग नयी यथार्थ वास्तविकताओं में यथार्थ अभिनय की शैली का भी विकास हुआ है तथा नायक भी आम आदमी है जो न धीरोद्धत है न धीरललित है न धीरोदात्त और न धीरप्रशांत।

हिन्दी नाटक और रंगमंच शायद वर्तमान में इसी तरह की मंदी के दौर से गुज़र रहा है। किन्तु समकालीन हिन्दी महिला नाट्य और रंगमंच ने नाट्य कला का निश्चित रूप से विकास किया है, उसे समसामयिक जीवन की समर्थ रूप से अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों की रंगमंचीय सफलता का मूल कारण यह नहीं कि इसे सशक्त प्रचार-यंत्र, प्रतिभावान निर्देशक और कुशल अभिनेता मिल गए अपितु इसकी सफलता का रहस्य इसके दृश्यत्व तथा कथा के अभिनय द्वारा मूर्त हो सकने की आंतरिक क्षमता में निहित हैं ;अपने माध्यम के अधिकाधिक सार्थक जीवंत और नाटकीय उपयोग में निहित है। इसकी रंगमंचीय सफलता का मूल कारण इसकी रंग-धर्मिता, अभिनयात्मक वृत्ति, स्पष्ट चरित्र परिकल्पना, भाषा की जीवंतता और अपने समय में जीवित दर्शक के सीधे संबोधन में विद्यमान हैं।

***

उपसंहार

गद्य-साहित्य की अन्य विधाओं की भांति अब नाटक रचना के क्षेत्र में भी महिला लेखिकाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के जीवन के साथ-साथ उनके रचना संसार को खासतौर से नाटकों में तात्त्विक दृष्टि, सामाजिक चेतना और रंगमंचीय विशिष्टता को गहनता, व्यापकता तथा सूक्ष्मता से समझने का प्रयास किया गया है। आलोच्य काल में अनेक प्रतिभा संपन्न महिला नाटककारों ने नाटक के क्षेत्र में प्रवेश किया और अनेक सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत कर यश प्राप्त किया। इनमें कुसुम कुमार, मन्नु भंडारी, मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे, मृदुला बिहारी, मैत्रेयी पुष्पा, आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

लगभग बीस-पच्चीस वर्षों की अवधि में लिखे गए महिलाओं के नाटकों को शोध-प्रबन्ध में यथासंभव समेटने का प्रयास किया गया है फिर भी कुछ नाटकों के प्रकाशन - गृहों तथा पुस्तकालयों में उपलब्ध न होने के कारण उनका विवेचन संभव नहीं हो पाया। पिष्टपेषण और पुनरावृत्ति से बचने का तथा प्रमुख प्रवृत्तियों को उभारने का मौलिक प्रयास किया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी नाटक साहित्य में महिलाओं का योगदान स्त्रष्टा के रूप में अधिक रहा है। 19वीं-20वीं शताब्दी का भारतीय इतिहास एक क्रान्तिकारी युग माना जाता है। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, आचार -विचार आदि के संपर्क ने भारतीय जन- जीवन में आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। इस का मूल केन्द्र महिलाएँ थीं। महिला जागरण की गूंज ने उसे चैंकाया नहीं वरन अब वह इसे अपना स्वत्व समझने लगी थीं। महिला द्वारा रचित इस युग का साहित्य इसका प्रमाण है।

हिन्दी महिला नाट्य लेखिकाओं में विद्रोह की भावना प्रबल हो रही थी। अपनी प्राचीन रूढ़ियों को तोढ़ फेंकना चाहती थीं। केवल सामाजिक जीवन में ही उनकी स्वतंत्रता की ललकार नहीं की, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, जीवन में भी उनका विद्रोह स्वर प्रबल हो रहा था। महिला द्वारा रचित तत्कालीन नाटक साहित्य इस कथन की पुष्टि करता है। समकालीन महिला द्वारा रचित नाट्य साहित्य से स्पष्ट होता है कि जीवन और जगत की विभिन्न अनुभूतियों ने भी उन्हें नाटक की विषय वस्तु का आधार बनाने को प्रेरित किया।

समकालीन हिन्दी महिला नाटकों में कथ्य चेतना का अगला आयाम स्त्री-पुरुष संबंधों का है। बदलते मूल्यों और परिस्थितियों की दौड़ में स्त्री-पुरुष संबंधहीनता समकालीन परिप्रेक्ष्य में देखने को मिलती है। अनेक ऐसे नाटक हैं जो सिर्फ़ स्त्री-पुरुष संबंध के चित्रण में ही अत्यधिक रुचि लेने के कारण विशेष प्रसिद्ध हैं जैसे मृदुला गर्ग के 'एक और अजनबी', मन्नू भण्डारी के 'बिना दीवारों के घर' में स्त्री पुरुष संबधों को कथ्य बनाकर उसे नाट्य रचना के केन्द्र में नयी दृष्टि से व्याख्या की गयी है। काम संबंधों के चित्रण में पारंपरिकता की हद को पार करने की कोशिशें भी हुई हैं। वर्तमान शिक्षा को भ्रष्टता, उद्धेश्यहीनता, दिशाहीनता महत्वहीनता और उससे उपजी मूल्य दृष्टि की हीनता को नाटक का कथ्य बनाकर लिखे गये नाटकों में कुसुम कुमार का 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' मृदुला गर्ग का 'जादू का कालीन' प्रमुख है।

समकालीन नाट्य साहित्य में कथ्यगत नवीनताओं का अनेक स्तरों पर विकास हुआ। इस युग के नाटकों में जीवन और जगत के साथ ही समसामयिक जीवन सन्दर्भ को विभिन्न झरोखों से उलट पुलटकर देखने-परखने की कोशिश पुनः शुरू हुई और समकालीन जीवन की उपलब्धियाँ एवं सीमाओं को साथ-साथ चित्रित करने वाली नाट्य रचनाएँ सामने आयीं।

समकालीन महिलाओं के नाटकों के परिप्रेक्ष्य में उनकी साहित्यिक प्रतिभा को उचित श्रेय प्रदान करना ही नहीं है अपितु सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक और नैतिक स्थितियों के परिपाश्र्व में उसके मानवीय विकास को देखना भी है।

युगीन परिस्थितियों का चित्रण करने का ध्येय यही है, क्योंकि उन्ही के द्वारा नाटक साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का आगमन होता है। इस प्रकार जीवन-पक्षों और अनुभूतियों को अपनी नाटकों में व्यक्त करके आलोच्यकालीन महिला नाटककारों ने महिला की क्षमता के वैभव के प्रति अटूट आस्था उत्पन्न की।

समकालीन रचना परिदृश्य में महिला नाट्य लेखन का एक प्रवृत्तिगत बिम्ब बनता है। उस वस्तुनिष्ठ बिम्ब की अनेक संयोजक रेखाएँ जागरूक महिला की कलम से निर्मित हैं। कहना न होगा आज का महिला नाट्य लेखन सामान्य और असमान्य स्थितियों में की गयी संघर्षशीलता और सामाजिक न्याय पाने की भावना तथा अपने अस्तित्व को एक इकाई का रूप देने की इच्छा से प्रेरित है। समकालीन जीवन के परिदृश्य में महिला नाटककार इस बात का स्पष्ट प्रमाण दे रही हैं। उसका विशेष महत्व इसलिए है कि उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर अपने संघर्ष की चेतना में, आज की महिला की सामाजिक नियति और मानसिकता को बहुत ईमानदारी और बहुत गहराई से व्यक्त किया है। वस्तुतः महिला नाटककार ने संपूर्ण परिवेश में इतिहास वृत्त से संघर्ष करते हुए और नवीन जीवन पद्धति की ओर चाहते हुए नारी पात्रों की विशिष्ट जानकारी और पहचान दी है।

समकालीन महिला नाटककारों द्वारा लिखी गयी रचनाओं में हमें समाज के कटु यथार्थ के दर्शन होते हैं। यह यथार्थ कहीं व्यंग्य, कहीं अर्थ, कहीं राजनीति और कहीं समकालीनता के स्तर पर उभरा है। इस प्रकार समकालीन महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना बहुविध और बहुआयामी है। लेखिकाओं ने युग चेतना को अपनी रचनाओं में प्रखर स्वर और वाणी दी है। नाटकों में व्यक्ति का सत्य,

समाज का सत्य बनकर उभरता है। इनके नाटकों के पात्र ग़रीबी, बेरोज़गारी, सांप्रदायिकता, संकुचित रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों, भ्रष्ट नेताओं, व्यवस्था की क्रूरता, नौकरशाही, लालफ़ीताशाही, पुलिस भ्रष्टाचार, शोषण, अन्याय आदि को सहन करते तथा संघर्ष करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। सहन-संघर्ष करने की स्थितियों में कहीं थकते-हारते, टूटते-बिखरते हुए दिखाई देते हैं तो कहीं विजयी मुद्रा में भी उभरते हैं। इस प्रक्रिया में से गुज़रते हुए व्यक्ति की विवशता ,कुण्ठा खीझ के साथ साथ मुक्ति के लिए छटपटाहट भी व्यक्त हुई है।

आलोच्य काल में लिखे गये नाटकों में अधिकतर मध्यवर्ग के पात्रों को ही प्रस्तुत किया गया है। इसका कारण संभवतः यह है कि महिला नाटककार इसी वर्ग से आयी हैं। लेखिकाओं ने स्वानुभूत जीवन के आधार पर ही इस वर्ग की सामाजिक चेतना को सूक्ष्मता, गहनता तथा व्यापकता से प्रस्तुत किया है। नाटकों में समाज के अन्य वर्गों का भी यत्र तत्र चित्रण हुआ है परन्तु उसमें उतनी सघनता और सजीवता नहीं आ पायी है।

लेखिकाओं ने नारी के अनेक रूपों को प्रस्तुत किया है परन्तु प्रगतिशील चेतना की प्रमुखता है। पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त कर नारी नौकरी करती हुई, बड़े-बड़े पदों को सँभालती हुई तथा समय और स्थिति के अनुसार अपनी प्रतिभा, योग्यता और क्षमता का परिचय देती हुई दिखाई देती है।

समकालीन हिन्दी महिला नाटककार का व्यक्तित्व संभवतः परिवर्तित हुआ। अब वह बंद कमरे में बैठकर नाटक लिखने की भावना से मुक्त थीं। नाटक और रंगमंच नाट्यकला के दो भिन्न किन्तु अन्योन्याश्रित भाग हैं, यह बात अब उसकी रचना-प्रक्रिया में ही सन्निहित हो गई।

समकालीन हिन्दी महिला नाटकों में मंचाभिकल्पना के नये आयामों ने नाटक को अधिक समर्थ कलात्मक बनाया तथा नाटक को प्रेक्षागृह एवं रंगमंचीय चौखटे से मुक्त किया है। बॉक्स रंगमंच, खुला रंगमंच तथा मुक्ताकाशी रंगमंच मंचाभिकल्पना के नये आयाम हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात समकालीन महिला नाट्य में मंचाभिकल्पना के

नये आयामों के साथ जो हुई वह यह कि अत्यधिक मंच सामग्री का प्रयोग कल्पनात्मक एवं सर्जनात्मक प्रयोग में किया गया।

विज्ञान और तकनीकी के विकास ने रंगमंच को भी प्रकाश और ध्वनि के ऐसे नये उपकरण प्रदान किए हैं, जिनमें रंगमंच पहले से ही अधिक तकनीकी, कलात्मक, समर्थ और प्रभावपूर्ण हुआ है। टेप रिकार्डर, रेडियो, विभिन्न वाद्य यंत्र, टेलिफ़ोन, बिजली की घंटी तथा रिकार्ड की सहायता से विभिन्न ध्वनि प्रभाव तथा विभिन्न प्रकाश की आवाजें पैदा की गयी हैं।

जहाँ तक वेशभूषा और रूप सज्जा का सवाल है तो एक ओर तो वेशभूषा के प्रतीकात्मक प्रयोग की संभावनाएँ उभर कर सामने आई हैं, दूसरी ओर नये युग नयी यथार्थ वास्तविकताओं में यथार्थ अभिनय की शैली का भी विकास हुआ है तथा नायक एक आम आदमी है जो न धीरोद्धत है न धीरललित है न धीरोदात्त और न धीरप्रशांत।

हिन्दी नाटक और रंगमंच शायद वर्तमान में इसी तरह की मंदी के दौर से गुज़र रहा है। किन्तु समकालीन हिन्दी महिला नाटक और रंगमंच ने नाट्य कला का निश्चित रूप से विकास किया है, उसे समसामयिक जीवन की समर्थ रूप से अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समकालीन हिन्दी महिला नाटकों का रंगमंचीयरूप के सफलता का मूल कारण यह नहीं कि इसे सशक्त प्रचार-यंत्र, प्रतिभावान निर्देशक और कुशल अभिनेता मिल गए। अपितु इसकी सफलता का रहस्य इसके दृश्यत्व तथा कथा के अभिनय द्वारा मूर्त हो सकने की आंतरिक क्षमता में निहित है, तथा माध्यम के अधिकाधिक सार्थक जीवंत और नाटकीय उपयोग में निहित है। इसकी रंगमंचीय सफलता का मूल कारण इसकी रंग-धर्मिता, अभिनयात्मक वृत्ति, स्पष्ट चरित्र परिकल्पना, भाषा की जीवंतता और अपने समय में जीवित दर्शक के सीधे संबोधन में विद्यमान है।

यह एक स्थापित तथ्य है कि साहित्यकार समाज का द्रष्टा और स्रष्टा होता है। वह मानव-जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप और गतिविधि का विवेचन होता है। वह सामाजिक जीवन की विभिन्न स्थितियों और अवस्थाओं का अध्ययन मनन और चिन्तन कर सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करता है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर समाज के कटु यथार्थ को अपने नाटकों द्वारा प्रस्तुत किया है। महिला नाटककारों की यह यात्रा सफ़ल समाजोन्मुखी यात्रा हो सकती है।

***

सहायक ग्रंथ सूची (Bibliography)

(क)विवेच्य नाटक

1. कुसुम कुमार - (1) सुनो शेफाली - हिमाचल पुस्तक भण्डार, गांधीनगर, दिल्ली, प्र.संस्करण – 1992

(2) रावण लीला - सरस्वती विहार, दिल्ली, प्र.संस्करण - 1983

(3) पवन चतुर्वेदी की डायरी - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र.संस्करण - 1986

2. मन्नू भण्डारी - (1) बिना दीवारों के घर - राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, च.संस्करण – 2002

3. मृदुला गर्ग - (1) एक और अजनबी - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र.संस्करण - 1987

(2) जादू का कालीन - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.संस्करण – 1993

4. मृदुला बिहारी - (1) भँवर - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.संस्करण – 1993

	(2) तीसरे रास्ते की राह	-	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण - 1993
	(3) वे पाँच शब्द	-	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण – 1993
	(4) देहरी	-	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण – 1993
	(5) अँधेरे से आगे	-	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण – 1993
5. मृणाल पाण्डे -	(1) जो राम रचि राखा	-	नटरंग -36 प्र.संस्करण -1980
	(2) आदमी मछुआरा नहीं था	-	राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण - 1985
	(3) चोर निकल के भागा	-	राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण – 1995
6. मैत्रेयी पुष्पा -	(1) मंदाक्रान्ता	-	किताबघर प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण - 2006

(ख)सहायक ग्रंथ (हिन्दी)

1.आधुनिक हिन्दी नाटक (भूमिका) - **डॉ.नगेन्द्र** नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली – 1970

2.आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव - **डॉ. दशरथ ओझ** राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली द्वि.सं. 1986

3.आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र सृष्टि के आयाम - **डॉ. लक्ष्मीराय** तक्षशिला प्रकाशन अंसारी रोड दिल्ली – 1986

4.आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच - **डॉ. लक्ष्मी नारायणलाल** साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद प्र.सं. 1989

5.आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच - **नेमिचन्द्र जैन** दि मेकमिलन कं. दिल्ली प्र.सं. 1978

6.आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोग धर्मिता - **डॉ.सत्यवती त्रिपाठी** राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1990

7.नाटक और रंग परिकल्पना - **डॉ. गिरीश रस्तोगी** विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्र.सं. 1992

8.नाट्य समीक्षा - **डॉ.दशरथ ओझ** नेशनल पब्लिशिंग हाउज
दिल्ली
द्वि.सं.1984

9.भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास-**सत्यकेतु विद्यालंकार** सरस्वती सदन
दिल्ली
तृ.सं.1960

10.रंगमंच और नाटक की भूमिका - **डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल**
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली
प्र.सं.1965

11.रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटककार - **रघुवर दयाल वार्ष्णेय**
इन्द्रप्रस्था प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1979

12.समकालीन हिन्दी नाटककार - **डॉ गिरीश रस्तोगी** इन्द्रप्रस्था प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं.1982

13.समकालीन हिन्दी नाटककार और रंगमंच - **सं. जयदेव तनेजा**
तक्षशिला प्रकाशन
दिल्ली
(भूमिका)1978

14.समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - **डॉ. विनय** भारती भाषा प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1981

15.समकालीन हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि - **जयदेव तनेजा** सामयिक प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1971

16.समकालीन हिन्दी नाटक की संघर्ष चेतना - **डॉ. गिरीश रस्तोगी**
हरियाणा साहित्य अकादमी
चण्डीगढ़
प्र.सं.1996

17.समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक - **डॉ. शेखर शर्मा** भावना प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं.1986

18.समकालीन हिन्दी नाटक कथ्य चेतना - **डॉ. चन्द्र शेखर** आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली
प्र.सं. 1982

19.साठोत्तर हिन्दी नाटक - **सं. विजय कांतधर** दूबे बिचिकेता प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1983

20.साठोत्तरी हिन्दी नाटकों का रंगमंचीय अध्ययन - **राकेश वत्स**
हिन्दी बुक सेंटर
नई दिल्ली
प्र.सं.1995

21.स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - **डॉ. रीता कुमार** बिथु प्रकाशन
साहिबाबाद
प्र. सं.1980

22.स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में सामाजिक चेतना – **डॉ. एम.के अजित कुमार** — जवहर पुस्तकालय मथुरा प्र.सं. 2005

23.स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में...
...सामाजिक चेतना - **श्रीमती विनोद जैन** — के.के. पब्लिकेशन्स नई दिल्ली प्र.सं. 2007

24.हिन्दी नाटक यात्रा दशक - **डॉ. नरनारायण राय** — भारती प्रकाशन दिल्ली प्र.सं.1979

25.हिन्दी नाटक और रंगमंच - **डॉ. बजराज किशोर** — जनप्रिया प्रकाशन विश्वास नगर दिल्ली सं. 1992

26.हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - **डॉ. दशरथ ओझ** — राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली सं. 1984

27.हिन्दी नाटककार - **जयनाथ नलिन** — आत्माराम एण्ड सन्स काशीरी गेट दिल्ली-1993 प्र.सं. 2007

28.हिन्दी के प्रमुख नाटककार - **डॉ. मालिनी मिश्र** — मोडर्न प्रिंटर्स जयपुर प्र.सं. 2004

29. समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार - **डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा**
चिन्तन प्रकाशन
कानपुर
प्र.सं. 2005

30.समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - **नरेन्द्र मोहन** वाणी प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 2009

(ग)सहायक ग्रंथ (अँग्रेजी)

1.People's art in the twentieth Century theory and practice – Janam

2.The Drama and Dramatic dances of non European race – William

3.Theory of Drama – Nicoll

4.The Problem in Play – R.C. Gupta

(घ)पत्र-पत्रिकाएँ (हिन्दी)

आलोचना - जुलाई - 1965

आलोचना - अक्तूबर - 1984

आलोचना - विशेषांक - जनवरी-मार्च - 1986

मधुमती - 1998

मधुमती - फरवरी 1999

मधुमति - जून - 2001

मधुमति - अक्तूबर - 2001

नटरंग - खण्ड 17 अंक 66 मार्च 2002

नटरंग - खण्ड 18 अंक 67 सिंतम्बर 2002

नटरंग - खण्ड 19 अंक 68 मार्च 2002

नटरंग - खण्ड 20 अंक 69 मार्च 2002

(ङ)शब्द कोश (हिन्दी)

1.बृहत् हिन्दी कोश - कालिका प्रसाद - ज्ञान मंडल लिमिटेड - वारणासी

2.मानक हिन्दी कोश - रामचन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग

3.हिन्दी व्युत्पत्ति कोश - आचार्य बच्चूलाल अवस्थी - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नई दिल्ली

4.मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश - सत्यप्रकाश डी.एस.सी - हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग

5.हिन्दी साहित्य कोश - धीरेन्द्र वर्मा – ज्ञान मंडल लिमिटेड - वारणासी

6.हिन्दी नाटक कोश - डॉ. दशरथ ओझा - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नई दिल्ली

7.मानक हिन्दी पर्याय कोश - डॉ. हरदेव बाहरी - विद्या प्रकाश मंदिर - नई दिल्ली

(च)शब्द कोश (अँग्रेजी)

1. Progressive English – Hindi Dictionary - S.K. Varma – Oxford University Press, INDIA

2. Practical English- Hindi Dictionary – Dr. Badrinath kapoor – prayag prakashan – Delhi

3. Vidya's Compact English-Hindi Dictionary – P.L. Bhatt – Vidya Prakashan Mandhir- New Delhi

(छ)वेबसाइट

1. www.webdunia.com
2. www.anubhuti.com
3. www.abhivyakti.com
4. www.nayagnanoday
5. www.tatbhav.com
6. www.sahityakunj.com
7. www.nayiedunia.com

***

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन

हिन्दी साहित्य का इतिहास एक लम्बी अवधि को लिए हुए है। वर्षों से लिखे हुए साहित्य इतिहास ने अनेक विधाओं जैसे - कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, रिपोर्ताज इत्यादि को जन्म दिया है। इन सभी विधाओं में से मेरी पसंद नाटक साहित्य की ओर रही है। जब पीएच.डी में पँजीकरण हेतु विषय-चयन की बात सामने आई तो अपने मन की पसंद को मैंने अपनी शोध निर्देशिका प्रो. नूरजहाँ बेगम जी के समक्ष रखी। उन्होंने मुझे महिला नाटकों का अध्ययन करने के लिए सुजाव दिया। अतः मैंने अपनी शोध निर्देशिका प्रो. नूरजहाँ बेगम जी से विचार एवं विमर्श कर 'समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन' शोध विषय का चयन किया।

गद्य-साहित्य की अन्य विधाओं की भांति अब नाटक रचना के क्षेत्र में भी महिला लेखिकाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के जीवन ने उनके रचना संसार को खासतौर से नाटकों में तात्त्विक दृष्टि, सामाजिक चेतना और रंगमंचीय विशिष्टता को गहनता, व्यापकता तथा सूक्ष्मता से समझने का प्रयास किया है। आलोच्य काल में अनेक प्रतिभा संपन्न महिला नाटककारों ने नाटक के क्षेत्र में प्रवेश किया और अनेक सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत कर यश प्राप्त किया। इनमें कुसुम कुमार, मन्नु भंडारी, मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे, मृदुला बिहारी, मैत्रेयी पुष्पा, आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

समकालीन नाट्य साहित्य में कथ्य गत नवीनताओं का अनेक स्तरों पर विकास हुआ। इस युग के नाटकों में जीवन और जगत के साथ ही समसामयिक जीवन संन्दर्भों को विभिन्न झरोखों से उलट पुलटकर देखने-परखने की कोशिशें पुनः शुरू हुईं और समकालीन जीवन की उपलब्धियों एवं सीमाओं को साथ-साथ चित्रित करनेवाली नाट्य रचनाएँ सामने आयीं। समकालीन हिन्दी नाटकों में जीवन का पूर्ण स्पंदन देखा जा सकता है। जीवन की विविधता, विषमता एवं जीवन मूल्यों को शैली एवं शिल्प को विविधताओं में अभिव्यक्त किया जाने लगा। समकालीन हिन्दी नाटकों में पहली बार मानवीय संवेदना को इतनी सूक्ष्मता से उभारने का प्रयास किया गया और जीवन से निरन्तर संघर्ष करता हुआ आज का बेचारा आदमी को नाट्य रचना के विषय के क्षेत्र में अपार वैविध्य दृष्टिगोचर हुआ। विषय के क्षेत्र में विविधता, विस्तार, गहराई और सूक्ष्मता आयी जो इससे पूर्व दृष्टिगत नहीं होती। नाट्यरचनाएँ हिन्दी नाटकों में पहली बार स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को कथ्य बनाकर नाट्य रचनाएँ प्रस्तुत की गयीं। एक बीमार, ढीला, सुस्त एवं टूटता दाम्पत्य सम्बन्ध नाटक का विषय बना और स्त्री-पुरुष संबंध की सूक्ष्मताओं पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विष्लेशणत्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया।

समकालीन हिन्दी नाटकों में नाट्य-वस्तु के चयन में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और विविधता दृष्टिगत हुई है। कल तक ऐतिहासिक-पौराणिक घटनाओं का इतिवृत्त

रूप में नाट्य वस्तु में उपयोग अनिवार्य था तथा सामाजिक कुप्रताओं, कुचलनों एवं विषमताओं पर प्रहर करनेवाले समस्या प्रधान नाटकों का बोलबाला था, वहीं समकालीन हिन्दी नाटकों में स्वातंत्र्योत्तर बदली हुई परिस्थितियों से उत्पन्न होनेवाले तमाम विषयों पर तो नाटकों की रचना हुई हो, मनोवैज्ञानिक जीवन दर्शन एवं जीव मूल्यों को भी नाट्य वस्तु में समाविष्ट कर लिया गया। इस तरह समकालीन हिन्दी नाटकों की कथ्य चेतना में नयी जागृति हुई। नाट्य वस्तु में आकर्षण उत्पन्न करने के लिए जीवन दर्शन की व्याख्या एवं लक्ष्यहीन जीवन की विवशता, पीड़ा एवं घुटन आदि अन्य समकालीन जीवन स्थितियों से सीधा साक्षात्कार किया गया। नाटककारों ने ऐतिहासिक-पौराणिक घटनाओं एवं पात्रों का एक सन्दर्भ के रूप में ही चित्रित किया ताकि कथ्य के द्वारा व्यक्त होनेवाली भाव संप्रेषण बाधित न हो। इसलिए समकालीन हिन्दी नाटकों में कथ्य के स्तर पर इनका उपयोग नाटककार की शर्तों पर गृहीत हुए, जिससे कथ्य व्यक्त हो सके।

इसी प्रकार कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी नाटकों में कथ्य के स्तर पर अनेक प्रयोग हुए हैं। समकालीन हिन्दी नाटकों में सिंहासन की लोलुपता एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण जैसे मुद्दों को लेकर अनेक नाटक प्रणीत हुए हैं जो बड़े आक्रामक अन्दाज में हमारी राजनीतिक गतिविधियों की कॉमा स्थिति को दृश्यत्व दे जाते हैं। दूसरी ओर नारी का पुरुष के प्रति समर्पण अथवा पुरुषों द्वारा नारी को मजबूर कर शारीरिक संबंध स्थापित करने की कोशिश हो -वह चाहे उसकी विवशता हो या सहर्ष स्वीकार्य हो अथवा शारीरिक संबंधों का जायका बदलने के लिए नित नये नये अनुभवों का ही प्रयास हुआ।

वास्तव में महिला की साहित्यिक प्रतिभा को उचित श्रेय प्रदान करना ही नहीं है अपितु सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक और नैतिक स्थितियों के परिपार्श्व में उसके मानवीय विकास को देखना भी रहा है।

युगीन परिस्थितियों का चित्रण करने का ध्येय यही है, क्योंकि उन्ही के द्वारा नाटक साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का आगमन होता है। इस प्रकार जीवन-पक्षों और अनुभूतियों को अपने नाटकों में व्यक्त करके आलोच्यकालीन महिला नाटककारों ने महिला की क्षमता के वैभव के प्रति अटूट आस्था उत्पन्न की।

समकालीन महिला नाटककारों द्वारा लिखी गयी रचनाओं में हमें समाज के कटु यथार्थ के दर्शन होते हैं। यह यथार्थ कहीं व्यंग्य, कहीं अर्थ, कहीं राजनीति और कहीं समकालीनता के स्तर पर उभरा है। इस प्रकार समकालीन महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना बहुविध और बहुआयामी है। लेखिकाओं ने युग चेतना को अपनी रचनाओं में प्रखर स्वर और वाणी दी है। नाटकों में व्यक्ति का सत्य, समाज का सत्य बनकर उभरता है। इनके नाटकों के पात्र ग़रीबी, बेरोज़गारी, सांप्रदायिकता, संकुचित रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों, भ्रष्ट नेताओं, व्यवस्था की क्रूरता, नौकरशाही, लालफ़ीताशाही, पुलिस भ्रष्टाचार, शोषण, अन्याय आदि को सहन करते तथा संघर्ष करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। सहन-संघर्ष करने की स्थितियों में कहीं थकते-हारते,

टूटते-बिखरते हुए दिखाई देते हैं तो कहीं विजयी मुद्रा में भी उभरते हैं। इस प्रक्रिया में से गुज़रते हुए व्यक्ति की विवशता ,कुण्ठा खीझ के साथ साथ मुक्ति के लिए छटपटाहट भी व्यक्त हुई है।

आलोच्य काल में लिखे गये नाटकों में अधिकतर मध्यवर्ग के पात्रों को ही प्रस्तुत किया गया है। इसका कारण संभवतः यह है कि महिला नाटककार इसी वर्ग से आया हैं। लेखिकाओं ने स्वानुभूत जीवन के आधार पर ही इस वर्ग की सामाजिक चेतना को सूक्ष्मता, गहनता तथा व्यापकता से प्रस्तुत कर सकी हैं। नाटकों में समाज के अन्य वर्गों का भी यत्र तत्र चित्रण हुआ है परन्तु उतनी सघनता और सजीवता नहीं आ पायी है। लेखिकाओं ने नारी के अनेक रूपों को प्रस्तुत किया है परन्तु प्रगतिशील चेतना की प्रमुखता है। पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त कर नारी नौकरी करती हुई, बड़े-बड़े पदों को सँभालती हुई तथा समय और स्थिति के अनुसार अपनी प्रतिभा, योग्यता और क्षमता का परिचय देती हुई दिखाई देती हैं।

प्रत्येक कला अपने आप में पूर्ण होते हुए भी रचनाकार की सुविधा के लिए कुछ सर्वमान्य आधारों एवं नियमों पर आधारित होती है। उन्हीं में नवीनता का सम्मिश्रण करते हुए रचनाकार रचना करता है। नाट्यकला के अन्तर्गत यहाँ एक ओर संस्कृत आचार्यों ने नाट्य-कला के शास्त्रीय सिद्धांतों का विशद एवं व्यापक विवेचन किया है दूसरी ओर समय की माँग के अनुसार हमारे हिन्दी नाटककारों ने पश्चात्य नाट्य सिद्धांतों के संपर्क से भी लाभ उठाया है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने चेतना संबंधी विवेचन पर जोर देते हुए उनकी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना समाजगत होने के कारण समाज के साथ और उसके अभिनांग जैसे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक चेतना को भी प्रस्तुत किया है।

समकालीन हिन्दी महिला नाटकों में मंचाभिकल्पना के नये आयामों ने नाटक को अधिक समर्थ व कलात्मक बनाया तथा नाटक को प्रेक्षागृह एवं रंगमंचीय चौखटे से मुक्त किया है। बॉक्स रंगमंच, खुला रंगमंच तथा मुक्ताकाशी रंगमंच मंचाभिकल्पना के नये आयाम हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात समकालीन महिला नाट्य में मंचाभिकल्पना के नये आयामों के साथ जो हुई वह यह कि अत्यधिक मंच सामग्री का प्रयोग कल्पनात्मक एवं सर्जनात्मक प्रयोग में किया गया।

विज्ञान और तकनीकी के विकास ने रंगमंच को भी प्रकाश और ध्वनि के ऐसे नये उपकरण प्रदान किए हैं, जिनमें रंगमंच पहले से ही अधिक तकनीकी, कलात्मक, समर्थ और प्रभावपूर्ण हुआ है। टेप रिकार्डर, रेडियो विभिन्न वाद्य यंत्र टेलिफ़ोन, बिजली की घंटी तथा रिकार्ड की सहायता से विभिन्न ध्वनि प्रभाव तथा विभिन्न प्रकाश की आवाज़ें पैदा की गयी हैं।

जहाँ तक वेशभूषा और रूप सज्जा का सवाल है तो एक ओर तो वेशभूषा के प्रतीकात्मक प्रयोग की संभावनाएँ उभर कर सामने आई हैं, दूसरी ओर नये युग नयी यथार्थ वास्तविकताओं में यथार्थ अभिनय की शैली का ही विकास हुआ है तथा नायक भी आम आदमी है जो न धीरोद्धत है न धीरललित है न धीरोदात्त और न धीरप्रशांत।

हिन्दी नाटक और रंगमंच शायद वर्तमान में इसी तरह की मंदी के दौर से गुज़र रहा है। किन्तु समकालीन हिन्दी महिला नाटक और रंगमंच ने नाट्य कला का निश्चित रूप से विकास किया है, उसे समसामयिक जीवन को समर्थ रूप से अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समकालीन हिन्दी महिला नाटकों की रंगमंचीय सफलता का मूल कारण यह नहीं कि इसे सशक्त प्रचार-तंत्र, प्रतिभावान निर्देशक और कुशल अभिनेता मिल गए अपितु इसका सफलता का रहस्य इसके दृश्यत्व तथा कथा के अभिनय द्वारा मूर्त हो सकने की आंतरिक क्षमता में निहित हैं ;अपने माध्यम के अधिकाधिक सार्थक जीवंत और नाटकीय उपयोग में निहित है। इसकी रंगमंचीय सफलता का मूल कारण इसकी रंग-धर्मिता, अभिनयात्मक वृत्ति, स्पष्ट चरित्र परिकल्पना, भाषा की जीवंतता और अपने समय में जीवित दर्शक के सीधे संबोधन में विद्यमान है।

यह एक स्थापित तथ्य है कि साहित्यकार समाज का द्रष्टा और स्रष्टा होता है। वह मानव-जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप और गतिविधि का विवेचन होता है। वह सामाजिक जीवन की विभिन्न स्थितियों और अवस्थाओं का अध्ययन मनन और चिन्तन कर सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करता है। समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों ने घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर समाज के कटु यथार्थ को अपने नाटकों द्वारा प्रस्तुत करने की प्रयास किया है। महिला नाटककारों की यह यात्रा सफ़ल समाजोन्मुखी यात्रा हो सकती है। यही इस शोध प्रबंध का सार है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विषयानुक्रमणिका व सहायक ग्रंथ सूची निम्न लिखित है -

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय

समकालीनता : स्वरूप, विश्लेषण और हिन्दी महिला नाटककार

1. समकालीनता : अर्थ
2. समकालीनता : परिभाषा
3. समकालीनता : समय सीमा निर्धारण
4. समकालीनता और समसामयिकता
5. समकालीनता और तात्कालिकता
6. समकालीनता और आधुनिकता
    - 6.1 युगबोध
    - 6.2 आधुनिकीकरण
    - 6.3 आधुनिक बोध
    - 6.4 आधुनिकता बोध

6.5 आधुनिकता और आधुनिकता बोध
7. समकालीनता की विषयगत प्रवृत्तियाँ
7.1 अस्तित्व की छटपटाहट और युवापीढ़ी की अनास्था
7.2 वर्तमान व्यवस्था पर सीधा आक्रमण
7.3 आकस्मिक विसंगतियों की तात्कालिक टकराहट
7.4 आक्रोष, असंतोष और संपूर्ण निषेध की मुद्रा
7.5 खुले यौन संबंधों को मान्यता
7.6 सहज यथार्थ बोध और प्रतिबद्ध जागरूकता
7.7 वैचारिकता का महत्व
8. हिन्दी नाटककारों में महिला नाटककारों का स्थान
8.1 आलोच्य पूर्वकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार
8.2 आलोच्य कालीन या समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार
8.3 समकालीन हिन्दी महिला नाटककार

द्वितीय अध्याय

समकालीन हिन्दी महिला नाटककार : व्यक्ति एवं परिवेश

1.व्यक्ति एवं परिवेश
1.1.व्यक्ति
1.2.परिवेश
2.व्यक्ति एवं परिवेश का अतः संबंध
3.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों का परिवेश और उनका रचना संसार
4. कुसुम कुमार : व्यक्ति एवं परिवेश
4.1.कुसुम कुमार का साहित्य परिचय
4.1.1.कविता संग्रह
4.1.2.उपन्यास
4.1.3.नाटक
4.1.4.एकांकी
4.1.5.सिद्धांत विवेचन
4.1.6.अनुवाद
4.2.कुसुम कुमार के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
4.2.1.सुनो शेफाली
4.2.2.रावण लीला
4.2.3.पवन चतुर्वेदी की डायरी
5.मन्नू भण्डारी : व्यक्ति एवं परिवेश
5.1.मन्नू भण्डारी का साहित्य परिचय
5.1.1.कहानी संग्रह
5.1.2.उपन्यास

5.1.3.नाटक
5.2.मन्नू भण्डारी के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
5.2.1.बिना दीवारों के घर
5.2.2.महाभोज
6.मृदुला गर्ग : व्यक्ति एवं परिवेश
6.1.मृदुला गर्ग का साहित्य परिचय
6.1.1.कथा साहित्य
6.1.2.उपन्यास
6.1.3.नाटक
6.1.4.लेख संग्रह
6.1.5.संस्मरण
6.1.6.अनुवाद
6.1.7.मृदुला जी की पुरस्कृत रचनाएँ
6.1.8.मृदुला गर्ग जी के साहित्य का अन्य भाषाओं में अनुवाद
6.2.मृदुला गर्ग के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
6.2.1.एक और अजनबी
6.2.2.जादू का कालीन
7.मृदुला बिहारी : व्यक्ति एवं परिवेश
7.1.मृदुला बिहारी का साहित्य परिचय
7.1.1.उपन्यास
7.1.2.नाटक
7.2. .मृदुला बिहारी के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
7.2.1.भँवर
7.2.2.तीसरे रास्ते का राही
7.2.3.वे पाँच शब्द
7.2.4.देहरी
7.2.5.अंधेरे से आगे
8.मृणाल पाण्डे : व्यक्ति एवं परिवेश
8.1.मृणाल पाण्डे का साहित्य परिचय
8.1.1.उपन्यास
8.1.2.कहानी संग्रह
8.1.3.नाटक
8.1.4.अन्य सृजन
8.2.मृणाल पाण्डे के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
8.2.1.जो राम रचि राखा
8.2.2.आदमी मछुआरा नहीं था
8.2.2.चोर निकल के भागा

9. मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्ति एवं परिवेश
9.1.मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य परिचय
9.1.1.उपन्यास
9.1.2.कहानी
9.1.3.आत्मकथा
9.1.4.नाटक
9.1.5.अन्य साहित्य
9.2.मैत्रेयी पुष्पा के नाटक साहित्य का संक्षिप्त परिचय
9.2.1.मंदाक्रान्ता

<u>तृतीय अध्याय</u>
समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन : तात्त्विक विश्लेषण
1.नाट्य वस्तु
2.पात्र और चरित्र चित्रण
3. नाटक तथा रसानुभूति
4.संवाद योजना
4.1स्वगत कथन
4.2.संक्षिप्त संवाद
4.3.दीर्घ या लम्बे संवाद
4.4.वर्णनात्मक एवं भावात्मक संवाद
5.देशकाल-वातावरण
6.उद्धेश्य

<u>चतुर्थ अध्याय</u>
समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और सामाजिक चेतना
1. समाज और उसका स्वरूप
1.1. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी
1.1.1. राजनीतिक संदर्भ
1.1.2. आर्थिक संदर्भ
1.1.3. धार्मिक और सांस्कृतिक संदर्भ
1.1.4. साहित्य और मानव जीवन
2. सामाजिक चेतना का अर्थ, परिभाषा, एवं स्वरूप
3. सामाजिक चेतना और साहित्य
4. समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना
4.1. सुनो शेफाली
4.2. रावणलीला
4.3. पवन चतुर्वेदी की डायरी
4.4. बिना दीवारों के घर

4.5. एक और अजनबी
4.6. जादू का कालीन
4.7. भँवर
4.8. तीसरे रास्ते का राही
4.9. वे पाँच शब्द
4.10. देहरी
4.11. अँधेरे से आगे
4.12. जो राम रचि राखा
4.13. आदमी मछुआरा नहीं था
4.14. चोर निकल के भागा
4.15. मंदाक्रान्ता

<u>पंचम अध्याय</u>

समकालीन हिन्दी महिला नाट्य लेखन और रंगमंच

1.रंगमंच : अर्थ
2.रंगमंच : परिभाषा
3.पाश्चात्य दृष्टि से रंगमंच का स्वरूप
4.भारतीय दृष्टि से रंगमंच का स्वरूप
5.नाटक और रंगमंच का पारस्परिक संम्बन्ध
6.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में अभिनय और अभिनेयता की परिकल्पना
7.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में ध्वनि एवं संगीत योजना
7.1.ध्वनि योजना
7.2.संगीत योजना
8.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में रंगदीपन का स्वरूप
8.1.प्रकाश योजना
8.2.दृश्य योजना
9.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में वेशभूषा और रूप सज्जा
9.1.वेशभूषा
9.2.रूप सज्जा
10.समकालीन हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में मंच योजना
11.नाट्य भाषा

उपसंहार

सहायक ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

(क)विवेच्य नाटक

1. कुसुम कुमार - (1) सुनो शेफाली - हिमाचल पुस्तक भण्डार गांधीनगर दिल्ली प्र.संस्करण - 1992

(2) रावण लीला - सरस्वती विहार दिल्ली प्र.संस्करण - 1983

(3) पवन चतुर्वेदी की डायरी - नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली प्र.संस्करण - 1986

2. मन्नू भण्डारी - (1) बिना दीवारों के घर - राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली च.संस्करण – 2002

3. मृदुला गर्ग - (1) एक और अजनबी - नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली प्र.संस्करण - 1987

(2) जादू का कालीन - राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण – 1993

4. मृदुला बिहारी - (1) अँधेरे से आगे - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नयी दिल्लीड प्र.संस्करण – 1993

(2) भँवर - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नयी दिल्ली प्र.संस्करण - 1993

(3) तीसरे रास्ते की राह - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नयी दिल्ली
प्र.संस्करण - 1993

(4) वे पाँच शब्द - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नयी दिल्ली
प्र.संस्करण – 1993

(5) देहरी - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नयी दिल्ली
प्र.संस्करण - 1993

5. मृणाल पाण्डे - (1) मौजूदा हालत को देखते हुए -नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली
प्र.संस्करण - 1981

(2) आदमी मछुआरा नहीं था - राधाकृष्ण प्रकाशन
नयी दिल्ली
प्र.संस्करण - 1985

(3) चोर निकल के भागा - राधाकृष्ण प्रकाशन
नयी दिल्ली
प्र.संस्करण – 1995

(4) जो राम रचि राखा - नटरंग -36
प्र.संस्करण -1980

6. मैत्रेयी पुष्पा - (1) मंदाक्रान्ता - किताबघर प्रकाशन
नयी दिल्ली
प्र.संस्करण - 2006

<u>(ख)सहायक ग्रंथ (हिन्दी)</u>

1.आधुनिक हिन्दी नाटक (भूमिका) - **डॉ.नगेन्द्र** नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली – 1970

2.आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव - **डॉ. दशरथ ओझ**
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
द्वि.सं. 1986

3.आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र सृष्टि के आयाम - **डॉ. लक्ष्मीराय**
तक्षशिला प्रकाशन
अंसारी रोड
दिल्ली – 1986

4.आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच - **डॉ. लक्ष्मी नारायणलाल**
साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद
प्र.सं. 1989

5.आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच - **नेमिचन्द्र जैन** दि मेकमिलन कं.
दिल्ली
प्र.सं. 1978

6.आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोग धर्मिता - **डॉ.सत्यवती त्रिपाठी**
राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1990

7.नाटक और रंग परिकल्पना - **डॉ. गिरीश रस्तोगी** विश्वविद्यालय प्रकाशन
वारणासी
प्र.सं. 1992

8.नाट्य समीक्षा - **डॉ.दशरथ ओझ** नेशनल पब्लिशिंग हाउज
दिल्ली
द्वि.सं.1984

9.भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास-**सत्यकेतु विद्यालंकार** सरस्वती सदन
दिल्ली
तृ.सं.1960

10.रंगमंच और नाटक की भूमिका - **डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल** नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र.सं.1965

11.रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटककार - **रघुवर दयाल वार्ष्णेय** इन्द्रप्रस्था प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1979

12.समकालीन हिन्दी नाटककार - **डॉ गिरीश रस्तोगी** इन्द्रप्रस्था प्रकाशन दिल्ली प्र.सं.1982

13.समकालीन हिन्दी नाटककार और रंगमंच - **सं. जयदेव तनेजा** तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली (भूमिका)1978

14.समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - **डॉ. विनय** भारती भाषा प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1981

15.समकालीन हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि - **जयदेव तनेजा** सामयिक प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1971

16.समकालीन हिन्दी नाटक की संघर्ष चेतना - **डॉ. गिरीश रस्तोगी** हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ प्र.सं.1996

17.समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक - **डॉ. शेखर शर्मा** भावना प्रकाशन दिल्ली प्र.सं.1986

18.समकालीन हिन्दी नाटक कथ्य चेतना - **डॉ. चन्द्र शेखर** आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली प्र.सं. 1982

19.साठोत्तर हिन्दी नाटक - **सं. विजय कांतधर** — दूबे बिचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1983

20.साठोत्तरी हिन्दी नाटकों का रंगमंचीय अध्ययन - **राकेश वत्स** — हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, प्र.सं.1995

21.स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - **डॉ. रीता कुमार** — बिथु प्रकाशन, साहिबाबाद, प्र. सं.1980

22.स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में सामाजिक चेतना – **डॉ. एम.के अजित कुमार** — जवहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 2005

23.स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में... ...सामाजिक चेतना - **श्रीमती विनोद जैन** — के.के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्र.सं. 2007

24.हिन्दी नाटक यात्रा दशक - **डॉ. नरनारायण राय** — भारती प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1979

25.हिन्दी नाटक और रंगमंच - **डॉ. बजराज किशोर** — जनप्रिया प्रकाशन, विश्वास नगर, दिल्ली सं. 1992

26.हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - **डॉ. दशरथ ओझ** — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली सं. 1984

27.हिन्दी नाटककार - **जयनाथ नलिन** — आत्माराम एण्ड सन्स, काशीरी गेट, दिल्ली-प्र.सं. 2007

28.हिन्दी के प्रमुख नाटककार - **डॉ. मालिनी मिश्र** मोडर्न प्रिंटर्स जयपुर प्र.सं. 2004

29. समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार - **डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा** चिन्तन प्रकाशन कानपुर प्र.सं. 2005 2003

30.समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - **नरेन्द्र मोहन** वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 2009

<u>(ग)सहायक ग्रंथ (अँग्रेजी)</u>

1. People's art in the twentieth Century theory and practice – Janam
2. The Drama and Dramatic dances of non European race – William
3. Theory of Drama – Nicoll
4. The Problem in Play – R.C. Gupta

<u>(घ)पत्र-पत्रिकाएँ (हिन्दी)</u>

आलोचना - जुलाई - 1965
आलोचना - अक्तूबर - 1984
आलोचना - विशेषांक - जनवरी-मार्च - 1986
मधुमती - 1998
मधुमती - फरवरी 1999
मधुमति - जून - 2001
मधुमति - अक्तूबर - 2001
नटरंग - खण्ड 17 अंक 66 मार्च 2002
नटरंग - खण्ड 18 अंक 67 सिंतम्बर 2002
नटरंग - खण्ड 19 अंक 68 मार्च 2002
नटरंग - खण्ड 20 अंक 69 मार्च 2002

(ङ)शब्द कोश (हिन्दी)

1. बृहत् हिन्दी कोश - कालिका प्रसाद - ज्ञान मंडल लिमिटेड - वारणासी

2.मानक हिन्दी कोश - रामचन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग

3.हिन्दी व्युत्पत्ति कोश - आचार्य बच्चूलाल अवस्थी - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नई दिल्ली

4.मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश - सत्यप्रकाश डी.एस.सी - हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग

5.हिन्दी साहित्य कोश - धीरेन्द्र वर्मा – ज्ञान मंडल लिमिटेड - वारणासी

6.हिन्दी नाटक कोश - डॉ. दशरथ ओझा - नेशनल पब्लिशिंग हाउस - नई दिल्ली

7.मानक हिन्दी पर्याय कोश - डॉ. हरदेव बाहरी - विद्या प्रकाश मंदिर - नई दिल्ली

(च)शब्द कोश (अँग्रेजी)

1. Progressive English – Hindi Dictionary - S.K. Varma – Oxford University Press, INDIA

2. Practical English- Hindi Dictionary – Dr. Badrinath kapoor – prayag prakashan - Delhi

3. Vidya's Compact English-Hindi Dictionary – P.L. Bhatt – Vidya Prakashan mandhir, New Delhi

(छ)वेबसाइट

1. www.webdunia.com
2. www.anubhuti.com
3. www.abhivyakti.com
4. www.nayagnanoday
5. www.tatbhav.com
6. www.sahityakunj.com
7. www.nayiedunia.com

***